हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा

(Development Journey of Hindi Novel)

करण मिश्र

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा

(Development Journey of Hindi Novel)

करण मिश्र

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5489-5

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है। भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यास लेखक थे। जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम इंशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**हिंदी उपन्यास**	**1**
	हिंदी उपन्यास की शुरुआत और 'परीक्षागुरु'	2
	हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास	10
2.	**हिन्दी उपन्यास का विकास**	**13**
	प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास	14
	स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास	17
	समकालीन उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ	22
	निष्कर्ष	24
3.	**उपन्यास**	**25**
	परिचय	25
	उपन्यासिका	27
	हिंदी साहित्य में उपन्यास	27
	प्रथम उपन्यास	27
	भारतीय भाषाओं में उपन्यास	27
	उपन्यास के उदय के कारण	31
	उपन्यास का अर्थ	32
	उपन्यास के उदय के कारण	32

सामंतवाद का ह्रास 32
4. हिन्दी उपन्यास का इतिहास 34
भारतेन्दु युग 34
भारतेन्दु मण्डल 35
भारतेन्दुकालीन कथा 36
उपन्यास 36
कहानी 36
नाटक 36
निबन्ध 37
आलोचना 37
द्विवेदी युग 38
द्विवेदीजी का योगदान 46
पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक 47
ऐतिहासिक नाटक 48
सामाजिक नाटक 48
रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना 49
प्रेमचन्दोत्तर युग 54
भारतेन्दु हरिश्चंद्र 60
जीवन परिचय 61
साहित्यिक परिचय 62
प्रमुख कृतियाँ 63
प्रमुख निबंध 64
वर्ण्य विषय 65
भाषा 67
महत्त्वपूर्ण कार्य 69
साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास 70
प्रेमचन्द 73
जीवन परिचय 74
कार्यक्षेत्र 75
प्रेमचंद के जीवन संबंधी विवाद 80
मुंशी के विषय में विवाद 81

प्रेमचंद की सिद्धहस्त लेखनी के कुछ नमूने 87
प्रेमचन्द के उपन्यास 88
कथानक 89
गबन 89
कलकत्ते से सम्बद्ध 91
राजनीतिक उपन्यास 93
समाज-सुधार सम्बन्धी दृष्टिकोण 101
कथानक 105
उपन्यास 105
जैनेन्द्र कुमार 137
जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास 140
लेखन के विषय 145
आलोचना 146
नागार्जुन 147
लेखन-कार्य एवं प्रकाशन 149
प्रकाशित कृतियाँ 150
नागार्जुन पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य 152
पुरस्कार 153
समालोचना 153
साहित्यिक जीवन 156
अपराध बोध का अनुभव 157
जिन्दादिली और विनोदी वृत्ति 158
सामाजिक परिदृश्य को उभारने की चेष्टा 158
प्रमुख कृतियाँ 159
प्रकाशित पुस्तकें 162
मुख्य रचनाएँ 164
हिन्दी गद्यकार 164
जीवन परिचय 165
शिक्षा 165
कार्यक्षेत्र 166
साहित्यिक परिचय 166

मुख्य कृतियाँ 167
सम्मान और पुरस्कार 168
काशीनाथ सिंह 169
प्रकाशित कृतियाँ 171
साहित्यिक परिचय 174
रचनाएँ 174
कथा साहित्य 175
नाट्य-लेखन 175
आषाढ़ का एक दिन 175
कथन 176
समकालीन लेखक 176
प्रमुख कृतियाँ 177
अँधेरे बंद कमरे 177
कृतियाँ 182
अमृता प्रीतम 184
प्रमुख कृतियाँ 185
गद्य कृतियाँ 187
पिंजर (उपन्यास) 187
कहानी 188
पात्र 188
रूपांतरण 188
कृष्णा सोबती 188
प्रकाशित कृतियाँ 189

1

हिंदी उपन्यास

हिंदी उपन्यास की परंपरा इतनी गहरी और विभिन्न रंगों से भरपूर है कि इस छोटे से लेख में इस विषय को न्याय देना असंभव ही है। मगर फिर भी, अगर हिंदी उपन्यास की बात करनी ही हैं, तो उसके लिए एक विशिष्ट पद्धति का विनियोग करना अनिवार्य होगा। मैं समझता हूँ कि हिंदी उपन्यास के विकास की बात मील के पत्थर के समान कुछ चुने हुए उपन्यास लेकर की जा सकती है। प्रस्तुत लेख में यही मेरी पद्धति और उपक्रम होंगे। इस लेख की संरचना कुछ इस प्रकार हैं – पहले मैं हिंदी में उपन्यास लिखने की जब शुरुआत हुई उस वक्त का ऐतिहासिक संदर्भ दूँगा, और उस संदर्भ के प्रकाश में मैं मील के पहले पत्थर समान श्रीनिवासदास लिखित उपन्यास परीक्षागुरु (1843) की बात करूँगा। उसके बाद चर्चा राष्ट्रवाद के समय का संदर्भ देगी और उसके प्रकाश में हिंदी कथा-साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देने वाले प्रेमचंद के उपन्यास गोदान (1936) की बात की जायेगी। प्रेमचंद के बाद आने वाली पीढ़ी में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' का नाम प्रमुख हैं। 'अज्ञेय' का उपन्यास शेखर: एक जीवनी (1941-44) हिंदी में लिखे गए सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से एक हैं। प्रेमचंद की परंपरा से हटकर शेखर: एक जीवनी द्वारा हिंदी-उपन्यास में कौन से बदलाव आए उसकी बात होगी। अंत में नयी कहानी के बारे में कुछ बात करके इस युग में कैसे उपन्यास का भी रूपान्तर हुआ उसकी चर्चा के साथ इस लेख का समापन किया जायेगा।

हिंदी उपन्यास की शुरुआत और 'परीक्षागुरु'

लाला श्रीनिवासदास व्यवसाय से एक व्यापारी थे और अपने जीवन अनुभव को उन्होंने बखूबी रूप से इस उपन्यास में ढाला हैं। परीक्षा-गुरु मदनमोहन नाम के एक रईस व्यापारी की कहानी हैं। वह दिल से अच्छा इन्सान है पर गलत संगत में आकर वह पतन को न्योता देता हैं। कर्जे में डूब जाने की वजह से उसे कारावास भुगतना पड़ता है और उसका वकील दोस्त ब्रजकिशोर उसे मुक्ति दिलाता हैं जिसके बाद उसका हृदय-परिवर्तन होता हैं।

इस उपन्यास को 41 सर्गो में बाँटा गया हैं। इस दौरान लिखे गए उपन्यासों के कुछ सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं -

1. कर्म के सिद्धांत में अत्यंत श्रद्धा
2. धर्म का पुनर्वास
3. पाप कितने गहरे हैं उसके हिसाब से उसका फल मिलना
4. राजा एवं खुद के धर्म के प्रति एक तरह का भक्तिभाव (1973)

आखिरी लक्षण के अलावा परीक्षा-गुरु में और सभी लक्षण मौजूद है। यह उपन्यास अंग्रेज उपनिवेश के दौरान लिखा गया था। उपन्यास को एक आधुनिक स्वरूप माना जाता है और जहां तक हिंदी उपन्यास की बात है, तो हम कह सकते है कि हिंदी उपन्यास की गाथा परंपरा और आधुनिकता के बीच के द्वंद्व की गाथा है। परीक्षा-गुरु में भी यह द्वंद्व साफ दिखाई देता हैं।

आधुनिकता की पहली निशानी हैं उपन्यास का समय, जो कि सिर्फ पाँच दिनों तक सीमित हैं। पुराने कथानकों की तरह पूरी जिंदगी की बात करने की जगह यहाँ मदनमोहन के जीवन के पाँच महत्वपूर्ण दिनों का चित्रण हैं। मध्यकालीन रूमानी कथाओं की जगह वास्तविक चरित्रों ने ली हैं, और भाषा-कर्म विविध रंगों से खिला हैं। उपन्यास की भाषा में भी परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई दे पड़ता हैं। अंग्रेजी पात्रों की प्रस्तुति के कारण कुछ अंग्रेजी शब्दों का उपयोग हैं, तो साथ ही प्रारंभिक हिंदी एवं संस्कृत और फारसी का भी उपयोग हैं। श्रीनिवासदास भाषा-प्रयोजन के प्रति अति-जागरूक मालूम होते हैं, और अलग-अलग परिस्थितियों में वह उचित भाषा का प्रयोग करना जानते हैं। जैसे कि नैतिक और उपदेशात्मक सर्गो में संस्कृत-फारसी का ज्यादा उपयोग हैं, तो सामान्य बातचीत में बोल-चाल की हिंदी का उपयोग हैं।

जहाँ तक चरित्रों की बात हैं, तो प्रस्तुत उपन्यास पहली बार चरित्रों को उनके मनुष्य-स्वरूप में समझने की कोशिश करता हैं। वसुधा डालमिया ने अपने

लेख में निर्देश किया हैं कि कैसे परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व चरित्रों को एक-दूसरे के ध्रुवीय विपरीत रखकर दिखाया गया हैं (2008)।

मदनमोहन को अंग्रेजी जीवन-पद्धति अपनाते हुए दिखाया हैं, जो उसके पतन का कारण बनती हैं, जबकि ब्रजकिशोर के चरित्र का आदर्श चित्रण किया गया हैं। वह समझदार हैं, और वह अंग्रेजी जीवन-पद्धति का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानता, बल्कि अंग्रेजों से जो चीजें सीखने लायक हैं, वही अपनाता हैं। ब्रजकिशोर कचेरी (कोर्ट) में काम करता हैं, जो कि एक आधुनिक और उपनिवेशी संस्था हैं, मगर अपनी परंपरा को वह बिलकुल नहीं भूला। जहाँ तक स्त्री-पात्रों का सवाल हैं, उपन्यास अपने स्त्री-चरित्रों को उतना उजागर नहीं कर पाया। मदनमोहन की पत्नी उसको कारावास होने पर उसे छोड़ कर चली जाती हैं, पर जब मदनमोहन का हृदय-परिवर्तन होता हैं, तब वह वापस भी आ जाती हैं। इसके सिवा उसके हिस्से में ज्यादा कुछ नहीं हैं करने को।

परीक्षा-गुरु का मुख्य उद्देश्य नैतिक मूल्यों का चित्रण एवं शिक्षण था। कलाकृति बनाने का मोह इसमे इतना नहीं मौजूद जितना उपदेश मौजूद हैं। यह मानसिकता आने वाले युग में बदल जाएगी।

परीक्षा-गुरु पर अनेक कथाओं पुस्तकों का असर था। श्रीनिवासदास अंग्रेजी उपन्यासकार ओलिवर गोल्डस्मिथ से प्रभावित थे, और साथ ही संस्कृत साहित्य की नीति-कथाओं और जातक-कथाओं से भी उन्होंने उतना ही ग्रहण किया था। इससे भी साफ नजर आता हैं कि परीक्षा-गुरु पर आधुनिकता व व परंपरा दोनों का प्रभाव था।

लाला श्रीनिवासदास के समय के कुछ नामांकित उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गहवारी और भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम लिया जा सकता हैं। उनके बाद की पीढ़ी में आए धनपतराय उर्फ 'प्रेमचंद', जो उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखते थे। भारतेंदु युग में हिंदी को हिंदुओं की भाषा जाहिर कर उसे संस्कृत के करीब लाने के प्रयत्न हुए थे, मगर प्रेमचंद उन सबसे अलग थे। उन्होंने अपनी अधिकतर कहानियाँ और कई उपन्यास प्रथम उर्दू और उसके बाद हिंदी में लिखे थे।

प्रेमचंद का जीवन उनकी कहानियों की तरह ही दिलचस्प हैं। यहाँ उनके जीवन की कुछ बातें करनी इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि उनका सीधा संबंध उनकी रचनाओं से एवं उस समय की भारत की स्थिति से हैं। प्रेमचंद का जन्म

बनारस के करीब लमही नामके एक गाँव में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में गरीबी देखी, सौतेली माँ से अन्याय का अनुभव किया, अपने आसपास के टूटते हुए लोगों को देखा, और साथ ही अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को भी देखा। यह सभी अनुभव उनके सर्जन-विश्व का बड़ा हिस्सा बनने वाले थे। बचपन से ही उन्हें पढने-लिखने का बड़ा शौक था, और उन पर चार्ल्स डिकन्स, मेक्सिम गोर्की, टॉलस्टॉय जैसे लेखकों का प्रभाव अधिक था।

प्रेमचंद पहले ऐसे लेखक थे जिन्होंने 'वास्तव' का सही ढंग से अपनी रचनाओं में विनियोग किया। 1900-1930 तक भारत में साम्यवादी विचारधारा का सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व रहा। इसका असर उस समय के साहित्य पर भी हुआ। साहित्य-लेखन की प्रमुख धारा थी 'सामाजिक वास्तव', और प्रेमचंद उसके प्रमुख कर्ता थे। सामाजिक वास्तव की धारा का लेखन किसानों और गरीबों के जीवन को वस्तु बनाता था और शुद्ध साहित्यिक हिंदी से दूर हटकर बोल-चाल की हिंदी को प्राधान्य देता था। यह समय गाँधी का भी समय था, और गाँधीवाद एवं राष्ट्रवाद का प्रभाव उतना ही प्रबल था जितना साम्यवाद का। गाँधी द्वारा की गई समाज के निम्न वर्ग और किसानों के उद्धार की बात का समर्थन प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं द्वारा दिया और गाँधी के शुरू किये गए 'असहयोग' आंदोलन के समर्थन में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र भी दे दिया।

प्रेमचंद सामाजिक वास्तव के अग्रहारी तो थे ही, लेकिन उन्होंने 'आदर्श यथार्थवाद' को भी प्राधान्य दिया, बल्कि अपनी रचनाओं में 'आदर्श यथार्थवाद' का विनियोग करने का हमेशा प्रयत्न किया। इससे उनका मतलब यह था कि रचना यथार्थ का चित्रण करते हुए भी किसी आदर्श की तरफ अंगुलिनिर्देश करनी चाहिए।

यहाँ पर प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' के द्वारा यह देखा जाएगा कैसे हिंदी उपन्यास में भारी बदलाव आए और कैसे राष्ट्रवाद, साम्यवाद जैसे आंदोलनोंने इस रचना को प्रभावित किया।

गोदान होरी नाम के एक किसान की कहानी हैं, जो गोदान करना चाहता हैं। होरी और उसकी पत्नी धनिया गोदान के लिए एक के बाद एक मुश्किलों का सामना करते हैं और गोदान की संभावना के साथ उपन्यास समाप्त होता हैं। यह बात प्रेमचंद के 'आदर्श यथार्थवाद' का नमूना हैं, क्योंकि पूरा उपन्यास नग्न यथार्थ का चित्रण कर होरी के दर्द और मुश्किलों का दस्तावेज हैं, लेकिन अंत

में होरी के मौत के साथ गोदान की संभावना खड़ी होती हैं। गोदान की स्थिति होरी के लिए एक आदर्श स्थिति हैं जहाँ वह कभी पहुँच नहीं पाता, लेकिन उस स्थिति का अंगुलिनिर्देश जरूर किया गया हैं। उल्का अंजारिया के अनुसार प्रेमचंद के लेखन को भिन्नता युक्त यथार्थ और समानता युक्त आदर्श के बीच के तकरार का लेखन माना जा सकता हैं (Anjaria, 2012)।

यह उपन्यास अनेक तरीके से आधुनिक हैं। भाषा, जैसा कि आगे सूचित किया गया हैं, बोल-चाल की और रोज-ब-रोज की हैं। उपन्यास में होरी की कथा मुख्य हैं, जो गाँव में स्थित हैं, पर गोदान में इसके समान्तर शहर के कथानक का भी उपयोग किया गया हैं। यह दोनों अंतिम एक दूसरे के पूरक साबित होते हैं। प्रेमचंद काफी प्रगतिशील थे। 'ऑल इण्डिया प्रोग्रेसिव राईटर्ज एसोसिएशन' के उद्घाटन के दौरान अपने वक्तव्य में उन्होंने निर्देश किया था कि लेखक और वकील का काम एक-सा होता हैं, क्योंकि दोनों का धर्म निम्न-वर्ग के शोषित और पीड़ित के लिए लड़ना हैं (प्रेमचंद 1936)। यह प्रगतिशीलता उनके इस उपन्यास में भी नजर आती हैं। अपने कथानक में वह अंतरजातीय शादी को समर्थन देते हुए मिलते हैं। यह बात उस समय में बहुत ही क्रांतिकारी थी।

पहली बार निम्न-वर्ग के चरित्रों का बड़ी संकुलता से चित्रण हुआ मिलता हैं। इस उपन्यास में स्त्री-चरित्र का चित्रण भी पहले के उपन्यासों से अलग हैं। धनिया, होरी की पत्नी, एक अत्यंत सबल चरित्र हैं। उसकी आंतरिकता को उजागर करने में भी प्रेमचंद सफल रहे हैं। यह कहा जा सकता हैं कि अगर धनिया न होती तो होरी ने जल्द ही जीवन की विषमताओं के सामने हार मान ली होती। मगर फिर भी, धनिया का पात्र होरी के पात्र का साथ देने के लिए ही हैं - होरी से हटकर उसकी अपनी अलग पहचान नहीं मिलती।

हम देख सकते हैं की कैसे प्रेमचंद ने 'वास्तव' का बखूबी निरूपण किया, और अनेक चरित्रों को मिलकर एक संकुल वास्तविक सृष्टि की रचना की, जिसका नाता परंपरा से जरूर हैं, मगर बहुत तरीके से वह आधुनिक हैं।

प्रेमचंदोत्तर युग में उपन्यास और शेखरः एक जीवनी

प्रेमचंद के बाद आई पीढ़ी के लेखकों में जैनेन्द्र कुमार, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', उपेन्द्रनाथ अश्क और यशपाल का नाम बड़े आदर से लिया जाता हैं। जैनेन्द्र कुमार को मनोवैज्ञानिक उपन्यास की शुरुआत करने का

श्रेय दिया जाता हैं। उनके उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र इसके प्रमाण हैं। जैनेन्द्र के दोस्त 'अज्ञेय' ने भी उनकी राह पर चलकर शेखर: एक जीवनी द्वारा मनोवैज्ञानिक उपन्यास को एक नयी ऊंचाई पर पहुँचाया। अज्ञेय की बात करने में जैनेन्द्र की बात करनी भी आवश्यक हैं, क्योंकि जैनेन्द्र ने अपने उपन्यास सुनीता और त्यागपत्र से जो हिंदी भाषा को तोडा-मरोड़ा और पात्रों की आंतरिकता, खास करके भय, काम-वासना और यादों की अनेक परतों को उजागर करने के लिए नयी हिंदी का प्रयोग किया, उसी से प्रभावित होकर 'अज्ञेय' ने उस भाषा, वातावरण एवं स्वरूप के नवोन्मेष को शेखर:एक जीवनी द्वारा नया आयाम दिया।

कौन-सी परिस्थितियों की वजह से हिंदी साहित्य में ऐसे बदलाव आए? उस समय की सामाजिक और राजकीय स्थिति क्या थी? यह जानने से शायद हिंदी उपन्यास में अचानक आए परिवर्तन का पता चले।

अज्ञेय की पीढ़ी गाँधी के विचारों से प्रभावित जरूर थी, मगर साथ ही वह गाँधी का अँधा अनुकरण करने में नहीं मानती थी। गाँधी से हटकर यह क्रांतिकारियों की पीढ़ी हिंसा को देश की आजादी के लिए इस्तेमाल करने में हिचकिचाती नहीं थी। अज्ञेय को कारावास की सजा मिली थी क्योंकि वे चंद्रशेखर आजाद और साथियों के साथ बम बनाते हुए पकड़े गए थे। कारावास का अनुभव शेखर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा हैं क्योंकि यह उपन्यास अज्ञेय ने कारावास में ही लिखा था, जो बाद में दो हिस्सों में प्रकाशित हुआ।

उस समय के अज्ञेय जैसे क्रांतिकारियों को काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वे लोग न तो गाँधी के असहयोग और अहिंसा के मार्ग पर चलने को तैयार थे और न ही अपनी क्रान्ति छोड़ देने को। साथ ही यह क्रांतिकारी मार्क्सवादी विचारधारा में मानते थे और जितना तीव्र उनका राष्ट्रवाद था, उतनी ही तीव्र उनकी सामाजिक चेतना भी थी। यह क्रांतिकारियों की जिंदगी भी कायदे-कानून से बचने के लिए रास्तों पर या जंगलों में गुजरी और इन असामान्य विस्तारों में युवा स्त्री-पुरुष क्रांतिकारियों ने काफी समय साथ में बिताया, जिससे प्रेम और कामावेग की अभिव्यक्ति के नए पहलू उन्मुक्त हुए। एक विस्तार था यह कामावेग और प्रेम का विस्तार, एक विस्तार था कारावास का जो इन्हें अपनी जिंदगी के बारे में सोचने और चिंतन करने के लिए आवश्यक समय एवं जगह देता था।

शेखर: एक जीवनी कारावास में ही शुरू होती हैं, जहाँ शेखर अपनी फाँसी के लिए इंतजार कर रहा हैं। उपन्यास सामयिक और स्थानिक आयामों को तोड़-मरोड़ देता हैं, क्योंकि कथा वर्तमान और भूतकाल के बीच घूमती रहती हैं, और इसी की वजह से स्थल भी बदलते रहते हैं। शेखर खुद क्रांतिकारी होने के साथ एक लेखक भी हैं, और इसी वजह से उपन्यास की भाषा हिंदी एवं संस्कृत शब्दों से संपन्न हैं, और उसकी काव्यात्मकता उपन्यास खत्म होने पर भी पाठक को पूरी तरह नहीं छोड़ती। यह उपन्यास प्रेमचंद के उपन्यासों से बहुत ही अलग हैं क्योंकि 'यहाँ व्यक्ति का मनश्लोक आख्यान की अग्रभूमि में है, जबकि सामाजिक जीवन पृष्ठभूमि में' (कुमार 2012)।

कथानक प्रथम पुरुष एकवचन और तृतीय पुरुष एकवचन के बीच झोंके खाता रहता हैं जिससे बाहर का सामाजिक वास्तव और अंदर का आंतरिक वास्तव दोनों की बात कही जा सके। यह प्रयोग शेखर को गोदान से अधिकतर आधुनिक स्थापित कर देते हैं। प्रेम और कामावेग का कथानक में जिस तरह अन्वेषण हुआ हैं वह भी नयेपन का ही प्रमाण हैं। क्रांतिकारी पहलू यह हैं की यह प्रेम और वासना का संबंध दूर के भाई-बहन शेखर और शशी के बीच स्थापित होता हैं, जिससे कई पारंपरिक मूल्यों का ह्रास होता दिखता हैं।

शशी हिंदी साहित्य के सबसे चहेते और सबसे करुण चरित्रों में से एक हैं। शेखर में मुख्य पात्र शेखर का विकास शशी के पतन के साथ ही होता हैं (Sawhney, 2012)। शशी का चरित्र मजबूत हैं, वह अपने पति को छोड़कर शेखर के साथ एक गुनाहगार की जिंदगी जीने लगती हैं, और आखिर शेखर के लिए अपनी जान दे देती हैं। जो उपन्यास शेखर की मृत्यु की बात से शुरू होता हैं, वह शशी के मृत्यु के साथ समाप्त होता हैं। निखिल गोविन्द सूचित करते हैं कि कैसे अपनी मृत्यु के मूल्य के कारण शशी उपन्यास के केंद्र में आ जाती हैं (Govind, 2014) और अंत में वह शशी ही हैं, जो पाठक के साथ रहती हैं, न कि शेखर। यह देखा जा सकता हैं कि कैसे शेखर: एक जीवनी से हिंदी उपन्यास ने एक नयी दिशा में ही प्रस्थान किया, जिस दिशा में नयी कहानी के लेखकों की पीढ़ी बढ़ती हैं।

निष्कर्ष

हमने इस लेख में तीन मील के पत्थर समान उपन्यासों की मदद से देखा कि कैसे हिंदी उपन्यास में परिवर्तन आए। अज्ञेय के बाद की पीढ़ी में नयी

कविता और नयी कहानी के आंदोलन ज्यादा प्रचलित रहे, हालाँकि उपन्यास की विधा में भी इन लेखकों का उतना ही बड़ा योगदान रहा। यहाँ कुछ बात नयी कहानी के बारे में भी करना आवश्यक हैं।

नयी कहानी आंदोलन हिंदी साहित्य के इतिहास में बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा हैं'। पश्चिम के 'हाई-मोडर्निज्म' (आधुनिकतावाद) से यह आंदोलन प्रभावित जरूर था, मगर नयी कहानी के लेखक अपनी भारतीयता को भूलकर पश्चिम का अँधा अनुकरण नहीं कर रहे थे। उनके लिए पश्चिम एक संदर्भ मात्र था। नयी कहानी आंदोलन अपने पूर्व-वर्तियो से नाता तोड़ता भी हैं और जोड़ता भी। प्रगतिवादी लेखकों का 1936 में जो आंदोलन हुआ, उसके बाद बहुत से प्रगतिवादी लेखक सामाजिक चेतना के साहित्य को ही सच्चा साहित्य मानने लगे थे। उनकी कहानियाँ निम्न और गरीब वर्ग की, स्त्रियों की बात करती जरूर थी, मगर मार्क्सवादी विचारधारा रखने वाले लेखक और वैसी मानसिकता वाले साहित्य को ही अच्छा साहित्य समझना उनकी बहुत बड़ी भूल थी। प्रगतिवादी लेखकों में अहमद अली, उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रेमचंद, मुल्कराज आनंद इत्यादि लेखक शामिल थे।

एक तरफ था प्रगतिवादी लेखकों का वर्ग, दूसरी ओर था अज्ञेय और जैनेन्द्र जैसे रूमानी कथाकारों का वर्ग। नये कहानीकार इन दोनों वर्गों से असहमत थे। उनके लिए सामाजिक चेतना का उतना ही मूल्य था जितना आंतरिक चेतना का। उसी तरह, स्त्री-पुरुष संबंधो के बारे में लिखी गई रूमानी कथाओं में उन्हें आंतरिक चेतना तो दिखती थी, मगर उनके लिए यह बहुत ही संकुचित दृष्टिवाला साहित्य था। दोनों वर्गों में से उचित और जरूरी सामग्री लेकर नये कहानीकार अपनी खुद की ही साहित्यिक दुनिया बनाने में जुड़ गए।

नयी कहानी आंदोलन प्रेमचंद के साथ भी कुछ ऐसा ही 'लव-हैट' का नाता रखता हैं। यह कहानीकार प्रेमचंद के 'यथार्थ' के विचार को सम्मान देते थे और यथार्थ को किसी भी कहानी का जरूरी आयाम मानते थे, मगर साथ ही यह प्रेमचंद के आदर्शवाद को नकारते थे। प्रेमचंद के लिए यथार्थ साधन था, और आदर्श साध्य, जबकि नयी कहानी के लेखकों के लिए यथार्थ ही साध्य था और उस यथार्थ को सिद्ध करने के लिए जो भी कुछ सामग्री जरूरी थी, वह सब साधन।

नयी कहानी के लेखक यथार्थ के बहुमुखी परिमाण का अन्वेषण करने में मानते थे, और वह इसमें ज्यादातर सफल भी रहे। निर्मल वर्मा, मोहन राकेश,

मन्नू भंडारी, फणीश्वरनाथ रेणु आदि लेखकों ने अपने स्थल-काल से प्रमाणिक रहकर नए तरीके की कहानियों का और उपन्यासों का सर्जन किया, जिसमे बंटवारे की वेदना थी, आजादी मिलने के बाद सामाजिक विषमताओं में कोई सुधार न आने पर मोहभंग की अनूभूति थी, जातीयता के नए आयामों का अन्वेषण था, और मनुष्य का दूसरे मनुष्य से संपर्क-संचार का टूट जाना, मूल्यों का ह्रास इत्यादि कथा-वस्तुओं का समावेश था, और उसका अध्ययन भी उतना ही रसप्रद हैं जितना कि बंटवारे के पहले के उपन्यासों का अभ्यास।

हिंदी उपन्यास का आरम्भ श्रीनिवासदास के 'परीक्षागुरु' (1843 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यास अधिकतर ऐयारी और तिलस्मी किस्म के थे। अनूदित उपन्यासों में पहला सामाजिक उपन्यास भारतेंदु हरिश्चंद्र का 'पूर्णप्रकाश' और चंद्रप्रभा नामक मराठी उपन्यास का अनुवाद था। आरम्भ में हिंदी में कई उपन्यास बँगला, मराठी आदि से अनुवादित किए गए।

हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का आधुनिक अर्थ में सूत्रपात प्रेमचंद (1880-1936) से हुआ। प्रेमचंद पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में हिंदी की ओर मुड़े। आपके 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान', आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का उत्तम चित्रण है। चरित्र चित्रण में प्रेमचंद गांधी जी के 'हृदयपरिवर्तन' के सिद्धांत को मानते थे। बाद में उनकी रुझान समाजवाद की ओर भी हुई, ऐसा जान पड़ता है। कुल मिलाकर उनके उपन्यास हिंदी में आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यासों में भिन्न प्रकार के समाजों का चित्रण है, परंतु शैली अधिक काव्यात्मक है। प्रेमचंद की ही शैली में, उनके अनुकरण से विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि अनेक लेखकों ने सामाजिक उपन्यास लिखे, जिनमें एक प्रकार का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद अधिक था। परंतु पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन, चतुरसेन शास्त्री आदि ने फ्रांसिसी ढंग का यथार्थवाद और प्रकृतवाद (नैचुरॉलिज्म) अपनाया और समाज की बुराइयों का दंभस्फोट किया। इस शैली के उपन्यासकारों में सबसे सफल रहे 'चित्रलेखा' के लेखक भगवतीचरण वर्मा, जिनके 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' बहुत प्रसिद्ध हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क की 'गिरती दीवारें' का भी इस समाज की बुराइयों के चित्रणवाली रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। अमृतलाल नागर की 'बूँद और

समुद्र' इसी यथार्थवादी शैली में आगे बढ़कर आंचलिकता मिलाने वाला एक श्रेष्ठ उपन्यास है। सियारामशरण गुप्त की 'नारी' की अपनी अलग विशेषता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास जैनेंद्रकुमार से शुरू हुए। 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी' आदि से भी अधिक आप के 'त्यागपत्र' ने हिंदी में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैनेंद्र जी दार्शनिक शब्दावली में अधिक उलझ गए। मनोविश्लेषण में स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने 'शेखर–एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने अपने अजनबी' में उत्तरोत्तर गहराई और सूक्ष्मता उपन्यास कला में दिखाई। इस शैली में लिखने वाली बहुत कम मिलते हैं। सामाजिक विकृतियों पर इलाचंद्र जोशी के 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'जहाज का पंछी' आदि में अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस शैली के उपन्यासकारों में धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' और नरेश मेहता का 'वह पथबंधु था' उत्तम उपलब्धियाँ हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी का 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एक बहुत मनोरंजक कथा प्रयोग है जिसमें प्राचीन काल के भारत को मूर्त किया गया है। वृंदावनलाल वर्मा के 'महारानी लक्ष्मी बाई', 'मृगनयनी' आदि में ऐतिहासिकता तो बहुत है, रोचकता भी है, परंतु काव्यमयता द्विवेदी जी जैसी नहीं है। राहुल सांकृत्यायन (1895-1963), रांगेय राघव (1922-1963) आदि ने भी कुछ संस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास दिए हैं।

यथार्थवादी शैली सामाजिक यथार्थवाद की ओर मुड़ी और 'दिव्या' और 'झूठा सच' के लेखक भूतपूर्व क्रांतिकारी यशपाल और 'बलचनमा' के लेखक नागार्जुन इस धारा के उत्तम प्रतिनिधि हैं। कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में प्रचार का आग्रह बढ़ गया है। हिंदी की नवीनतम विधा आंचलिक उपन्यासों की है, जो शुरु होती है फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' से और उसमें अब कई लेखक हाथ आजमा रहे हैं, जैसे राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, शैलेश मटियानी, राजेंद्र अवस्थी, मनहर चौहान, शिवानी इत्यादि।

हिंदी के प्रारंभिक उपन्यास

हिंदी के मौलिक कथासाहित्य का आरम्भ ईशा अल्लाह खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' से होता है। भारतीय वातावरण में निर्मित इस कथा में लौकिक परंपरा के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं। खाँ साहब के पश्चात पं. बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान और एक सुजान' नामक उपन्यासों का निर्माण किया। इन उपन्यासों का विषय समाजसुधार है।

भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने राजनीतिज्ञ या समाज सुधारक के रूप में लिखा। बाबू देवकीनंदन सर्वप्रथम ऐसे उपन्यास लेखक थे जिन्होंने विशुद्ध उपन्यास लेखक के रूप में लिखा। उन्होंने कहानी कहने के लिए ही कहानी कही। वह अपने युग के घात प्रतिघात से प्रभावित थे। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में खत्री जी ने जो परंपरा स्थापित की वह एकदम नई थी। प्रेमचंद ने भारतेंदु द्वारा स्थापित परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ी। इसके विपरीत बाबू देवकीनंदन खत्री ने एक नई परंपरा स्थापित की। घटनाओं के आधार पर उन्होंने कहानियों की एक ऐसी शृंखला जोड़ी जो कहीं टूटती नजर नहीं आती। खत्री जी की कहानी कहने की क्षमता को हम इंशाकृत 'रानी केतकी की कहानी' के साथ सरलतापूर्वक संबद्ध कर सकते हैं।

वास्तव में कथासाहित्य के इतिहास में खत्री जी की 'चंद्रकांता' का प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना है। यह हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है। खत्री जी के उपन्यास साहित्य में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। मर्यादा आपके उपन्यासों का प्राण है।

उपन्यास साहित्य की विकासयात्रा में पं. किशोरीलाल गोस्वामी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। यह उपन्यासों की दिशा में घर करके बैठ गए। आधुनिक जीवन की विषमताओं के चित्र आपके जासूसी उपन्यासों में पाए जाते हैं। गोस्वामी जी के उपन्यास साहित्य में वासना का झीना परदा प्रायः सभी कहीं पड़ा हुआ है।

जासूसी उपन्यास लेखकों में बाबू गोपालराम गहमरी का नाम महत्वपूर्ण है। गहमरी जी ने अपने उपन्यासों का निर्माण स्वयं अनुभव की हुई घटनाओं के आधार पर किया है, इसलिए कथावस्तु पर प्रामाणिकता की छाप है। कथावस्तु हत्या या लाश के पाए जाने के विषयों से संबंधित है। जनजीवन से संपर्क होने के कारण उपन्यासों की भाषा में ग्रामीण प्रयोग प्रायः मिलते हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासलेखकों में बाबू हरिकृष्ण जौहर का तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यास लेखकों में महत्वपूर्ण स्थान है। तिलस्मी उपन्यासों की दिशा में जौहर ने बाबू देवकीनंदन खत्री द्वारा स्थापित उपन्यासपरंपरा को विकसित करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। आधुनिक जीवन की विषमाओं एवं सभ्य समाज के यथार्थ जीवन का प्रदर्शन करने के लिए ही बाबू हरिकृष्ण जौहर ने जासूरी उपन्यासों का निर्माण किया है। 'काला बाघ' और 'गवाह गायब' आपके इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों का निर्माण लोकसाहित्य की आधारशिला पर हुआ। कौतूहल और जिज्ञासा के भाव ने इसे विकसित किया। आधुनिक जीवन की विषमताओं ने जासूसी उपन्यासों की कथा को जीवन के यथार्थ में प्रवेश कराया। असत्य पर सत्य की सदैव ही विजय होती है यह सिद्धांत भारतीय संस्कृति का केंद्रबिंदु है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति मूल रूप से पाई जाती है।

2

हिन्दी उपन्यास का विकास

उपन्यास अपेक्षाकृत नई साहित्यिक विधा है। इसमें सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन को उभारने का प्रयास किया जाता है। इसमें सामान्य जीवन के द्वंद्व, फैलाव और गति का समावेश अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में अधिक होता है। इस विधा का प्रारम्भ हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में हुआ। भारतेन्दु युग में ही ऐसी स्थिति बनने लगी थी कि लेखकों को एक नई विधा की आवश्यकता महसूस होने लगी थी। दरअसल वे अपनी पूरी-पूरी बात खुलकर नहीं कह पा रहे थे। कविता, निबन्ध, नाटक, प्रहसन आदि साहित्य की अन्यान्य विधाएँ युगीन चेतना को पूरी तरह प्रस्तुत करने में असफल साबित हो रही थीं। ऐसी दशा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का ध्यान उपन्यास विधा की तरफ गया। वे बंगला उपन्यासों से परिचित थे और उसी तर्ज पर हिन्दी में भी उपन्यास लेखन चाहते थे। स्वतन्त्र उपन्यासों की रचना न होने की स्थिति में कुछ बंगला उपन्यासों के अनुवाद के भी पक्षधर थे। उनके प्रयास से अनेक बंगला उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कुछ उपन्यास हिन्दी में भी लिखे गए। वे खुद भी उपन्यास लिखना चाहते थे, पर शुरुआती पृष्ठ ही लिख सके। उन्होंने अपने उपन्यास का नाम रखा था – एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती। वैसे निर्विवाद तथ्य है कि हिन्दी में उपन्यास लेखन की परम्परा बंगला के प्रभाव से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु युग में ही उपन्यास लेखन की नींव रखी जा चुकी थी, पर उसे प्रेमचन्द युग में सही रूपाकार और व्यापकता मिली। प्रेमचन्द के लेखन के

सम्बन्ध में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है – "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, भाषा-भाव,रहन-सहन, आशा-आकांक्षा दु:ख और सूझ-बूझ जानना चाहते हैं, तो प्रेमचन्द से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।" (हिन्दी साहित्य–उद्‌भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.212)

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम को चार काल-खण्डों में विभाजित कर देखा जा सकता है–

1. प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास
2. स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास
3. स्वातंत्र्योत्तर युग के हिन्दी उपन्यास
4. समकालीन उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ

प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास

प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास का कालखण्ड सन् 1877 से 1918 माना जा सकता है। सन् 1877 में श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती उपन्यास लिखा था। यह उपन्यास उपदेशात्मक है। यह अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास तो नहीं था, परन्तु इसमें विषय-वस्तु की नवीनता थी। इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास कहा गया है। हिन्दी उपन्यासों के प्रेरणास्रोत रहे बंगला उपन्यासों की भूमि बहुत उर्वर रही है। बंगला में सन् 1877 के पहले बहुत से उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। उनमें भवानीचरण बन्द्योपाध्याय का नवबाबू विलास (सन् 1825) और टेकचन्द ठाकुर (पियारीचन्द्र मित्र) का आलालेर घरेर दुलाल (सन् 1857) बहुत लोकप्रिय हुए। बंगला के कई उपन्यासों का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। हिन्दी उपन्यासों की भूमि बंगला उपन्यासों के अनुवाद द्वारा भी समृद्ध हुई है। बंगला के अलावा अंग्रेजी उपन्यासों का भी अप्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी उपन्यासों पर पड़ा है। परीक्षागुरू (सन् 1882) पर तो अंग्रेजी का सीधा प्रभाव स्वीकार किया जाता है।

प्रेमचन्द पूर्व युग में साहित्यिक चेतना मुख्यत: दो प्रवृत्तियों में प्रचलित थी। एक प्रवृत्ति मनोरंजन की थी और दूसरी सामाजिक जागरण की। मनोरंजन का तत्त्व प्राय: हर युग के कथा साहित्य का अनिवार्य अंग है। इसीलिए अध्ययन की सुविधा के लिए किशोरीलाल गोस्वामी द्वारा किया गया सामाजिक, ऐतिहासिक और घटनात्मक विभाजन ही उचित माना जाता है।

इस युग के पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (सन् 1837-1881), लाला श्रीनिवास दास (सन् 1851-1857), बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, राधकृष्ण दास, लज्जाराम मेहता, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय और मन्नन द्विवेदी प्रमुख सामाजिक उपन्यासकार हैं। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भाग्यवती (सन् 1877) लिखकर स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा दी थी। लाला श्रीनिवास दास ने परीक्षागुरु (सन् 1882) में यह सन्देश दिया कि जो बात सौ बार समझाने से समझ में नहीं आती, वह एक बार की परीक्षा से मन में बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा को गुरु मानते हैं। इसी तरह राधाकृष्णदास ने निस्सहाय हिन्दू (सन् 1890) नामक उपन्यास सामाजिक समस्याओं और गोवध-निवारण की भावना से प्रेरित होकर लिखा है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उन्होंने कुल 65 उपन्यास लिखे हैं। उन्होंने कई सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं। उनके उपन्यास स्वर्गीय कुसुम वा कुसुम कुमारी में पहली बार वेश्या जीवन के दर्द को उपन्यास का विषय बनाया गया है। उनका एक उपन्यास पुनर्जन्म या सौतियाडाह है। इसमें लेखक की यह सम्मति व्यक्त हुई है कि सौतिनों को सुशील और सुन्दरी का सा बर्ताव करना चाहिए और पुरुष को सज्जन सिंह की भाँति दक्षिण नायक सा आचरण करना चाहिए। यह उपन्यास उस समय की पुरुष मानसिकता और सामाजिक आचरण को दर्शाता है, जहाँ पुरुष का एक से अधिक स्त्रियों से सम्बन्ध रखना सर्वथा उचित हो। इस काल के उपन्यासों में यह झलक मिलती है कि स्त्रियों के लिए स्त्रीत्व का निर्वाह परमावश्यक माना जाता था। किशोरीलाल गोस्वामी के बारे में रामचन्द्र तिवारी का मानना है - "नव्यसमाज के प्रति आप न्याय नहीं कर सके हैं। फिर भी तत्कालीन समाज की एक प्रतिनिधि मनोवृत्ति को समझने के लिए आपके उपन्यासों का अध्ययन आवश्यक है। प्रेमचन्द पूर्व उपन्यासकारों में निर्विवाद रूप से आपका स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।" (हिन्दी गद्य-साहित्य, रामचन्द्र तिवारी, पृ.152)

इसी समय भुवनेश्वर मिश्र के घराऊ घटना (सन् 1894) और जैनेन्द्र किशोर के गुलेनार (सन् 1907) का प्रकाशन हुआ। इन उपन्यासों में कस्बों और ग्रामीण अंचलों में उगते हुए मध्यवर्ग और शहरों के तत्कालीन रईसों के जीवन की धडकनें सुनाई पड़ने लगी थीं।

इस युग में अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों का अभाव है। फिर भी किशोरीलाल गोस्वामी, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मथुराप्रसाद शर्मा,

बलदेवप्रसाद मिश्र, ब्रजनन्दन सहाय और मिश्रबन्धुओं ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण काम किया है। सामाजिक उपन्यास लेखन की तरह ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में भी किशोरीलाल गोस्वामी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने तारा वा क्षात्रकुल कमलिनी (सन् 1902) के लेखन के लिए कर्नल टाड कृत राजस्थान और फ्रेंच यात्री बर्नियर के यात्रा विवरण से सहायता ली है। लवंगलता और आदर्श बाला (सन् 1904), सुल्ताना रजिया बेगम वा रंगमहल में हलाहल (सन् 1904), सोना और सुगन्ध वा पन्नाबाई (सन् 1909) आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

ब्रजनन्दन सहाय के लालचीन उपन्यास में तुर्की गुलामों के सरदार तुगलकचीन और दक्षिण के शासक गयासुद्दीन (1937 ई.) के संघर्ष की कहानी कही गई है। तुगलकचीन को ही उपन्यासकार ने लालचीन बना दिया है।

प्रेमचन्द-पूर्व ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास से अधिक कल्पना, प्रेम, रहस्य और रोमांच है। ऐतिहासिक शोध और छान-बीन के अभाव में ये उपन्यास उत्तम कोटि के नहीं बन पाए हैं।

प्रेमचन्द-पूर्व युग में तीसरी कोटि घटना प्रधान तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों की है। 'तिलस्मी-ऐयारी' उपन्यासों में बाबू देवकीनन्दन खत्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि चन्द्रकान्ता उपन्यास पढ़ने के लिए लोगों ने हिन्दी सीखी थी। चन्द्रकान्ता की प्रसिद्धि के बाद उन्होंने चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ जैसे उपन्यास भी लिखे। इस क्षेत्र में हरेकृष्ण जौहर, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू देवकीनन्दन के पुत्र बाबू दुर्गाप्रसाद खत्री ने भी अपने हाथ आजमाए। इनके अलावा देवीप्रसाद उपाध्याय, गुलाबदास, विश्वेश्वरप्रसाद वर्मा और रामलाल वर्मा आदि ने भी उपन्यास लेखन के छिटपुट प्रयत्न किए।

जासूसी उपन्यासकारों में गोपालराम गहमरी ने सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। उन पर अंग्रेजी के सर आर्थर कानन डायल का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उन्होंने सन् 1900 में जासूस नामक मासिक पत्र निकाला। उन्होंने इस पत्र के लिए कई उपन्यास लिखे। अद्‌भुत लाश (सन् 1896), गुप्तचर (सन् 1899), बेकसूर की फाँसी (सन् 1900), सरकटी लाश (सन् 1900) आदि उनके कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। उन्हें हिन्दी का 'आर्थर कानन डायल' कहा गया है। उनके अलावा रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, रामप्रसाद लाल आदि ने भी ऐसे कुछेक उपन्यास लिखे हैं।

प्रेमचन्द पूर्व युग में अनुवाद द्वारा भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया गया। इस युग में सर्वाधिक अनुवाद बंगला साहित्य से किया गया। उसके बाद मराठी, गुजराती, अंग्रेजी और उर्दू से भी कई उपन्यासों का अनुवाद किया गया। प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासों की विविधता ने प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों को ठोस आधार-भूमि प्रदान की। उसके बिना प्रेमचन्दयुगीन उपन्यासों में विषयवस्तु की स्पष्टता, व्यापकता शिल्प की उत्कृष्टता सम्भव नहीं हो सकती थी।

स्वतन्त्रता पूर्व के हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्दयुगीन हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्द युग की समय-सीमा सन् 1918 से सन् 1936 तक मानी जाती है। यह समय-सीमा छायावाद युग की भी है। हिन्दी उपन्यास के विकास में प्रेमचन्द और उनके युग का बहुत महत्व है। प्रेमचन्द पहले ऐसे उपन्यासकार हैं, जिन्होंने भारतीय जन-जीवन की समस्याओं को गहराई से समझा। उनके उपन्यास आम आदमी के दुख-दर्द की दास्तान हैं। उनके पहले उपन्यास में जन-जीवन की व्याप्ति नहीं थी। प्रेमचन्द पर आर्यसमाज और गांधीवाद का प्रभाव था। पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी वे भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। प्रेमचन्द मानवतावाद से भी प्रभावित थे। प्रेमचन्द ने आरम्भ में आदर्शवादी उपन्यासों की रचना की। कालांतर में उनका झुकाव यथार्थवाद की ओर हो गया। इस तरह उनके लेखन के लिए एक नया पद 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' बना। प्रेमचन्द ने अपने लेखन में जीवन के व्यापक फलक को सृजित किया है। सेवासदन (1918 ई.), प्रेमाश्रम (1921 ई.), रंगभूमि (1925 ई.), कायाकल्प (1926 ई.), निर्मला (1927 ई.), गबन (1931 ई.), कर्मभूमि (1932 ई.), गोदान (1936 ई.) और मंगलसूत्र (1936 ई.-अधूरा) आदि प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास हैं। प्रेमचन्द ने सीधी-सरल भाषा में लिखा है। उनका मानना है कि उन्होंने आलोचकों के लिए नहीं बल्कि पाठकों के लिए लिखा है।

प्रेमचन्द से प्रभावित होकर उपन्यास लेखन में प्रवृत्त होने वाले रचनाकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, श्रीनाथ सिंह, शिवपूजन सहाय, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, चंडीप्रसाद 'हृदयेश' राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त आदि प्रमुख हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक (1891-1945 ई.) के दो उपन्यास माँ और भिखारिणी को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली है। प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में

शिवपूजन सहाय का एक मात्र उपन्यास देहाती दुनिया (1926 ई.) प्रसिद्ध है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' के उपन्यासों में भावपूर्ण आदर्शवादी शैली में मनुष्य की सद्वृत्तियों की महिमा अंकित की गई है। प्रेमचन्द की तरह ही राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (1890 ई.-1971 ई.) और सियारामशरण गुप्त ने भी गांधीवादी दर्शन से प्रभावित होकर उपन्यासों की रचना की है।

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास

प्रेमचन्दोत्तर युग में दो पीढियाँ उपन्यास लेखन में सक्रिय रही हैं। एक पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है, जिनका मानस संस्कार प्रेमचन्द युग में बना लेकिन उन्होंने बाद में अपनी नई राह बना ली। दूसरी पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र में आई। उन उपन्यासकारों ने उपन्यास लेखन में नई सम्भावनाओं की ओर संकेत किया। रामचन्द्र तिवारी का मानना है कि पिछले कुछ वर्षों में उपन्यास लेखकों की एक तीसरी पीढ़ी भी तैयार हो गई। ये पीढियाँ मूल्य और मान्यता के स्तर पर एक-दूसरे से जुडी हुई हैं। अगर वर्गीकरण की बात की जाए तो सामान्यत: इन उपन्यासों को सामाजिक, मानवतावादी, स्वच्छन्दतावादी, प्रकृतवादी, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, सामाजिक यथार्थवादी, ऐतिहासिक और आंचलिक वर्गों में रखा जा सकता है। वैसे इस वर्गीकरण के बावजूद कई ऐसे उपन्यास हैं जिनमें कई वर्गों की प्रवृत्तियाँ घुल-मिल गई हैं। इस वर्गीकरण के अलावा कई उपन्यासों में आधुनिकता और जनवाद को केन्द्र में रखा गया है।

डॉ. बच्चन सिंह ने सन् 60 के बाद से हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता और जनवादी धाराओं को प्रवाहित होता हुआ लक्षित किया है। उन्होंने आधुनिकतावादी धारा को 'प्रयोगवाद' का अगला कदम माना और जनवादी विचारधारा को प्रगतिवादी विचारधारा की अग्रिम कड़ी।' रामचन्द्र तिवारी ने किसी भी वर्गीकरण को सर्वथा उपयुक्त नहीं माना। इसीलिए उन्होंने इतिहास ग्रन्थों में सामान्य रूप से स्वीकृत वर्गीकरण के अनुसार ही प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों के विश्लेषण की वकालत की है।

सामाजिक और मानवतावादी उपन्यासों में मानव की श्रेष्ठता की बात की जाती है। ऐसे उपन्यासों में उपन्यासकारों ने मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं के बावजूद सहानुभूति प्रदान की है। प्रेमचन्द के साथ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक,

सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अमृतलाल नागर, विष्णु प्रभाकर, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम उनमें प्रमुख है।

इस युग में अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में विविध विषयों को सफलतापूर्वक कथानक का रूप दिया। बूँद और समुद्र में नागर की औपन्यासिक शक्ति पूरी तरह उभर कर सामने आई है। बूँद और समुद्र के माध्यम से उन्होंने व्यक्ति और समाज की बात की है। उन्होंने शतरंज और खिलाड़ी जैसा ऐतिहासिक उपन्यास लिखा तो सुहाग के नुपूर, नाच्यौ बहुत गोपाल और अग्निगर्भा जैसे सामाजिक समस्याओं पर केन्द्रित उपन्यास भी लिखे। विष्णु प्रभाकर को नाटककार, कहानी-लेखक और जीवनीकार के रूप में अधिक सफलता मिली है। उनके उपन्यासों में मानवतावादी स्वर सुनाई पड़ता है। उनके उपन्यासों में अर्धनारीश्वर को अधिक सफलता मिली। इस उपन्यास में समाज के सभी वर्गों की स्त्रियों पर होने वाले बलात्कार और अन्य अत्याचारों पर लेखनी चलाई गई है।

इस युग के उदयशंकर भट्ट ने मछुआरों के जीवन पर सागर, लहरें और मनुष्य लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की है।

स्वच्छन्दतावादी उपन्यास लेखकों में वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राधिका रमणप्रसाद सिंह, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', 'अज्ञेय', मन्मथनाथ गुप्त, रामेश्वर शुक्ल, 'अंचल', लक्ष्मीनारायण लाल और धर्मवीर भारती आदि का नाम आता है। इनके अलावा हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा (सन् 1946) और मार्क्सवादी लेखकों यशपाल और राहुल सांकृत्यायन में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार अपने सभी उपन्यासों में द्विवेदी जी ने परम्परागत सामाजिक बन्धनों को तोड़कर स्वच्छन्द मानवतावादी जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करके अपने रोमानी झुकाव का परिचय दिया है।

प्रकृतवादी उपन्यासों के लेखन में पाण्डेय बेचन शर्मा का नाम अग्रगण्य है। ऋषभचरण जैन का नाम भी इसी श्रेणी के उपन्यासकारों में है। प्रकृतवादी उपन्यासों के जनक जोला हैं। उन्होंने कहा था कि लेखकों का धर्म है कि वे जीवन के गन्दे से गन्दे और कुरूप चित्र खींचे।

व्यक्तिवादी उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सत्ता और अस्तित्त्व को समाज से पहले स्वीकार किया है। इस दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत रामगोसाई, प्रश्न और मरीचिका), उपेन्द्रनाथ 'अश्क

(गिरती दीवारें, गर्म राख, शहर में घूमता आईना, एक नन्हीं कन्दील, सितारों के खेल में), भगवती प्रसाद वाजपेयी (पतिता की साधना), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' और उषा देवी मित्र आदि उल्लेखनीय हैं।

मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, डॉ. देवराज (भीतर का घाव) अग्रणी हैं। इन उपन्यासकारों के उपन्यासों में मुख्य रूप से मनोविश्लेषण के आधार पर पात्रों के आन्तरिक द्वंद्व का चित्रण किया गया है। सामाजिक यथार्थवादी (प्रगतिवादी) उपन्यासकारों में नागार्जुन, यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, रांगेय राघव, भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि प्रमुख हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग के हिन्दी उपन्यास

स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्राम कथाकारों का नया वर्ग खड़ा हुआ। आंचलिक कथाकारों ने अंचल विशेष को नायक बनाकर उपन्यासों में प्रस्तुत किया। ऐसे कथाकारों में पहला नाम फणीश्वरनाथ रेणु का है। उनका पहला उपन्यास मैला आँचल सन् 1954 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज कस्बे को केन्द्र में रखा गया है। परती परिकथा उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। आंचलिक उपन्यासकारों के साथ-साथ उपन्यासकारों का एक ऐसा वर्ग भी है, जो अपने को ग्राम कथाकार कहलाना ज्यादा पसन्द करते हैं। अपने आप को आंचलिक शब्द की सीमा में सिमटा हुआ नहीं मानते। उनका मानना है कि हिन्दी में ग्राम कथा की समृद्ध परम्परा है जिसके शिखर प्रेमचन्द हैं। ये उपन्यासकार खुद को प्रेमचन्द की परम्परा का कथाकार कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। इन ग्राम कथाकारों में शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, विवेकी राय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में भीष्म साहनी, राही मासूम रजा, बदीउज्जमाँ, मंजूर एहतेशाम का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारत विभाजन के समय की स्थितियों-परिस्थितियों को कथ्य बनाकर लिखा गया भीष्म साहनी का तमस, राही मासूम रजा का आधा गाँव, बदीउज्जमाँ का छाको की वापसी विशिष्ट उपन्यास हैं। आधा गाँव (सन् 1968) में गाजीपुर के एक मुस्लिम बहुल गाँव गंगौली की कथा कही गई है। इस उपन्यास में राही मासूम रजा के इस दर्द को अभिव्यक्ति मिली है कि लोग गंगौली के वासी होने से अधिक सुन्नी और शिया होते जा रहे हैं। गंगौली को भारत का प्रतीक मानकर यह कहा जा सकता है कि लोग भारतीय होने से अधिक हिन्दू-मुसलमान होते जा रहे हैं।

विभाजन को आधार बनाकर सन् 1958 में यशपाल का झूठा सच (दो खण्डों में) प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भारत के विभाजन की पूर्वपीठिका, विभाजन की विभीषिका और उसके उत्तर प्रभाव का बहुत विषद चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने बँटवारे के समय, उसके पूर्व और पश्चात की साम्प्रदायिक विभीषिका में जलते हुए भारत और पाकिस्तान का मार्मिक चित्र खींचा है।

भारत विभाजन को मुख्य विषय बनाकर भीष्म साहनी ने तमस की रचना की। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1973 में हुआ। इस उपन्यास में भीष्म साहनी ने स्वाधीनता-प्राप्ति से कुछ समय पूर्व को कथानक का आधार बनाया। इसमें साम्प्रदायिक विभीषिका और उसके प्रभावों को दिखलाया गया है। लेखक ने बखूबी दिखलाया है कि अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालने के लिए षड्यन्त्र किए हैं। राजनीतिक चेतना और उससे उत्पन्न सामाजिक विसंगतियाँ, दोनों को रचना (उपन्यास) का विषय बनाया गया है।

इसी काल में कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्बदा आदि लेखिकाएँ भी उपन्यास लेखन में सक्रिय हुई। कृष्णा सोबती का जिन्दगीनामा विशेष प्रसिद्ध है। इस उपन्यास में पंजाब के एक गाँव को आधार बनाकर पूरे गाँव का जीवन्त दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी उपन्यासों में उस दौर तक का सर्वथा अनूठा उपन्यास मछली मरी हुई (राजकमल चौधरी) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास लिखा तो गया सन् 1960 में ही, पर प्रकाशित हुआ सन् 1966 में। स्त्री समलैंगिकता के सहारे उस दौर के अर्थतन्त्र के व्यूह और दैहिक राजनीति को उजागर करने का यह बहुत ही शानदार प्रयास किया गया। बाद के दिनों में इस तरह की सामाजिक वृत्तियों पर आधारित कोई उपन्यास नहीं लिखा गया। हिन्दी उपन्यास के विकासक्रम में यह अनूठा कदम था। राजकमल चौधरी ने हिन्दी में इसके अलावा और भी सात उपन्यास लिखे– अग्निस्थान, देहगाथा, शहर या शहर नहीं था, बीस रानियों के बाइस्कोप, एक अनार एक बीमार, ताश के पत्तों का शहर, नदी बहती थी आदि। प्रकृतवाद का अनुपम उदाहरण है राजकमल चौधरी का उपन्यास लेखन।

मन्नू भण्डारी ने हिन्दी कथा साहित्य को नारी जीवन की तत्कालीन जीवन्त समस्याओं से जोड़ा। आपका बंटी (सन् 1971) उपन्यास लिखकर लेखिका ने तलाकशुदा दम्पत्ति के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव का मनोवैज्ञानिक

चित्र खींचा है। मन्नू भंडारी के एक अन्य उपन्यास महाभोज (सन् 1979) ने बहुत ख्याति अर्जित की। इस उपन्यास के लेखन से यह संकेत मिलता है कि लेखिकाएँ अब घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर समाज के व्यापक सन्दर्भों और जनहित की बात करने लगी हैं।

इस काल में उषा प्रियम्बदा ने भी अपने लेखन से पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया। उनके लेखन के केन्द्र में आधुनिकता के सारे तत्त्व - अकेलापन, संत्रस, ऊब, घुटन, अजनबीपन विद्यमान हैं। पचपन खम्भे लाल दीवारें (सन् 1961), रुकोगी नहीं राधिका (सन् 1967) में ये सारे तत्त्व किसी न किसी रूप में कथा नायिका के व्यक्तित्त्व के अंग बने हुए हैं।

इस कालखण्ड में काशीनाथ सिंह ने अपना मोर्चा (सन् 1972), शिवानी ने चौदह फेरे (सन् 1965), कृष्णकली (सन् 1968), मृदुला गर्ग ने चितकोबरा (सन् 1979) जैसे उपन्यास लिखकर अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की। अपना मोर्चा में सन् 1967 के भाषा-आन्दोलन को केन्द्र में रखकर वर्तमान विश्वविद्यालयी शिक्षा के पूरे ढाँचे का खोखलापन उजागर किया गया है। काशी का अस्सी उनका उल्लेखनीय उपन्यास है। इस उपन्यास के केन्द्र में काशी का अस्सी मोहल्ला है। शिवानी के उपन्यासों में मनोरंजक कथा, रहस्य, रोमांच, भावुकता, स्वच्छन्द कल्पना आदि का पुट मिलता है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में अभिजातवर्गीय नारी के स्वातंत्र्य, प्रेम विवाह, वैवाहिक जीवन की एकरसता, ऊब, ताजगी की तलाश में पर-पुरुष की ओर झुकाव, प्रेम की अनुभूति के सूक्ष्म विश्लेषण का पुट मिलता है।

समकालीन उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ

सन् 1990 के आस-पास भारतीय समाज में नवीन हलचलें प्रारम्भ हुईं। सन् 1992 में मन्दिर-मस्जिद का विवाद उठा और बाबरी मस्जिद तोड़ी गई। समाज में एक तरफ साम्प्रदायिक शक्तियाँ सक्रिय थीं, तो दूसरी तरफ लोग जातियों में भी लामबंद होने लगे थे। मण्डल-कमण्डल और मन्दिर-मस्जिद विवाद ने ऐसी सामाजिक हलचल को जन्म दिया जहाँ से उपन्यासकारों को उपन्यास लेखन की नई खुराक मिली। दूधनाथ सिंह (आखिरी कलाम), संजीव (त्रिशूल), अब्दुल बिस्मिल्लाह (मुखड़ा क्या देखे), असगर वजाहत (सात आसमान, कैसी आगि लगाई), मैत्रेयी पुष्पा (अल्मा कबूतरी), चित्र मुद्गल

(आंवा), मृदुला गर्ग (इदन्नम), गीतांजलि श्री (माई), नासिरा शर्मा (जिन्दा मुहावरे), गोविन्द मिश्र आदि इस काल खण्ड के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

इसी समय दलित, स्त्री, आदिवासी और थर्ड जेण्डर विमर्श साहित्य में अपनी जगह बनाने लगे। कहा जाता है कि सन् 1970 में महाराष्ट्र के दलित पैन्थर ने 'दलित' शब्द का प्रचार किया। सबसे पहले सन् 1960 के आस-पास मराठी भाषा में दलित लेखन शुरू हुआ। मराठी दलित साहित्य आम्बेडकर की विचारधारा पर आधारित है। हिन्दी में दलित लेखन की शुरुआत सन् 1980 के आस-पास हुई। दलित साहित्य में आत्मकथाएँ, कहानियाँ और कविताएँ अधिक लिखी जा रही हैं। उपन्यास के क्षेत्र में दलित साहित्य अभी तक कोई उल्लेखनीय कृति नहीं दे सका है। तुलसीराम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिश राय, श्योराजसिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम, अजय नावरिया, कँवल भारती आदि हिन्दी के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार हैं।

स्त्री विमर्श में स्त्री अस्मिता और उसकी पहचान की बात की गई है। यद्यपि कई बार दलित विमर्श की तरह स्त्री विमर्श में भी यह बात उठती है कि स्त्री लेखन अपनी पूरी शक्ति व तेजस्विता के साथ स्त्री रचनाओं की लेखनी से ही किया जा सकता है, फिर भी कई रचनाएँ पुरुष रचनाकारों द्वारा भी सृजित की गईं, जिनमें स्त्री प्रश्नों का मुद्दा उठाया गया है। इस क्षेत्र में कई उपन्यास पौराणिक विषय को आधुनिक सन्दर्भ देते हुए लिखे गए तो कई आधुनिक विषय को भिन्न-भिन्न स्वरूप देते हुए। समकालीन समय में काशीनाथ सिंह, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह, विनोद कुमार शुक्ल, मनोहरश्याम जोशी, संजीव, चित्र मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, अलका सरावगी, जया जादवानी, मधु कांकरिया आदि उपन्यास लेखन में सक्रिय हैं।

आजकल किन्नर विमर्श भी सामने आ रहा है। किन्नरों की समस्या को केन्द्र में रखकर कई उपन्यास लिखे गए हैं। इन उपन्यासों में किन्नरों की सामाजिक समस्याओं और उनकी मनोभूमि का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसमें प्रदीप सौरभ की तीसरी ताली, नीरजा माधव की यमदीप, खुशवन्त सिंह की दिल्ली, महेंद्र भीष्म की किन्नर कथा और निर्मला भुराड़िया की गुलाम मण्डी प्रसिद्ध है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास साहित्य आदिवासी विमर्श को भी अपने केन्द्र में रखता है। इन उपन्यासों में आदिवासियों का जंगल-जमीन से जुड़ाव, उन्हें जंगल-जमीन से दूर करने के सरकारी पैतरों और उनकी अस्मिता से जुड़े प्रश्न

उठाए गए हैं। इन उपन्यासों में विनोद कुमार का समर शेष है, रणेन्द्र का ग्लोबल गाँव का देवता और गायब होता देश आदि उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास साहित्य आधुनिक युग की देन है। आधुनिक युग में ही शुरू होकर उपन्यास साहित्य ने जिस ऊँचाई को प्राप्त किया है, अन्य गद्य विधाओं ने नहीं। इसका सीधा-सा कारण है कि उपन्यास में रचनाकार को अपनी बात कहने का अवकाश मिलता है। सामाजिक हलचलों के साथ चलने वाली गद्य की यह अनोखी विधा है। आज यह नए-नए रूपों में पुष्पित-पल्लवित हो रही है।

3

उपन्यास

परिचय

अर्नेस्ट ए. बेकर ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए उसे गद्यबद्ध कथानक के माध्यम द्वारा जीवन तथा समाज की व्याख्या का सर्वोत्तम साधन बताया है। यों तो विश्वसाहित्य का प्रारंभ ही संभवत: कहानियों से हुआ और वे महाकाव्यों के युग से आज तक के साहित्य का मेरुदंड रही हैं, फिर भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन कहना अधिक समीचीन होगा। साहित्य में गद्य का प्रयोग जीवन के यथार्थ चित्रण का द्योतक है। साधारण बोलचाल की भाषा द्वारा लेखक के लिए अपने पात्रों, उनकी समस्याओं तथा उनके जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करना आसान हो गया है। जहाँ महाकाव्यों में कृत्रिमता तथा आदर्शोन्मुख प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है, आधुनिक उपन्यासकार जीवन की विशृंखलताओं का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने में ही अपनी कला की सार्थकता देखता है।

यथार्थ के प्रति आग्रह का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि कथा साहित्य के अपौरुषेय तथा अलौकिक तत्त्व, जो प्राचीन महाकाव्यों के विशिष्ट अंग थे, पूर्णतया लुप्त हो गए। कथाकार की कल्पना अब सीमाबद्ध हो गई। यथार्थ की परिधि के बाहर जाकर मनचाही उड़ान लेना उसके लिए प्राय: असंभव हो गया। उपन्यास का आविर्भाव और विकास वैज्ञानिक प्रगति के साथ हुआ। एक ओर

जहाँ विज्ञान ने व्यक्ति तथा समाज को सामान्य धरातल से देखने तथा चित्रित करने की प्रेरणा दी वहीं दूसरी ओर उसने जीवन की समस्याओं के प्रति एक नए दृष्टिकोण का भी संकेत किया। यह दृष्टिकोण मुख्यत: बौद्धिक था। उपन्यासकार के ऊपर कुछ नए उत्तरदायित्व आ गए थे। अब उसकी साधना कला की समस्याओं तक ही सीमित न रहकर व्यापक सामाजिक जागरूकता की अपेक्षा रखती थी। वस्तुत: आधुनिक उपन्यास सामाजिक चेतना के क्रमिक विकास की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जीवन का जितना व्यापक एवं सर्वांगीण चित्र उपन्यास में मिलता है उतना साहित्य के अन्य किसी भी रूप में उपलब्ध नहीं।

सामाजिक जीवन की विशद व्याख्या प्रस्तुत करने के साथ ही साथ आधुनिक उपन्यास वैयक्तिक चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की भी सुविधा प्रदान करता है। वास्तव में उपन्यास की उत्पत्ति की कहानी यूरोपीय पुनरुत्थान (रेनैसाँ) के फलस्वरूप अर्जित व्यक्ति स्वातंत्र्य के साथ लगी हुई है। इतिहास के इस महत्वपूर्ण दौर के उपरांत मानव को, जो अब तक समाज की इकाई के रूप में ही देखा जाता था, वैयक्तिक प्रतष्ठा मिली। सामंतवादी युग के सामाजिक बंधन ढीले पड़े और मानव व्यक्तित्त्व के विकास के लिए उन्मुक्त वातावरण मिला। यथार्थोन्मुख प्रवृत्तियों ने मानव चरित्र के अध्ययन के लिए भी एक नया दृष्टिकोण दिया। अब तक के साहित्य में मानव चरित्र के सरल वर्गीकरण की परंपरा चली आ रही है। पात्र या तो पूर्णतया भले होते थे या एकदम गए गुजरे। अच्छाइयों और त्रुटियों का सम्मिश्रण, जैसा वास्तविक जीवन में सर्वत्र देखने को मिलता है, उस समय के कथाकारों की कल्पना के परे की बात थी। उपन्यास में पहली बार मानव चरित्र के यथार्थ, विशद एवं गहन अध्ययन की संभावना देखने को मिली।

अंग्रेजी के महान उपन्यासकार हेनरी फील्डिंग ने अपनी रचनाओं को गद्य के लिखे गए व्यंग्यात्मक महाकाव्य की संज्ञा दी। उन्होंने उपन्यास की इतिहास से तुलना करते हुए उसे अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण कहा। जहाँ इतिहास कुछ विशिष्ट व्यक्तियों एवं महत्वपूर्ण घटनाओं तक ही सीमित रहता है, उपन्यास प्रदर्शित जीवन के सत्य, शाश्वत और संर्वदेशीय महत्व रखते हैं। साहित्य में आज उपन्यास का वस्तुत: वही स्थान है, जो प्राचीन युग में महाकाव्यों का था। व्यापक सामाजिक चित्रण की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। लेकिन जहाँ महाकाव्यों में जीवन तथा व्यक्तियों का आदर्शवादी चित्र मिलता है, उपन्यास, जैसा

फील्डिंग की परिभाषा से स्पष्ट है, समाज की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार के लिए कहानी साधन मात्र है, साध्य नहीं। उसका ध्येय पाठकों का मनोरंजन मात्र भी नहीं। वह सच्चे अर्थ में अपने युग का इतिहासकार है, जो सत्य और कल्पना दोनों का सहारा लेकर व्यापक सामाजिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है।

उपन्यासिका

उपन्यास के समानांतर इधर उपन्यासिका नामक नवीन गद्य विधा का सूत्रपात हुआ है

हिंदी साहित्य में उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास शब्द के प्रथम प्रयोग के संदर्भ में गोपाल राय लिखते हैं कि- 'हिन्दी में नॉवेलके अर्थ में उपन्यास पद का प्रथम प्रयोग 1875 ई. में हुआ।'

प्रथम उपन्यास

बाणभट्ट की कादम्बरी को विश्व का प्रथम उपन्यास माना जा सकता है। कुछ लोग जापानी भाषा में 1007 ई. में लिखा गया "जेन्जी की कहानी" नामक उपन्यास को दुनिया का सबसे पहला उपन्यास मानते हैं। इसे मुरासाकी शिकिबु नामक एक महिला ने लिखा था। इसमें 54 अध्याय और करीब 1000 पृष्ठ हैं। इसमें प्रेम और विवेक की खोज में निकले एक राजकुमार की कहानी है।

यूरोप का प्रथम उपन्यास सेर्वैन्टिस का "डोन क्विक्सोट" माना जाता है, जो स्पेनी भाषा का उपन्यास है। इसे 1605 में लिखा गया था।

अंग्रेजी का प्रथम उपन्यास होने के दावेदार कई हैं। बहुत से विद्वान 1678 में जोन बुन्यान द्वारा लिखे गए "द पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस" को पहला अंग्रेजी उपन्यास मानते हैं।

भारतीय भाषाओं में उपन्यास

जिसे बँगला और हिंदी में उपन्यास कहा जाता है गोपाल राय के अनुसार उसे 'उर्दू में 'नाविल', मराठी में 'कादम्बरी' तथा गुजराती में 'नवल कथा' की संज्ञा प्राप्त हुई है।'

हिन्दी का प्रथम उपन्यास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार परीक्षा गुरु हिन्दी का प्रथम उपन्यास है। इसके लेखक लाला श्रीनिवास दास हैं। 'देवरानी जेठानी की कहानी' (लेखक – पंडित गौरीदत्त, सन् 1870)। श्रद्धाराम फिल्लौरी की भाग्यवती को भी हिन्दी के प्रथम उपन्यास होने का श्रेय दिया जाता है।

मलयालम

इंदुलेखा – रचनाकाल, 1889, लेखक चंदु मेनोन

तमिल

प्रताप मुदलियार – रचनाकाल 1879, लेखक, मयूरम वेदनायगम पिल्लै

बंगाली

दुर्गेशनंदिनी – रचनाकाल, 1865, लेखक, बंकिम चंद्र चटर्जी

मराठी

यमुना पर्यटन – रचनाकाल, 1857, लेखक, बाबा पद्मजी।

इसे भारतीय भाषाओं में लिखा गया प्रथम उपन्यास माना जाता है।

इस तरह हम देख सकते हैं कि भारत की लगभग सभी भाषाओं में उपन्यास विधा का उद्भव लगभग एक ही समय दस-बीस वर्षों के अंतराल में हुआ।

उपन्यास का स्वरूप

उपन्यास शब्द उप तथा न्यास शब्दों के मेल से बना है, जिसका अर्थ है निकट रखी हुई वस्तु। साहित्य के अनुसार उपन्यास वह कृति है जिसे पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब हमारी ही भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। उपन्यास आधुनिक युग की देन है तथा इसका हमारी अन्तः व बाह्य जगत की जितनी यथार्थ एवं सुन्दर अभिव्यक्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है उतनी किसी अन्य विधा में नहीं। इसमें युग विशेष के सामाजिक जीवन और जगत की झांकियां संजोई जाती हैं, मनोवैज्ञानिक रूप से सबसे मार्मिक अभिव्यक्ति भी उपन्यास साहित्य में मिलती है।

उपन्यास के द्वारा लेखक पाठक के सामने अपने हृदय की कोई विशेष बात का कोई नवीन मत या विचार प्रस्तुत करना चाहता है, साहित्य के जितने रूप विधान होते है उनमें उपन्यास का रूप विधान सर्वाधिक लचीला है,वह परिस्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर लेता है, इसलिए इसमें एक दिन एक वर्ष या एक युग दिएरी की कथा भी हो सकती है।

इसमें घटनाएं कैसी भी हो परन्तु उसमे तारतम्य/सम्बन्ध अवश्य होता है प्रेमचंद ने उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र कहा है"।

वस्तुतः उपन्यास मानव जीवन का वह मुँह चित्र है जिसे मानव मन के प्रसादन के अद्‌भुत शक्ति के साथ उसके रहस्यो के उद्‌घाटन तथा अनन्य की विचित्र क्षमता भी होती है। उपन्यासकार यह कार्य सफल चरित्र -चित्रण के सहारे सम्पन्न करता है।

उपन्यास के तत्त्व

कथा वस्तु उपन्यास का प्राण होता है, इस की कथावस्तु जीवन से सम्बन्धित होते हुये भी अधिकतर काल्पनिक होती है, किन्तु काल्पनिक कथानक स्वाभाविक एवं यथार्थ प्रतीत हो अन्यथा पाठक उसके साथ तादात्म्य (ताल -मेल) नहीं कर सकता ध्यायेगा। उपन्यासकार को यथार्थ जीवन से सम्बन्धित केवल विश्वसनीय और सम्भव घटनाओं काो ही अपनी रचनाओं में स्थान देना चाहिए तथा तथ्यों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए यही गुण उपन्यास को कहानी से अलग करती है।

इसमें एक कथा मुख्य होती है तथा अन्य कथाएँ गौण है, जो कि मुख्य कथा को गति देती रहती है, किन्तु गौण कथा मुख्या कथा की सहायक तथा विकास करने वाली होनी चाहिए इसके लिए उसमे गठनानविति का होना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि मुख्य और प्रासंगिक कथा परस्पर सम्बन्ध कौतुहल और रोचकता के साथ-साथ संगठन भी अनिवार्य है उपन्यास की सफलता इसी में है कि सभी घटनाये एक सूत्र में पिरोई हुई हो तथा उनमें कारण शृंखला बंध जाए।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास का मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र है उपन्यास में पात्रों का चरित्र चित्रण क्रियाकलापों के द्वारा होना चाहिए इसी में उपन्यास की

सफलता है वैसे उपन्यासकार अपनी ओर से भी चरित्र चित्रण करने में स्वतंत्र होता है उपन्यास में पात्र दो प्रकार के होते है प्रधान पात्र और गौण पात्र।

प्रधान पात्र –शुरू से लेकर अंत तक उपन्यास के कथानक को गति देते हैं लक्ष्य की और अग्रसर करते हैं

गौण पात्र

प्रधान पात्रो को सहायक बनाकर आते है इसका कार्य कथानक को गति देना वातावरण की गंभीरता को काम करना वातावरण की सृष्टि करना तथा अन्य पत्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी होता है।

संवाद

संवादों का प्रयोग कथानक को गति देना नाटकीयता लाना पात्रों के चरित्र का उद्‌घाटन करना वातावरण की सृष्टि करा आदि कई उद्देश्यों से होता है। सम्बन्ध मुख्य रूप से कथोपकथन (संवाद) पात्रों के भावो विचरों संवेदनाओं मनोवृत्तियों आदि को व्यक्त करने में सहायक होते है। कथोपकथन की कथा और विषय पात्रों के अनुकूल होनी चाहिए एक सफल उपन्यास के सफल कथोपकथन, कौतुहलवर्धक नाटकीयता से पूर्ण, सौद्देशय व स्वाभाविकतापूर्ण होते है उनमे मुश्किल नहीं होती है।

वातावरण

देशकाल वातावरण का निर्माण प्रत्येक उपन्यास में आवश्यक है पाठक उपन्यास के युग और उसकी परिस्थिति से बहुत दूर होता है उन्हें पूरी तरह समझने के लिए उसे उपन्यासकार के वर्णन का सहारा लेना पड़ता है इसीलिए पाठक के प्रति उपन्यासकार का दाईत्व बढ़ जाता है इसके अतिरिक्त लेखक को पात्रों की मानसिकता स्थिति परिस्थतियों आदि का भी ध्यान करना पड़ता है पात्रों के बाह्य व आंतरिक वातावरण का सफल चित्रण लेखक तभी कर सकता है जब वह अपने देश काल वेश-भूषा आदि के बारे में पूरी जानकारी रखता है।

भाषा शैली

उपन्यास में वस्तु अभिव्यक्ति कला का विशेष महत्व होता है। भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है और शैली उसके कथन का ढंग अपनी भाषा के द्वारा

उपन्यासकार अपने भाषा पाठक तक सम्प्रेषण करता है। अत: उसका सुबोध होना आवश्यक है ताकि पाठक लेखन के भावों एवं विचारों के साथ ही उसका साहित्य होना भी आवश्यक है, उसमें अलंकार, मुहावरे लोकोक्ति आदि का यथा स्थान प्रयोग होना चाहिए। कथावस्तु की अभिव्यक्ति की अनेक शैलियां हो सकती है ऐतिहासिक उपन्यास अधिकतर कथ्यात्मक शैली में लिखे जाते है वर्तमान जीवन से सम्बन्धित उपन्यास आत्मकथ्यात्मक शैली में अधिक सजीव हो सकते है इसके अतिरिक्त पूर्व दीप्ती डायरी शैली आदि का प्रयोग भी उपन्यास में किया जाता है।

जीवन दर्शन व उद्देश्य

हमारी गद्य साहित्य सृष्टि के पीछे कोई न कोई भारतीय मान्यता या उद्देश्य आदि आवश्यक रहता है एक अनुभवी उपन्यासकार का जीवन और जगत प्रति उसकी प्रत्येक समस्या के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है, जो किसी न किसी रूप में उपन्यास के पात्रों व घटनाओ के माध्यम से अभिव्यक्ति पते है, यही उपन्यासकार का उद्देश्य या अभिव्यंजयी जीवन दर्शन होता है। अत: इसकी अभिव्यक्ति शोषक ढंग से होनी चाहिए तभी वह प्रभावशाली सिद्ध होगा।

उपन्यास के उदय के कारण

उपन्यास यूरोप की देन है, जो बांग्ला साहित्य में अनुवाद के माध्यम से आया।

उपन्यास शब्द बांग्ला साहित्य की देन है।

मुद्रण व गद्य के विकास ने ही उपन्यास को जन्म दिया।

उपन्यास को आधुनिक जीवन का 'महाकाव्य' कहा जाता है।

आरंभ में उपन्यास मनोरंजन, आदर्श व शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखा जाता था। आज उपन्यास साहित्य यथार्थ के विविध रूपों में लिखा जा रहा है। यह व्यक्ति केंद्रित तो हुआ ही है समाज के उपेक्षित वर्ग को भी अपने कथानकों में समाहित कर चुका है।

आधुनिक युग की परिस्थितियों ने ही हिंदी उपन्यास को जन्म दिया।

उपन्यास शब्द 'उप' समीप और 'न्यास' थाती के योग से बना है। जिसका अर्थ होता है निकट रखी हुई वस्तु। अर्थात वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है, इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिंब है, इसमें

हमारी ही कथा हमारी ही भाषा में कही गई है। उपन्यास की इस वास्तविक जमीन को सर्वप्रथम 'प्रेमचंद' ने पहचाना था।

उपन्यास का अर्थ

उपन्यास शब्द के अर्थ में विविधता है, क्योंकि उसके निहित अर्थ में सदैव परिवर्तन होता रहता है। उपन्यास का पाठक समझता है कि उपन्यास वह गद्य रूप है जिसे आधुनिक युग का 'महाकाव्य' कहा जाता है। महाकाव्य में प्रबंध ध्वनित होता है, जो जीवन के बहुविध विस्तार को समेटने में सक्षम है। यही परिस्थिति उपन्यास की भी रही है पर उपन्यास का अर्थ और स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। कथानक उपन्यास का मूल तत्त्व है, पर कुछ उपन्यास बिना कथानक के भी लिखे गए हैं वह 'आपबीती' और 'जगबीती' भी है।

किसी भी साहित्य प्रवृत्ति के पीछे उसकी तात्कालिक परिस्थितियां काम करती है, यह सत्य है। यह भी सत्य है कि बिना किसी कारण का कोई भी कार्य संभव नहीं होता। उपन्यास उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य विधा है।

उपन्यास के उदय के पीछे भी समाज और युग की विशिष्ट परिस्थितियों का योग है। उपन्यास पूंजीवादी युग में विकसित होने वाला साहित्य रूप है।

उपन्यास के उदय के कारण

किसी भी साहित्यिक विधा के उदय के मूल कारण और परिस्थितियां मौजूद होती है उपन्यास भी एक साहित्यिक विधा है, उसके उदय के लिए अनेक कारण उपस्थित रहते हैं। वह कारण निम्नलिखित है–

सामंतवाद का ह्रास

सामंतशाही भारतीय समाज की रीढ़ रही है। इसकी मूल प्रवृत्ति है 'अन्याय' और 'शोषण' उपन्यास जनसामान्य ग्राहय विद्या है इसलिए महाकाव्य के पतन के साथ उपन्यास विधा का उद्‌भव संभव हो सका।

पूंजीवादी सभ्यता

पूंजीवादी सभ्यता अंग्रेजों की देन है। सामंतवाद के ह्रास के साथ पूंजीवाद विकसित हुआ और महाकाव्य के पतन के साथ उपन्यास का उदय।

महाकाव्य प्राचीन साहित्य के रूप में है, जबकि उपन्यास आधुनिक साहित्य रूप में।

आधुनिक मध्यम वर्ग का उदय

सामंतवाद के ह्रास के साथ पूंजीवादी व आधुनिक मध्यवर्ग का उदय हुआ। यह मध्य वर्ग शिक्षित और बौद्धिक था।

'हिगले' ने कहा था – 'उपन्यास मध्यमवर्ग का महाकाव्य है।'

वास्तव में उपन्यास आधुनिक युग का और मध्यमवर्ग का महाकाव्य है। उपन्यास मध्यमवर्ग की दास्तान है, हिंदी का उपन्यास साहित्य भी मध्यवर्ग को समर्पित है। मुद्रण कला का विकास और पत्र–पत्रिकाएं उपन्यास के उदय के कारणों में एक मुख्य कारण है। मुद्रण कला और पत्र – पत्रिकाओं का प्रकाशित होना।

गद्य के विकास में उपन्यास का महत्व

गद्य के विकास में प्रेस की स्थापना और मुद्रण कला के विकास का महत्वपूर्ण योगदान है।गद्य के आगमन से पद्य का ह्रास हुआ और गद्य के अनेक रूप सामने आए। वस्तुत: गद्य के विकास में हिंदी उपन्यास का महत्व सर्वोपरि है।

नए पाठकों का उदय

उपन्यास गद्यात्मक विद्या होने के कारण सर्वजन ग्राह्य रही है, इसलिए उपन्यास को उसके जन्म से ही काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई और विशाल पाठक वर्ग मिला। उपन्यास का पाठक मध्यवर्ग का होता है, अक्सर देखा गया है कि नैतिक, धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से जिसे प्रतिबंधित करार दिया जाता है वह विवादास्पद होकर भी सर्वाधिक लोकप्रिय हो जाता है।

किसान चेतना और स्त्री चेतना

उपन्यास में किसान चेतना की अभिव्यक्ति एक प्रमुख घटना है, इस दृष्टि से उपन्यास किसान जीवन की महागाथा है। होरी के संदर्भ में 'गोदान' किसान जीवन का महाकाव्य है। 'स्त्री चेतना' का उभार इन उपन्यास में देखने को मिलता है। गोदान में 'धनिया' उत्पीड़न न सहने वाली स्त्री का प्रतीक है।

4

हिन्दी उपन्यास का इतिहास

भारतेन्दु युग

इस युग का नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर रखा गया था। इसी युग में हिंदी में पहली उपन्यास 'परीक्षा गुरु' लाला श्रीनिवासदास द्वारा लिखी गयी थी। हिंदी में भारतेंदु से पूर्व जो कथात्मक पुस्तकें लिखी गईं। वे आधुनिक उपन्यास और कहानी से मिलती-जुलती होने पर भी उनसे भिन्न थीं। वास्तव में उपन्यास और कहानी पश्चिमी साहित्य की देन है। भारतेन्दु-युग में जो उपन्यास लिखे गये, उनमें उपन्यास विद्या का उचित निर्वाह न होने के कारण उन्हें सच्चा उपन्यास नहीं कहा जा सकता है। सच तो यह है कि हिन्दी में वास्तविक उपन्यास की रचना सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही की। यों, ऐतिहासिक दृष्टि से लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षा-गुरु' (1882 ई.) ही हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। यह पश्चिमी उपन्यास की शैली पर आधारित है और यथार्थ जीवन का चित्र भी प्रस्तुत करता है, परन्तु कला की दृष्टि से बहुत अपरिपक्व है। इसमें उपदेश की प्रवृत्ति प्रधान है। 'परीक्षा-गुरु' के पूर्व भी 'देवरानी-जेठानी' (1872 ई.) 'रीति-रत्नाकर', 'वामा शिक्षक', 'भाग्यवती' आदि कुछ उपन्यास जैसी कथा-पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं परन्तु वे भी मुख्यतः शिक्षात्मक तथा अपरिपक्व हैं। भारतेन्दु ने भी 1866 ई. में कहानी 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखने का यत्न किया था और 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश' शीर्षक मराठी उपन्यास का अनुवाद व संशोधन भी किया

था। उनकी प्रेरणा से राधा चरण गोस्वामी, गदाधर सिंह, राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने बंगला के बहुत से उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया और मौलिक उपन्यास भी लिखे। इन लेखकों के अतिरिक्त बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री, रामकृष्ण वर्मा आदि और भी कई लेखकों ने बंगला उपन्यासों का अनुवाद किया। अंग्रेजी से भी कुछ उपन्यासों का अनुवाद हुआ।

भारतेन्दु काल के मौलिक कथा-ग्रन्थों और उपन्यासों में महत्वपूर्ण हैं–ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्याम स्वप्न' (काव्यात्मक गद्य-कथा), पं. बालकृष्ण भट्ट रचित 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान और एक सुजान' किशोरी लाल गोस्वामी का 'स्वर्गीय कुसुम', राधाचरण गोस्वामी का 'विधवा-विपत्ति', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', आदि।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के प्रथम चरण को 'भारतेन्दु युग' की संज्ञा प्रदान की गई है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। भारतेन्दु का व्यक्तित्त्व प्रभावशाली था, वे सम्पादक और संगठनकर्ता थे, वे साहित्यकारों के नेता और समाज को दिशा देने वाले सुधारवादी विचारक थे। उनके आसपास तरुण और उत्साही साहित्यकारों की पूरी जमात तैयार हुई। अतः इस युग को भारतेन्दु-युग की संज्ञा देना उचित है। डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है कि 'प्राचीन से नवीन के संक्रमण काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारतवासियों की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक थे, वे भारतीय नवोत्थान के अग्रदूत थे। जय भारत जय भारती जिस समय खड़ी बोली गद्य अपने प्रारिम्भक रूप में थी, उस समय हिन्दी के सौभाग्य से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। उन्होंने राजा शिवप्रसाद तथा राजा लक्ष्मण सिंह की आपस में विरोधी शैलियों में समन्वय स्थापित किया और मध्यम मार्ग अपनाया। इस काल में हिन्दी के प्रचार में जिन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष योग दिया, उनमें उदन्त मार्तण्ड, कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन अग्रणी हैं। इस समय हिन्दी गद्य की सर्वांगीण प्रगति हुई और उसमें उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि विधाओं में अनूदित तथा मौलिक रचनाएं लिखी गयीं।

भारतेन्दु मण्डल

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रभूत साहित्य रचा एवं अनेक साहित्यकारों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित एवं प्रेरित किया। इन लेखकों

में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी एवं रायकृष्णदास प्रमुख हैं। इन्होंने हिन्दी-साहित्य को समृद्ध बनाया। यही भारतेन्दु का समकालीन एवं सहयोगी साहित्यकार मण्डल भारतेन्दु मण्डल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य में यह समय भारतेन्दु युग के नाम से अभिहित किया जाता है।

भारतेन्दुकालीन कथा

कथा साहित्य के अन्तर्गत उपन्यास एवं कहानी को ग्रहण किया जाता है। भारतेन्दु काल में इन दोनों का लेखन प्रारम्भ हुआ, जिनके पृथक-पृथक विवेचन निम्नलिखित है।

उपन्यास

भारतेन्दु काल में हिन्दी की उप विधा का विकास हुआ। पण्डित बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' इस समय का उपदेश-प्रधान आदर्शवादी उपन्यास है। इसमें उस परिपूर्ण श्यामा-स्वप्न उपन्यास काव्य-सौन्दर्य से भरा हुआ है। अम्बिकादत्त व्यास का 'आश्चर्य वृत्तान्त', बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रहमचारी' और राधाकृष्णदास का 'निःसहाय हिन्दू' इस काल के अन्य उपन्यास हैं।

कहानी

कहानी का क्रमबद्ध विकास भारतेन्दु युग से होता है। इस युग में केवल बंगला तथा अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद हुए। मौलिक रूप में जो कहानियां लिखी गई, उन पर इनका प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु जी ने एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न नामक कहानी लिखी, जिसे अधिकांश विद्वान हिन्दी की प्रथम साहित्यिक तथा मौलिक कहानी मानते हैं। सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ-साथ हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियां प्रकाश में आयीं। सरस्वती के प्रारम्भिक कहानी लेखकों में किशोरीलाल गोस्वामी, पार्वतीनन्दन, बंग महिला, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. भगवानदास आदि प्रमुख हैं।

नाटक

इस युग में मौलिक तथा अनूदित दोनों ही प्रकार के नाटक लिखे गये। भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में चन्द्रावली, नीलदेवी, भारत-दुर्दशा प्रमुख हैं।

अनूदित नाटकों में कुछ बंगला से और कुछ संस्कृत से अनूदित हैं। इस काल में प्रतापनारायण मिश्र ने गौ संकट, कलि प्रभाव, ज्वारी-ख्वारी, हमीर-हठ, राधाकृष्णदास ने महारानी पद्मावती, महाराणा पताप, दु:खिनी बाला, बाबू गोकुलचन्द ने बूढ़े मुँह मुहासे, लोग चले तमाशे, आदि नाटक लिखे। श्रीनिवास दास, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास आदि इस काल के अन्य नाटककार हैं।

निबन्ध

हिन्दी में निबन्ध साहित्य का प्रारम्भ भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं से होता है। प्राय: तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में उनके सम्पादक उस समय की सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर लेख लिखा करते थे। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम कविवचन सुधा तथा हरिश्चन्द्र मैगजीन में साहित्यिक ढंग से निबन्ध लिखे। इसके बाद पं प्रतापनारायण मिश्र तथा पं बालकृष्ण भट्ट तथा बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने क्रमश: हिन्दी प्रदीप, ब्राहमण तथा आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे, जिन्हें साहित्यिक कोटि के निबन्ध कहा जाता है। इसी समय पं.बालकृष्ण भट्ट ने विनोदपूर्ण तथा गम्भीर शैली में विवेचनात्मक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबंध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी इस युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्ध लेखक हैं।

आलोचना

भारतेन्दु युग में गद्य के अन्य अंगों के साथ-साथ आलोचना विधा भी नया रूप धारण कर आगे बढ़ी। उसके स्वरूप और प्रकार में नये तत्त्वों का समावेश हुआ। साहित्यिक विवेचना में बौद्धिकता की प्रधानता हो गयी। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, नाटक आदि के साथ-साथ उनकी आलोचनाएं भी लिखी जाने लगीं। इस नवीन आलोचना के विकास में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का प्रमुख हाथ रहा। इस समीक्षा के प्रवर्तकों में भारतेन्दु, प्रेमघन, बालकृष्ण भट्ट, श्री निवास दास, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री आदि प्रसिद्ध हैं।

आनन्द कादम्बिनी नामक पत्रिका के द्वारा प्रेमघन ने पुस्तकों की विस्तृत तथा गम्भीर आलोचना प्रारम्भ की। इन्होंने श्रीनिवास दास के संयोगिता स्वयंवर नाटक की बड़ी विशद् और कड़ी आलोचना लिखकर प्रकाशित की।

द्विवेदी युग

द्विवेदी युग में भी मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यासों का प्रकाशन हुआ। इस समय अधिकतर तिलिस्म, ऐयारी, जासूसी और रोमांस के कथानक प्रस्तुत किए गए। उपन्यास घटना-प्रधान बना रहा। अंग्रेजी से भी साहसिक, जासूसी तथा प्रेमचर्या-प्रधान उपन्यासों का अनुवाद हुआ। इस युग के तीन उपन्यासकार बहुत प्रसिद्ध हैं—देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गोपालराम गहमरी। खत्री जी ने 'चन्द्रकांता', 'चन्द्रकांता-संतति' तथा 'भूतनाथ' नामक तिलस्म और ऐयारी के रोचक उपन्यास कई भागों में प्रकाशित किए। इन उपन्यासों के पहले भी भारतेन्दु काल में उन्होंने 'नरेन्द्रमोहनी', वीरेन्द्र वीर' आदि उपन्यास लिखे थे। हरेकृष्ण जोहरी आदि कई लेखकों ने उनके अनुकरण पर तिलस्मी उपन्यास लिखे। बहुत लोगों ने उनके मनोरंजक उपन्यास पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी।

किशोरीलाल गोस्वामीने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। गोस्वामी जी के सामाजिक उपन्यास वस्तुतः नाम के ही सामाजिक हैं। उनमें समाज की बहुत ही स्थूल और ऊपरी झलक है, यथार्थ चित्रण नहीं। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास के तथ्यों का उचित निर्वाह नहीं हुआ। देशकाल का भी ध्यान उन्होंने कहीं-कहीं नहीं रखा। कुछ उपन्यासों में समाज की कुरीतियों पर प्रहार करने का यत्न किया गया और यत्र-तत्र राष्ट्र-प्रेम की भावना भी है। परन्तु गोस्वामी जी के अधिकांश उपन्यास उत्तेजक श्रृंगार से युक्त हल्के मनोरंजन के साधन हैं। गोस्वामी जी ने लगभग पैंसठ उपन्यास लिखे हैं। उनमें कुछ उपन्यासों के नाम हैं 'कुसुमकुमारी', 'हृदयहारिणी', 'लबंगलता', 'रजिया बेगम', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'राजकुमारी', लखनऊ की कब्र', 'चपला', 'प्रेममयी'। जैसा कि नामों में प्रकट है ये उपन्यास नारी-प्रधान और श्रृंगारिक हैं। वास्तव में उनमें समाज और इतिहास के संदर्भ में कामुकता तथा विलासिता का अंकन हुआ है। उन्होंने 'उपन्यास' नामक पत्रिका भी निकाली थी जिसमें उनके पैंसठ छोटे-बड़े उपन्यास प्रकाशित हुए थे। आचार्य शुक्ल ने गोस्वामी जी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'इस द्वितीय उत्थानकाल के भीतर उपन्यासकार इन्हीं को कह सकते हैं, परन्तु वस्तुतः उपन्यासकार की सच्ची प्रतिभा इनमें भी नहीं है।'

गोपालराम गहमरी 'जासूस' नामक पत्रिका प्रकाशित करते थे, जिसमें उनके साठ के लगभग उपन्यास छपे। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासों के अनुकरण

पर उन्होंने 'जासूस की भूल', 'घर का भेदी', 'अद्‌भुत खून', 'भोजपुर की ठगी', आदि रहस्यपूर्ण, साहसिक और डकैती तथा ठगी की कथाएं निर्मित कीं। वैसे उन्होंने जासूसी उपन्यासों के क्षेत्र में भी आदर्श के निर्वाह और लोकोपकार की भावना के समावेश का यत्न किया और आदर्श जासूसों की सृष्टि की। गहमरी जी ने बंगला से गृहस्थ जीवन-सम्बन्धी कुछ उपन्यासों का अनुवाद भी किया था। दूसरी ओर द्विवेदी युग में कुछ ऐसे उपन्यासकार भी हुए, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नैतिकता का ध्यान रखते हुए स्वच्छ-स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत की। इस तरह के उपन्यासकारों में उल्लेखनीय हैं—हरिऔध, लज्जाराम मेहता और ब्रजनन्दन सहाय। हरिऔध जी ने 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' लिखकर इनमें मुहावरेदार ठेठ भाषा का नमूना भी पेश किया। मेहता जी ने सुधारवादी दृष्टिकोण से 'आदर्श हिन्दू', 'आदर्शदम्पति' और 'हिन्दू गृहस्थ' आदि उपन्यास लिखे। ब्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' में काव्य का आनन्द मिलता है। स्पष्ट है कि गोस्वामी जी, गहमरी जी और खत्री जी के उपन्यासों में जहाँ स्थूल सौन्दर्य और उत्तेजक शृंगारिकता प्रस्तुत है वहाँ इन उपन्यासकारों के ग्रन्थ 'उपदेशात्मक भावना की छटा दिखाने वाले या काव्यात्मक है। मानव चरित्र और मानव जीवन के सच्चे चित्रण और उपन्यास-काल की पूर्णता की ओर इस समय तक किसी का भी यथोचित ध्यान नहीं गया था। इस काल में किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त कुछ और लेखकों ने भी ऐतिहासिक उपन्यास लिखें। इनमें उल्लेखनीय हैं—गंगाप्रसाद गुप्त का 'वीर पत्नी' और 'मिश्रबंधुओं के विक्रमादित्य', चन्द्रगुप्त मौर्य' तथा 'पुष्य मित्र'।

द्विवेदी युग में भी अधिकतर साधारण जनता के मनोरंजन और मनोविनोद के लिए घटना प्रधान उपन्यास ही लिखे गये। उनमें कथा का रस तो है, किन्तु चरित्र-चित्रण का सौन्दर्य, समाज का सही अंकन और उपन्यास का परिपक्व शिल्प नहीं। इस समय के उपन्यासकारों को न तो मानव-जीवन का और न मानव-स्वभाव का सूक्ष्म एवं व्यापक ज्ञान था और न उपन्यास की कला से ही उनका अच्छा परिचय था। इस काल में अधिकतर प्रेमप्रधान, साहसिक तथा विस्मयकारक (तिलस्मी-जासूसी) उपन्यास ही लिखे गये। ऐतिहासिक, शिक्षात्मक और काव्यात्मक उपन्यास भी लिखे गये, परन्तु कम पात्र अधिकतर सौंदर्य के प्रति आकर्षित होने वाले विलासी प्रेमी-प्रेमिका और राजकुमार-राजकुमारी हैं या फिर ऐयार तथा जासूस। इस काल के उपन्यास भारतेन्दु काल के उपन्यासों की अपेक्षा रोचक और मनोरंजक अधिक हैं। शिक्षा देने की प्रवृत्ति

भी कम है। प्रतापनारायण मिश्र, गोपालराम गहमरी, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिऔध, कार्तिकप्रसाद खत्री, रूपनारायण पाण्डेय, रामकृष्ण वर्मा आदि साहित्यकारों ने बंगला, अंग्रेजी और उर्दू आदि भाषाओं के उपन्यासों का अनुवाद किया। आचार्य शुक्ल का कथन है कि हिन्दी के मौलिक उपन्यास-सृजन पर इन अनुवाद कार्यों का अच्छा प्रभाव पड़ा और इसके कारण हिन्दी उपन्यास का आदर्श काफी ऊँचा हुआ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्येतिहास का आदिकाल है। इसका पहला चरण भारतेन्दु-युग है एवं दूसरा चरण द्विवेदी-युग। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे साहित्यकार थे, जो बहुभाषाविद् होने के साथ ही साहित्य के इतर विषयों में भी समान रुचि रखते थे। उन्होंने सरस्वती का अठारह वर्षों तक संपादन कर हिन्दी पत्रकारिता में एक महान कीर्तिमान स्थापित किया था। वे हिन्दी के पहले व्यवस्थित समालोचक थे, जिन्होंने समालोचना की कई पुस्तकें लिखी थीं। वे खड़ी बोली हिन्दी की कविता के प्रारंभिक और महत्वपूर्ण कवि थे। आधुनिक हिन्दी कहानी उन्हीं के प्रयत्नों से एक साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकी थी। वे भाषाशास्त्री थे, अनुवादक थे, इतिहासज्ञ थे, अर्थशास्त्री थे तथा विज्ञान में भी गहरी रुचि रखने वाले थे। अंततः वे युगांतर लाने वाले साहित्यकार थे या दूसरे शब्दों में कहें, युग निर्माता थे। वे अपने चिन्तन और लेखन के द्वारा हिन्दी प्रवेश में नव-जागरण पैदा करने वाले साहित्यकार थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के पहले साहित्यकार थे, जिनको 'आचार्य' की उपाधि मिली थी। इसके पूर्व संस्कृत में आचार्यों की एक परंपरा थी। मई, 1933 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा ने उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पर बनारस में एक बड़ा साहित्यिक आयोजन कर द्विवेदी का अभिनंदन किया था उनके सम्मान में द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ का प्रकाशन कर, उन्हें समर्पित किया था। इस अवसर पर द्विवेदी जी ने जो अपना वक्तव्य दिया था, वह 'आत्म-निवेदन' नाम से प्रकाशित हुआ था। इस 'आत्म-निवेदन' में वे कहते हैं, ''मुझे आचार्य की पदवीं मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं। कब, किसने दी है, यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही है कि मैं बहुधा-इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ।. ..शंकराचार्य, मध्वाचार्य, सांख्याचार्य आदि के सदृश किसी आचार्य के चरणरज-कण की बराबरी मैं नहीं कर सकता। बनारस के संस्कृत कॉलेज या किसी विश्वविद्यालय में भी मैंने कदम नहीं रखा। फिर इस पदवी का मुस्तहक मैं कैसे

हो गया ?'' महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैट्रिक तक की पढ़ाई की थी। तत्पश्चात् वे रेलवे में नौकरी करने लगे थे।

उसी समय इन्होंने अपने लिए सिद्धान्त निश्चित किए–वक्त की पाबंदी करना, रिश्वत न लेना, अपना काम ईमानदारी से करना और ज्ञान–वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करते रहना। द्विवेदी जी ने लिखा है, ''पहले तीन सिद्धान्तों के अनुकूल आचरण करना तो सहज था, पर चौथे के अनुकूल सचेत रहना कठिन था। तथापि सतत् अभ्यास से उसमें भी सफलता होती गई। तारबाबू होकर भी, टिकट बाबू, मालबाबू, स्टेशन मास्टर, यहाँ तक कि रेल पटरियाँ बिछाने और उसकी सड़क की निगरानी करने वाले प्लेट–लेयर तक का भी काम मैंने सीख लिया। फल अच्छा ही हुआ। अफसरों की नजर मुझ पर पड़ी। मेरी तरक्की होती गई। वह इस तरह की एक दफे मुझे छोड़कर तरक्की के लिए दरख्वास्त नहीं देनी पड़ी।'' द्विवेदी जी 15 रुपये मासिक पर रेलवे में बहाल हुए थे और जब उन्होंने 1904 ई. में नौकरी छोड़ी, उस वक्त 150 रुपये मूल वेतन एवं 50 रुपये भत्ता मिलता था, यानी कुल 200 रुपये।

उस जमाने में यह एक बहुत बड़ी राशि थी। वे 18 वर्ष की उम्र में रेलवे में बहाल हुए थे। उनका जन्म 1864 ई. में हुआ था और 1882 ई, से उन्होंने नौकरी प्रारंभ की थी। नौकरी करते हुए वे अजमेर, बंबई, नागपुर, होशंगाबाद, इटारसी, जबलपुर एवं झाँसी शहरों में रहे। इसी दौरान उन्होंने संस्कृत एवं ब्रजभाषा पर अधिकार प्राप्त करते हुए पिंगल अर्थात् छंदशास्त्र का अभ्यास किया। उन्होंने अपनी पहली पुस्तक 1895 ई. में श्रीमहिम्नस्तोत्र की रचना की, जो पुष्पदंत के संस्कृत काव्य का ब्रजभाषा में काव्य रूपांतर है। द्विवेदी जी ने सभी पद्यरचनाओं का भावार्थ खड़ी बोली गद्य में ही किया है। उन्होंने इसकी भूमिका में लिखा है, ''इस कार्य में हुशंगाबादस्थ बाबू हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ का जो सांप्रत मध्य प्रदेश राजधानी नागपुर में विराजमान हैं, मैं परम कृतज्ञ हूँ।'' अपने 'आत्म–निवेदन' में उन्होंने लिखा है, ''बचपन से मेरा अनुराग तुलसीदास की रामायण और ब्रजवासीदास के ब्रजविलास पर हो गया था। फुटकर कविता भी मैंने सैकड़ों कंठ कर लिए थे। हुशंगाबाद में रहते समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कविवचन सुधा और गोस्वामी राधाचरण के एक मासिक पत्र ने मेरे उस अनुराग की वृद्धि कर दी। वहीं मैंने बाबू हरिश्चंद्र कुलश्रेष्ठ नाम के एक सज्जन से, जो वहीं कचहरी में मुलाजिम थे, पिंगल का पाठ पढ़ा। फिर क्या था, मैं अपने को कवि ही नहीं, महाकवि समझने लगा।

मेरा यह रोग बहुत दिनों तक ज्यों का त्यों बना रहा।'' 1889 से 1892 ई. तक द्विवेदी जी की इस प्रकार की कई पुस्तकें प्रकाशित हुई-विनय-विनोद, विहार-वाटिका, स्नेहमाला, ऋतु तरंगिनी, देवी स्तुति शतक, श्री गंगालहरी आदि। 1896 ई. में इन्होंने लॉर्ड बेकन के निबंधों का हिन्दी में भावार्थ मूलक रूपांतर किया, जो बेकन-विचार-रत्नावली पुस्तक में संकलित हैं। 1898 ई. में इन्होंने हिन्दी कालिदास की आलोचना लिखी, जो हिन्दी की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है। 1988 ई. में श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम पर इन्होंने नैषध-चरित-चर्चा नामक आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक पुस्तक लिखी। यह सिलसिला जो शुरू हुआ, वह 1930-31 ई. तक चला और द्विवेदी जी की कुल पच्चासी पुस्तकें प्रकाशित हुई।

जनवरी, 1903 ई. से दिसंबर, 1920 ई. तक इन्होंने सरस्वती नामक मासिक पत्रिका का संपादन कर एक कीर्तिमान स्थापित किया था, इसीलिए इस काल को हिन्दी साहित्येतिहास में 'द्विवेदी-युग' के नाम से जाना जाता है। अपने प्रकांड पांडित्य के कारण इन्हें 'आचार्य' कहा जाने लगा। उनके व्यक्तित्त्व के बारे में आचार्य किशोरी दास वाजपेयी ने लिखा है, ''उनके सुदृढ़ विशाल और भव्य कलेवर को देखकर दर्शक पर सहसा आतंक छा जाता था और यह प्रतीत होने लगता था कि मैं एक महान ज्ञानराशि के नीचे आ गया हूँ।'' द्विवेदी जी का मानना था कि 'ज्ञान-राशि' के संचित कोष का ही नाम साहित्य है।' द्विवेदी जी स्वयं तो एक 'महान ज्ञान-राशि' थे ही उनका संपूर्ण वाङ्मय भी संचित ज्ञानराशि है, जिससे होकर गुजरना अपनी जातीय परंपरा को आत्मसात करते हुए विश्वचिन्तन के समक्ष भी होना है। डॉ. रामविलास शर्मा ने द्विवेदी जी के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है, ''द्विवेदी जी ने अपने साहित्य जीवन के आरंभ में पहला काम यह किया कि उन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। उन्होंने जो पुस्तक बड़ी मेहनत से लिखी और जो आकार में उनकी और पुस्तकों से बड़ी है, वह संपत्तिशास्त्र है।.....अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के कारण द्विवेदी जी बहुत-से विषयों पर ऐसी टिप्पणियाँ लिख सके जो विशुद्ध साहित्य की सीमाएँ लाँघ जाती हैं।

इसके साथ उन्होंने राजनीति विषयों का अध्ययन किया और संसार में जो महत्त्वपूर्ण राजनीति घटनाएँ हो रही थीं, उन पर उन्होंने लेख लिखे। राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ उन्होंने आधुनिक विज्ञान से परिचय प्राप्त किया और इतिहास तथा समाजशास्त्र का अध्ययन गहराई से किया। इसके साथ भारत के प्राचीन

दर्शन और विज्ञान की ओर इन्होंने ध्यान दिया और यह जानने का प्रयत्न किया कि हम अपने चिन्तन में कहाँ आगे बढ़े हुए हैं और कहाँ पिछड़े हैं। इस तरह की तैयारी उनसे पहले किसी संपादक ने न की थी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी प्रवेश में नवीन सामाजिक चेतना के प्रसार के लिए वह सबसे उपयुक्त व्यक्ति सिद्ध हुए।''

ऐसे महान ज्ञान-राशि के पुंज थे आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। किन्तु रामविलास शर्मा के पूर्व जितने भी आलोचक हुए, उन्होंने द्विवेदी जी का उचित मूल्यांकन तो नहीं ही किया, अपितु उनका अवमूल्यन ही किया। इन महान आलोचकों में रामचन्द्र शुक्ल, नंददुलारे वाजपेयी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का इतिहास में द्विवेदी जी पर जो टिप्पणी की है, उस पर एक नजर डालें, ''द्विवेदी जी ने सन् 1903 ई. में सरस्वती के संपादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि पाठक भी उससे बहुत-कुछ समझ जाएँ। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकर लेख भी बहुत लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही है। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नए-नए विचारों की उद्‌भावना वाले निबंध बहुत ही कम मिलते हैं।

स्थायी निबंधों की श्रेणी में चार ही लेख, जैसे 'कवि और कविता', 'प्रतिभा' आदि आ सकते हैं। पर ये लेखनकाल या सूक्ष्म विचार की दृष्टि से लिखे नहीं जान पड़ते। 'कवि और कविता' कैसा गंभीर विषय है, कहने की आवश्यकता नहीं। पर इस विषय की बहुत मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर कही गई हैं।'' इसी प्रसंग में रामचन्द्र शुक्ल आगे लिखते हैं, ''कहने की आवश्यकता नहीं कि द्विवेजी जी के लेख या निबंध विचारात्मक श्रेणी में आएँगे। पर विचार की वह गूढ़ गुंफित परंपरा उनमें नहीं मिलती जिससे पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नई विचार-पद्धति पर दौड़ पड़े। शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहाँ एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर कसे गए हों और एक-एक वाक्य किसी संबद्ध विचारखंड के लिए हों। द्विवेदी जी के लेखों को पढ़ने में ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत मोटी अक्ल के पाठकों के लिए लिख रहा है।''

अब आप देखें कि महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन के प्रति रामचंद्र शुक्ल की ये टिप्पणी पढ़कर हिन्दी का कोई भी पाठक उससे विरक्त होगा या आसक्त।

रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास को हिन्दी के विद्यार्थी साठ-पैंसठ वर्षों से आप्त वचनों की तरह याद करते आ रहे हैं। ऐसे में मूल पाठ से उनके आप्त वाक्यों का यदि मिलान कर परीक्षण न किया जाए, तो अनर्थ होगा ही। रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के सबसे बड़े समालोचक, सबसे बड़े साहित्येतिहास-लेखक हैं। इसी इतिहास में वे महावीर प्रसाद द्विवेदी के ऐतिहासिक योगदानों को सिर्फ भाषा-परिष्कारकर्त्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। उनके शब्द हैं, ''यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा की खरी आलोचना करके हिन्दी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया है।

यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते तो जैसा अव्यवस्थित, व्याकरणविरुद्ध और ऊटपटाँग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी उन्होंने अपना सुधार किया।'' दरअसल शुक्ल जी जिस आलोचना-पद्धति का सहारा लेकर उक्त बातें लिख रहे थे, उसे हिन्दी में निर्णयात्मक आलोचना कहते हैं और इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों का ध्यान ऐतिहासिक युग, वातावरण एवं जीवन से हटाकर अधिकांशतः कलापक्ष तक ही सीमित कर दिया है। कलापक्ष की ओर ध्यान देने वाले आलोचकों का कहना हैं कि युगीन परिस्थितियाँ, युगीन चेतना और युग सत्य निरंतर परिवर्तनशील हैं। अतएव इन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता। उनकी परिवर्तनशीलता के कारण इन्हें साहित्य का स्थायी मानदंड स्वीकार किया जा सकता। लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य है कि ऐसी दशा में निर्णयात्मक आलोचना का कोई मूल्य नहीं रहेगा।

इसका मुख्य कारण है ऐसे आलोचक का रचनाकार और रचना पर फतवे जारी करना। यही कारण है कि रामचंद्र शुक्ल ने द्विवेदी जी के विचारों को, उनके संचित ज्ञान-राशि पर ध्यान नहीं दिया और उनकी भाषा पर विचार किया। 'मोटी-मोटी बातें बहुत मोटे तौर पर'-यह अभिव्यक्ति की प्रणाली पर बात की जा रही है, जो निस्संदेह भाषा है। जब द्विवेदी जी मूर्ख या मोटे दिमाग वालों के लिए लिखते थे और मोटी तरह से लिखते थे तो उन्होंने भाषा परिष्कार कैसे किया ? जिस लेखक को भाषा की सतही समझ होगी, वह दूसरे लेखकों की भाषा को दुरुस्त कैसे करेगा ? पुनः रामचन्द्र शुक्ल की बातों पर विचार करें-महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शाश्वत साहित्य या स्थायी साहित्य नहीं लिखा।

उनका महत्त्व भाषा-सुधार में है और उनकी भाषा कैसी है-मोटी अक्लवालों के लिए है। इस तरह की बातों से आचार्य शुक्ल का इतिहास भरा हुआ है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी-नवरत्न की समीक्षा लिखते हुए लिखा है, ''इस तरह की बातें किसी इतिहास कार के ग्रंथ में यदि पाई जाएँ तो उसके इतिहास का महत्व कम हुए बिना नहीं रह सकता। इतिहास-लेखक की भाषा तुली हुई होनी चाहिए। उसे बेतुकी बातें न हाँकनी चाहिए। अतिश्योक्तियाँ लिखना इतिहासकार का काम नहीं। उसे चाहिए कि वह प्रत्येक शब्द और वाक्यांश के अर्थ को अच्छी तरह समझकर उसका प्रयोग करे।''

सन् 1933 ई. में आचार्य द्विवेदी को नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदन ग्रंथ भेंट किया गया। इसकी प्रस्तावना श्यामसुंदर दास एवं रायकृष्णदास के नाम से प्रकाशित हुई, किन्तु यह लिखी गई नंददुलारे वाजपेयी द्वारा। इसलिए यह 1940 ई. में प्रकाशित वाजपेयी जी की पुस्तक हिन्दी साहित्य: बीसवीं शताब्दी में संकलित है। इसमें यह विचार किया गया है कि स्थायी या शाश्वत साहित्य में द्विवेदी जी का साहित्य परिगणित हो सकता है या नहीं। इस दृष्टिकोण से महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित संपूर्ण साहित्य को अयोग्य ठहरा दिया गया। सिर्फ उनके द्वारा संपादित सरस्वती के अंकों को ही महत्त्व दिया गया।

द्विवेदी युग का समय सन 1900 से 1920 तक माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशक के पथ-प्रदर्शक, विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। इसे 'जागरण सुधारकाल' भी कहा जाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के ऐसे पहले लेखक थे, जिन्होंने अपनी जातीय परंपरा का गहन अध्ययन ही नहीं किया था, अपितु उसे आलोचकीय दृष्टि से भी देखा। उन्होंने वेदों से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के संस्कृत साहित्य की निरंतर प्रवाहमान धारा का अवगाहन किया एवं उपयोगिता तथा कलात्मक योगदान के प्रति एक वैज्ञानिक नजरिया अपनाया। कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग 'इतिवृत्तात्मक युग' था। इस समय आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम आदि कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारण शृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि थे। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रजभाषा में सरस रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

नामकरण

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही यह काल 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है। इसे 'जागरण-सुधारकाल' भी कहा जाता है। इस समय ब्रिटिश दमन-चक्र बहुत बढ़ गया था। जनता में असंतोष और क्षोभ की भावना प्रबल थी। ब्रिटिश शासकों द्वारा लोगों का अर्थिक-शोषण भी चरम पर था। देश के स्वाधीनता संग्राम के नेताओं द्वारा पूर्ण-स्वराज्य की मांग की जा रही थी। गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य गंगाधर तिलक जैसे नेता देश के स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व कर रहे थे। इस काल के साहित्यकारों ने न सिर्फ देश की दुर्दशा का चित्रण किया, बल्कि देशवासियों को आजादी की प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। राजनीतिक चेतना के साथ-साथ इस काल में भारत की आर्थिक चेतना भी विकसित हुई।

द्विवेदीजी का योगदान

सन 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ। इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बालमुकंद गुप्त और अध्यापक पूर्णसिंह आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं, किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है। हिन्दी कहानी का वास्तविक विकास 'द्विवेदी युग' से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' कहानी को कुछ विद्वान् हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की 'दुलाई वाली', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', जयशंकर प्रसाद की 'ग्राम' और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा भी कुछ नाटक लिखे गए।

नाट्य साहित्य

शद्विवेदी युग' नाट्य साहित्य की दृष्टि से सबसे कम समृद्ध है। इस काल में मौलिक नाटकों के सृजन में कमी आई। ऐसा लगता है कि नाटकीय गतिविधि

धीरे-धीरे काफी कम हो गई थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में जो नाटक मंडलियाँ थीं, वे व्यावसायिक तो थीं नहीं, इसलिए समय के साथ वे काल के गाल में समा गईं। इस युग के प्रसिद्ध रंगकर्मी एवं उच्च कोटि के अभिनेता माधव शुक्ल ने अव्यवसायिक रंगमंच को फिर से जिन्दा करने की कोशिश की। बात 1908 की है, जब उन्होंने इलाहाबाद की रामलीला नाटक मंडली को झाड़-पोछ कर सुरुचि सम्पन्न लोगों की पसंद लायक बनाया। यहाँ से कई नवजागरण का संदेश देने वाले नाटकों का मंचन हुआ। राष्ट्रीय संस्कृति और सामाजिक चेतना का संस्कार करने वाले नाटकों का रंगमंच पर अभिनय प्रस्तुत किया गया।

रचनाएँ

राधाकृष्णदास द्वारा लिखित 'राणाप्रताप' और माधव शुक्ल द्वारा स्वयं लिखित 'महाभारत' नाटकों के मंचन ने तो धूम ही मचा दी। इससे रंगमंच की दुनिया में एक नई हलचल मची। इससे प्रोत्साहित होकर कई रंगनाटक लिखे गए। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918), बदरीनाथ भट्ट कृत 'दुर्गावती', 'कुरुवनदहन' और 'वेनचरित', बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'प्रभास मिलन' इस समय के लिखे हुए बहुत ही प्रभावशाली नाटक थे।

नाट्य लेखन

इस युग के पौराणिक नाटकों में प्रमुख थे-

भगवान श्रीकृष्ण के चरित से संबंधित नाटक -

राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904), शिवनंदन सहाय कृत 'सुदामा' (1907), बनवारीलाल कृत 'कृष्णकथा' और 'कंसवध' (1909)।

रामचरित संबंधी नाटक

रामनारायण मिश्र कृत 'जनक बाड़ा' (1906), गंगाप्रसाद कृत 'रामाभिषेक' (1910), गिरधरलाल कृत 'राम वनयात्र' (1910), नारायण सहाय कृत 'रामलीला' (1911), रामगुलामलाल कृत 'धनुषयज्ञ लीला' (1912)।

पौराणिक पात्रों को लेकर लिखे गए नाटक

महावीर सिंह कृत 'नल-दमयंती' (1905), गौरचरण गोस्वामी कृत 'अभिमन्यु बध' (1906), सुदर्शनाचार्य कृत 'अनर्घ नलचरित' (1906),

बांकेबिहारी लाल कृत 'सावित्री नाटिका' (1908), बालकृष्ण भट्ट कृत 'वेणु संहार' (1909), लक्ष्मी प्रसाद कृत 'उर्वशी' (1910), हनुमंत सिंह कृत 'सती-चरित्र' (1910), शिवनंदन मिश्र कृत 'शकुंतला' (1911), जयशंकर प्रसाद कृत 'करुणालय' (1912), बदरीनाथ भट्ट कृत 'कुरुवन-दहन' (1915), माधव धुक्ल कृत 'महाभारत पूर्वार्द्ध' (1916), हरिदास माणिक कृत 'पाण्डव-प्रताप' (1917), और माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'कृष्णार्जुन युद्ध' (1918)।

इन नाटकों में चरित्रों के माध्यम से जनता को उपदेश देने का प्रयास किया गया है। नाटक कला का उपयुक्त विकास इनसे नहीं हुआ। अभिनय तत्त्व भी गौण ही है।

ऐतिहासिक नाटक

ऐतिहासिक नाटक में गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'वीर जयमाल' (1903), वृंदावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति उदल' (1909), बदरीनाथ भट्ट कृत 'चंद्रगुप्त' (1915), कृष्णप्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिताहरण' (1915), जयशंकर प्रसाद कृत 'राज्य श्री' (1915) और परमेष्ठीदास जैन कृत 'वीर चूड़ावत सरदार' (1918)। जयशंकर प्रसाद जी के नाटक को छोड़कर किसी में इतिहास का निर्माण नहीं हो सका।

सामाजिक नाटक

सामाजिक नाटक में प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत दुर्दशा' (1902), भगवती प्रसाद कृत 'वृद्ध-विवाह' (1905), जीवानंद शर्मा कृत 'भारत विजय' (1906), कृष्णानंद जोशी कृत 'उन्नति कहां से होगी' (1915), मिश्र बंधु कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915)।

इन नाटकों में सामाजिक विकृतियों को उभारने की कोशिश की गई है। इनका लक्ष्य समाज सुधार है। किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से इनका महत्व अधिक नहीं है।

रोमांचकारी नाटक

इस युग में रोमांचकारी नाटक भी लिखे गए। अलौकिक घटनाओं को केन्द्र में रखकर ये नाटक पारसी रंगमंच की शैली में लिखे गए। इसकी विषयवस्तु

फारसी प्रेम कथाओं पर आधारित होती थी। कुछ रोमांचकारी नाटक पौराणिक कथाओं पर भी आधारित थे। इन नाटकों की शुरुआत 'कोरस' से होती थी। मुख्य कथा के समानान्तर एक प्रहसन भी चलता रहता था। यह दर्शकों को हंसाने के लिए होता था। इन नाटकों की भाषा उर्दू मिश्रित हुआ करती थी। बाद के दिनों में साधारण बोलचाल की भाषा का भी प्रयोग शुरु हो गया। इस श्रेणी के नाटकों की रचना में मुहम्मद मियां 'रौनक', सैयद मेंहदी हसन 'अहसान', नारायण प्रसाद 'बेताब', आगा मोहम्मद 'हश्र' और राधेश्याम कथावाचक ने प्रमुख भूमिका निभाई।

प्रहसन नाटक

इस युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, रोमांचकारी, आदि विषयों के अलावा प्रहसन नाटक भी लिखे गए। बद्रीनाथ भाट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912), गंगाप्रसाद श्रीवास्तव कृत 'उलटफेर' (1918) और 'नोंक झोंक' (1918)।

अनूदित नाटक

अनूदित नाटक की श्रेणी में संस्कृत से सदानंद अवस्थी ने 'नागानंद' (1906), लाला सीताराम ने 'मृच्छकटिक' (1913), कविरत्न सत्यनारायण ने 'उत्तर रामचरित' किया। अंग्रेजी से शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद लाला सीताराम और चतुर्भुज औदीच्य ने किया। बंगला से ब्रजनंदन सहाय ने किया।

रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना

'द्विवेदी युग' के नाटकों की विवेचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं- 'इन मौलिक रूपकों की सूची देखने से यह लक्षित हो जाता है कि नाटक की कथावस्तु के लिये लोगों का ध्यान अधिकतर ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंगों की ओर ही गया है। वर्तमान सामाजिक और पारिवारिक जीवन के विविध उलझे हुए पक्षों का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण करके उनके मार्मिक या अनूठे चित्र खड़ा करने वाली उद्‌भावना उनमें नहीं पाई जाती।' चूंकि इस युग में भारतेन्दु से आगे बढ़कर शिल्प और संवेदना के स्तर पर कोई नया प्रयोग तो नहीं ही हुआ, इसलिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी रंगमंच की स्थापना का जो काम शुरु किया था, वह आगे न बढ़ सका। बल्कि यो कहें कि इस युग

में सृजन की दृष्टि से ह्रास ही हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता की रुचि व्यावसायिक रंगमंचीय नाटकों की तरफ मुड़ गई।

प्रमुख कवि

इस युग के प्रसिद्ध कवियों में जिन्हें गिना जाता है, उनके नाम इस प्रकार हैं–

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
रामचरित उपाध्याय
जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
श्रीधर पाठक
रामनरेश त्रिपाठी
मैथिलीशरण गुप्त
लोचन प्रसाद पाण्डेय
सियारामशरण गुप्त

विशेषताएँ

'द्विवेदी युग' की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–
अशिक्षा, गरीबी, अनाचार, अत्याचार आदि से छुटकारा दिलाने की कामना।
देश प्रेम एवं राष्ट्रीयता का सन्देश।
नारी के प्रति सहानुभूति की भावना।
समाज सुधार के प्रयास।
नैतिकता एवं आर्दशवाद की पुष्टि।
सत्यम, शिवम, सुन्दरम का विधान।
मनोरम प्रकृति चित्रण।
सरल, सुबोध एवं सरस खड़ी बोली में काव्य की रचना।

प्रेमचन्द युग

द्विवेदी युग के अन्त तक (1917 ई. तक) हिन्दी के मौलिक और अनूदित दोनों प्रकार के उपन्यास काफी संख्या में लिखे जा चुके थे। मौलिक उपन्यास

अनेक प्रकार के और अनेक विषयों पर थे। उपन्यास क्रमशः जीवन और समाज के निकट आ रहा था, परन्तु अब भी उसमें बहुत-सी, त्रुटियां थी। प्रेमचन्द के समय से विशेष कर उनके 'सेवासदन' के प्रकाशन काल (सन् 1918 ई.) से हिन्दी-कथा साहित्य में एक नये युग का आरम्भ होता है। प्रेमचंद ने ही उपन्यास में मानव मन का स्वाभाविक एवं सजीव अंकन आरम्भ किया। उन्होंने ही पहली बार हिन्दी उपन्यास में घटना और चरित्र का संतुलन स्थापित कर मनोविज्ञान का उचित समावेश किया। उन्होंने ही समाज की समस्याओं को सर्वप्रथम कथा-साहित्य में स्थापित किया। उन्होंने जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों का, समाज के विभिन्न वर्गों का ग्रामीण तथा नागरिक क्षेत्रों की बहुत-सी दशाओं तथा परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण कर व्यापक अनुभव प्राप्त किया था। मनोविज्ञान के वे पंडित थे। मानव-स्वभाव के विविध पक्षों से भली-भांति परिचित थे। उपन्यास-कला का भी उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था। पश्चिम के ताल्सताय, दोस्तोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, अनातोले फ्रांस आदि महान उपन्यासकारों की रचनाओं का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था।

प्रेमचन्द प्रारम्भ में उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे। उर्दू में उनके कुछ उपन्यास भी प्रकाशित हुए थे। बाद में उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं—सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मंगलसूत्र (अपूर्ण)। प्रेमचन्द उपन्यास को मनोरंजन की वस्तु नहीं मानते थे। वे अपने उपन्यासों द्वारा भारतीय जनता के जागरण और सुधार तथा निर्माण की भावना का प्रसार करना चाहते थे। प्रेमचन्द मानवतावादी सहृदय व्यक्ति थे। वे गरीबी में पले थे, गरीबों के दुःख-दर्द को समझते थे। समाज के निम्न वर्ग से उन्हें सहानुभूति थी। जीवन के अन्तिम समय में, जैसा कि उनके अन्तिम उपन्यासों ('गोदान' और 'मंगलसूत्र') से प्रकट है, उनका झुकाव साम्यवाद की ओर हो गया था और वे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी और प्रगतिशील हो गये थे। अपनी पुस्तकों में प्रेमचन्द ने किसानों की आर्थिक दशा, जमीदारों और पुलिस के अत्याचारों, ग्रामीण जीवन की कमजोरियों, समाज की कुरीतियों, शहरी समाज की कमियों, विधवाओं और वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषणप्रियता, मध्यवर्ग की झूठी शान और दिखावे की प्रवृत्ति, सम्मिलित हिन्दू-परिवार में नारी की दयनीय स्थिति आदि प्रश्नों और पक्षों पर प्रकाश डाला। उन्होंने अपने कई उपन्यासों में गांव और शहर की कहानी, ग्रामीण और नागरिक जीवन की झांकी साथ-साथ प्रस्तुत की है। उनके उपन्यासों में

कथानक सुगठित है चरित्र-चित्रण प्रायः मनोविज्ञान के अनुकूल सजीव और स्वाभाविक है। संवाद पात्रों और परिस्थितियों के अनुसार हैं और भाषा सरल एवं व्यवहारिक है।

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला की मुख्य विशेषताएं हैं—व्यापक सहानुभूति-विशेषकर शोषित किसान, मजदूर और नारी का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण, यथार्थवाद अर्थात् उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण, मानव-जीवन और मानव-स्वभाव की अच्छी जानकारी होने से सजीव पात्रों और सजीव वातावरण का निर्माण, चरित्र-चित्रण में नाट्कीय कथोपकथनात्मक तथा घटनापरक पद्धतियों का उपयोग, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्रों की सृष्टि, अपने व्यक्तित्त्व को पात्रों से पृथक रखकर उन्हें प्रायः अपनी सहज-स्वच्छन्द गति से चलने देना, अनेकानेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का चित्रण, समाज के साथ पारिवारिक जीवन की सुन्दर अभिव्यक्ति, मानव-कल्याण की ओर संकेत करने वाले नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा और सरल व्यावहारिक भाषा का संग्रह। प्रेमचन्द युग के अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, निराला, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, सियारामशरण गुप्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, गोविन्दवल्लभ पंत, राहुल सांकृत्यायन और जैनेन्द्र। कौशिक जी के उपन्यास 'माँ' और भिखारिणी नारी-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। आचार्य चतुरसेन ने नारी की समस्या पर 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा' आदि उपन्यास प्रारम्भ में लिखे थे। बाद में उनके बहुत से सामाजिक ऐतिहासिक और वैज्ञानिक उपन्यास प्रकाशित हुए। उनके कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं—'गोली', 'वैशाली की नगर वधू' 'वयं' रक्षामः' 'सोमनाथ' 'महालय', 'सोना और खून' तथा 'खग्रास'। वृन्दावनलाल वर्मा ने इतिहास के तथ्यों की पूर्णतः रक्षा करते हुए कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उन्होंने 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'माधवजी सिंधिया' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। हिन्दी के कुछ अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यास हैं। जयशंकर प्रसाद का 'इरावती' (अधूरा), हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'वाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारु चन्द्रलेख', चतुरसेन का 'वैशाली की नगरवधू', 'राजसिंह', 'सोमनाथ', 'सह्याद्रि की चट्टानें', सेठ गोविन्ददास का 'इन्दुमती', राहुल सांकृत्यायन के 'सिंह सेनापति', 'जय यौधेय', सत्यकेतु दिद्यालंकार का 'आचार्य चाणक्य',

रांगेय राघव का 'अंधा रास्ता', उमाशंकर का 'नाना फड़नवीस' तथा 'पेशवा की कंचना'।

प्रसाद जी ने 'इरावती' के पहले 'कंकाल' और 'तितली' नामक दो उपन्यास और लिखे थे, 'कंकाल' में हिन्दू नारी की असहाय स्थिति और धार्मिक पाखंड पर प्रकाश डाला गया है। 'तितली' में नारी-हृदय की महत्ता के उद्घाटन के साथ-साथ ग्राम-सुधार और यथास्थिति के विरुद्ध आन्दोलन की भावना है। प्रसाद जी मूलत: कवि हैं। उनके उपन्यासों में भी प्राय: जीवन की काव्यात्मक और भावपूर्ण व्याख्या मिलती है। निराला जी ने भी 'अप्सरा' 'अलका', 'निरूपमा' आदि उपन्यास लिखे। इनके उपन्यासों में भी प्रसाद जी की भांति रोमांटिक वातावरण है। नारी को निराला जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव के प्रारम्भिक उपन्यासों में 'विदा', 'विसर्जन' और 'विजय' उल्लेखनीय हैं।

सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में नारी-जीवन और उसकी सामाजिक स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। साधारण मनुष्य में भी उच्च गुण दिखाने में गुप्त जी निपुण है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के प्रारम्भिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली में लिखे 'चन्द हसीनों के खतूत' का विशिष्ट स्थान है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रश्न उपस्थित करते हुए प्रेम का महत्व दिखाया गया है। उनके 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'जीजी जी' आदि उपन्यासों में दुष्टों द्वारा भोली युवतियों को फंसाएं जाने की कथाएं हैं। सभ्य समाज की भीतरी दुर्बलताओं और दुष्प्रवृत्तियों का उन्होंने अच्छा उद्घाटन किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के 'प्रेममयी', 'अनाथ स्त्री', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना' आदि शुरू के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के रूपाकर्षण और प्रेम के चित्र हैं। उनके 'गुप्त धन', 'चलते-चलते', 'पतवार', 'उनसे न कहना', 'रात और प्रभाव', 'टूटते बन्धन' आदि कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। गोविन्दवल्लभ पंत के 'सूर्यास्त', 'प्रतिमा', आदि उपन्यास काफी पहले प्रकाशित हुए थे। बाद में भी उनके 'जल समाधि', 'नारी के सपने', 'मैत्रेय' आदि उपन्यास निकले हैं।

जैनेन्द्र के परख (सन् 1929 ई.) से हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक नई प्रवृत्ति का आरम्भ होता है। वस्तुत: यह उपन्यास एक लम्बी कहानी है जिसमें कट्टो नाम की देहातिन बालविधवा के भावुकतापूर्ण आत्मसमर्पण का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने आगे चलकर कई महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास

'सुनीता', 'सुखदा', 'त्यागपत्र', विवर्त' आदि लिखे, जिनमें प्रायः स्त्री का पर-पुरुष की ओर झुकाव दिखाकर आधुनिक नारी के कुण्ठाग्रस्त मन पर प्रकाश डाला है। मनोविश्लेषण की इस प्रवृत्ति का विकास किया इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेयने। प्रेमचन्द काल के उत्तरार्ध में इस क्षेत्र में आने वाले अन्य प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं। ऋषभचरण जैन (कैंदी गदर, भाई, भाग्य, रहस्यमयी, तपोभूमि, बादशाह की बेटी, सत्याग्रह, दिल्ली का व्यभिचार आदि), भगवतीचरण वर्मा (पतन, तीन वर्ष, चित्रलेखा, टेढ़े-मेढ़े रास्ते, सबहिं नचावत राम गुसाईं) राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (राम-रहीम, पुरुष और नारी, टूटा तारा, सूरदास, संस्कार आदि)

इस काल में जो उपन्यास लिखे गए, उन्हें चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास, स्वच्छन्दतापर कउपन्यास और मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास-लेखन की बहुत-सी शैलियों (ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक आदि) का प्रयोग हुआ है। इस काल में यूरोप की अनेक समृद्ध भाषाओं (रूसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि) से उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर युग

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई पड़ता है। सन् '40 से 50' तक की कालावधि के उपन्यास मुख्यतः फ्रायड और मार्क्स की विचारधारा से, सन् '50 से 60' तक के उपन्यास प्रयोगात्मक विशेषताओं से और सन् '60 से अब तक के उपन्यास आधुनिकतावादी विचारधारा से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द समाज की स्वीकृत मान्यताओं के भीतर संघर्ष करते रहे। किन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद पश्चिम के पुराने मूल्यों का तेजी के साथ विघटन हुआ। फ्रायड ने काम-सम्बन्धी मान्यताओं को नैतिकता-अनैतिकता से परे बताकर सामाजिक नैतिकता के आगे प्रश्नचिह्न लगा दिया। पूंजीवादी समाज में व्यक्ति-चेतना उभर कर सामने आई। मार्क्स ने समष्टि चेतना पर विशेष बल दिया। हिन्दी उपन्यास इन विचारधाराओं से प्रभावित हुए बिना न रहा। फलस्वरूप सन् '50 के बाद उपन्यासकारों का ध्यान व्यक्ति और समाज की मुक्ति की ओर गया। किन्तु स्वतंत्रता के बीस वर्षों बाद भी मानव जीवन में एक विशेष प्रकार की कुण्ठा, निराशा, त्रास, अर्थहीनता आदि की अनुभूति होने के कारण सन्' 60 के बाद के उपन्यासों में इन्हीं मनोदशाओं का चित्रण किया गया। प्रेमचन्द-युग

में ही जैनेन्द्र ने फ्रायड से प्रभावित होकर मानव-चरित्र के स्थान पर व्यक्ति-चरित्र की सृष्टि की थी। किन्तु सन् 51 में अज्ञेय के 'शेखर–एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हम उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ पाते हैं। अज्ञेय के तीन उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–'शेखर–एक जीवनी' (दो भाग), 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। पहले दो उपन्यासों में व्यक्तिपात्रों के मनो विश्लेषण की प्रवृत्ति है। तीसरी रचना में कोई सम्बद्ध कथानक नहीं है। अज्ञेय ने उपन्यास को पात्र-प्रधान बनाया और सामाजिक मानव के स्थान पर व्यक्ति-मानव के अन्तर्मन का विश्लेषण करने का यत्न किया।

इलाचन्द्र जोशी को उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठा 'संन्यासी' (1914) उपन्यास-प्रकाशन के द्वारा मिली। इस उपन्यासो में ही पहली बार मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की विकृति देखी जा सकती है। 'संन्यासी' के अतिरिक्त 'पर्दे की रानी' (1941), 'प्रेत और छाया' 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' (1950) 'सुबह के भूले' (1957), 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' (1955) और 'ऋतुचक्र' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनके उपन्यासों की विकास-यात्रा में 'मुक्तिपथ' एक नए मोड़ की सूचना देता है। 'मुक्तिपथ' के पूर्ववर्ती उपन्यास ग्रन्थियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनकी भाव-भूमियाँ एकांगी, संकुचित और छोटी हैं। 'मुक्तिपथ' तथा उसके बाद जो उपन्यास लिखे गये, उनमें परिदृश्य का विस्तार और सामाजिकता का समावेश दिखाई पड़ता है।

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में अपनी विशिष्ट विचारधारा, ईमानदारी और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने स्वतंत्र व्यक्तित्त्व बना लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से यशपाल को प्रेमचन्द उपन्यास-परम्परा की अगली कड़ी के रूप में माना जा सकता है। यशपाल का प्रारम्भिक जीवन क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध था। वे इसके सक्रिय सदस्य थे, इसके लिए उन्हें चौदह वर्ष का कारावास भी मिला। कारावास काल में उनका सारा समय अध्ययन-मनन में व्यतीत हुआ। इसी समय मार्क्सवादी विचारधारा का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में उतरने पर उन्होंने इसी विचारधारा को आगे बढ़ाया। उनके उपन्यास हैं–'अमिता', 'दिव्या', 'दादा कामरेड' (1941), 'देशद्रोही' (1943), 'पार्टी कामरेड' (1946), 'मनुष्य के रूप में' (1949), 'झूठा सच'–प्रथम भाग, 'वतन और देश' (1958), दूसरा भाग 'देश का भविष्य' (1960)।

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' यशपाल की परम्परा में आते हैं। चढ़ती धूप, नई इमारत, उल्का और मरुप्रदीप उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। पर इनमें द्वंद्वात्मक चेतना

पूरे तौर पर नहीं उभरती। भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं। सन् '50 तक यह परम्परा चलती रही प्रेम चन्द ने अपने साहित्य में समसामयिक समस्याओं को चित्रित किया और वर्मा जी परिवर्तमान ऐतिहासिक धारा को मध्यमवर्ग के माध्यम से अंकित करते रहे हैं–मुख्यत: '40 के बाद लिखे गये उपन्यासों में। इनमें टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाव', 'भूले-बिसरे-चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'सबहिं नचावत राम गुसाईं', मुख्य हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क को प्रेमचन्द-परम्परा का उपन्यासकार कहा जाता है। पर वे समग्र रूप से प्रेमचन्दीय परम्परा से नहीं जुड़ पाते। जहाँ तक मध्यवर्गीय परिवारों और व्यक्तियों की परिस्थितियों, समस्याओं और परिवेश का सम्बन्ध है, वहाँ तक वे प्रेमचन्दीय परम्परा के उपन्यासकार हैं प्रेमचन्द की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी, इसलिए प्रामाणिक भी। प्रेमचन्द के वैविध्य और जीवन-चेतना का इनमें अभाव है। 'सितारों के खेल' के बाद इनके कई उपन्यास प्रकाशित हुए हैं–गिरती दीवारें, 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आँखे', पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आईना' और 'एक नन्हीं किन्दील'। 'गिरती दीवारें' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। गर्म राख, बड़ी-बड़ी आँखे, पत्थर अल पत्थर सुगठित उपन्यासों की श्रेणी में रखे जायेंगे। अन्तिम दोनों उपन्यास 'गिरती दीवारें' का विस्तार हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं के आवर्त में पड़ा व्यक्ति कभी अपने को उनके अनुरूप ढालता है कभी उनसे आहत होता है, कभी छोटे-मोटे सुधारों के द्वारा समाज का परिष्कार करता है। वहाँ समाज प्रधान है, व्यक्ति गौण। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने व्यक्ति की सनकों, अन्तर्द्वंद्वों को समाज से अधिक महत्व दिया है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में व्यक्ति और समाज के सापेक्षिक सम्बन्धों को चित्रित किया गया है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बाँकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस' उनके प्रकाशित उपन्यास हैं। अपने विस्तार और गहराई के कारण 'बूंद और समुद्र' विशेष महत्वपूर्ण बन पड़ा है।

'50 के बाद के दशक को आंचलिक उपन्यासों का दशक मान लिया जाता है। वस्तुत: इस समय के उपन्यासों में वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों हैं। वैयक्तिक इसलिए कि वह पुराने नैतिक मूल्यों से मुक्त होकर खुले वातावरण में सांस लेना चाहता है, सामाजिक इसलिए कि अभी समाज को आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने में लम्बी मंजिल तय करनी थी। देश के विभाजन के कारण जो

नई समस्याएं उत्पन्न हुई, उन्हें भी औपन्यासिक रूप दिया गया। प्रवृत्तिक दृष्टि से इस दशक के उपन्यासों को तीन प्रवृत्तियों में बांटा जा सकता है–ग्रामांचल के उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास और प्रयोगशील उपन्यास।

ग्रामांचल को ही समग्रता से चित्रित करने वाले उपन्यासों को ही आंचलिक कहकर आंचलिकता के अर्थ को सीमित कर दिया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952) प्रकाशित हो चुका था। पर इसे आंचलिक नहीं कहा गया। यद्यपि इसमें आंचलिकता का कम रंग नहीं है। नागार्जुन के उपन्यासों में दरभंगा-पूर्णिया जिले का राजनीतिक-सांस्कृतिक साक्षात्कार होता है। इनका मार्क्सवादी दृष्टिकोण गाँव की कहानी पर आरोपित प्रतीत होता है। कथानक स्वयं विकसित न होकर पूर्वनिधार्रित योजना के अनुसार चलता है। इसके फलस्वरूप उपन्यासों की सर्जनात्मकता शिथिल और अवरुद्ध हो जाती है। 'बलचनमा', 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दु:खमोचन', 'वरुण के बेटे' आदि उनके प्रकाशित उपन्यास हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों को ही सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी गयी क्योंकि स्वयं रेणु ने ही 'मैला आंचल' को आंचलिक उपन्यास कहा। 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद 'परती परिकथा' प्रकाशित हुआ।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरे और मनुष्य' (1955) में बम्बई के पश्चिमी तट पर बसे हुए बरसोवा गांव के मछुओं की जीवन-गाथा वर्णित है। रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' में जरायमपेशा नटों की जिन्दगी को उजागर किया गया है। नट-जीवन और आधुनिक जीवन की असंगतियों को चित्रित करते हुए लेखक ने उज्ज्वल भविष्य का संकेत किया है कि शोषण की घुटन सदैव नहीं रहेगी। भैरवप्रसाद गुप्त का 'सत्ती मैया का चौरा' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से लिखा गया ग्रामांचल का ही उपन्यास है।

सातवें दशक में भी ग्रामांचल को आधार बना कर राही मासूम रजा, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र आदि ने उपन्यास लिखे। राही का 'आधा गांव' शिया मुसलमानों की जिन्दगी पर लिखा गया है और शिवसाद सिंह की 'अलग-अलग वैतरणी' में आधुनिकता-बोध को सन्निविष्ट करने का प्रयास किया गया है। किन्तु इनके मूल स्वर त्रासद (ट्रेजिक) हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' तथा 'सूखता हुआ तालाब' और देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' ग्रामांचलीय उपन्यास हैं। श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' पारंपरिक अर्थ में

उपन्यास नहीं हैं। यद्यपि इसकी कथा ग्रामांचल से सम्बद्ध है। फिर भी यह आंचलिक नहीं है। रिपोर्ताज शैली में लिखे गये इस उपन्यास में स्वतंत्र देश की नवीन व्यवस्थाओं का मखौल उड़ाया गया है।

छठे दशक में देवराज मुख्यत: मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार की श्रेणी में आते हैं। धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' मनोविज्ञान पर आधारित उपन्यास है, यद्यपि वह पांचवे दशक में प्रकाशित हुआ। भारती और देवराज दोनों के उपन्यासों का वातावरण महाविद्यालयीय है। 'गुनाहों का देवता' अपनी कैशोर्य भावुकता तथा रूमानियत के कारण काफी लोकप्रिय हुआ। 'पथ को खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' और 'मैं, वे और आप' देवराज के उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों की मूलवर्तिनी धारा है–विवाह के बाहर का प्रेम।

मन्मथनाथ गुप्त, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, लक्ष्मीनारायण लाल, राजेन्द्र यादव आदि नवीन सामाजिक चेतना के उपन्यासकार हैं। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल', 'गंगा मैया', 'सती मैया का चौरा', अमृतराय के 'बीज', 'नागफनी का देश', 'हाथी के दांत' संघर्ष और प्रगति के मिथक के सूचक हैं। लक्ष्मीनारायण लाल के 'धरती की आँखें', काले फूलों का पौधा', रूपाजीवा' में उपर्युक्त स्तर की सामाजिक चेतना को उभारने की कोशिश है। 'काले फूलों का पौधा' चरित्र-चित्रण, संस्कृति-संघर्ष और नव्यतर तकनीक के कारण विशिष्ट बन पड़ा है।

'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', 'उखड़े हुए लोग' और 'एक इंच मुस्कान' राजेन्द्र यादव के उपन्यास हैं। 'एक इंच मुस्कान' यादव और मन्नू भंडारी का सहयोगी लेखन है। इसमें खंडित व्यक्तित्त्व वाले आधुनिक व्यक्तियों की प्रेम-त्रासदी (ट्रेजिडी) है। आधुनिक जीवन की इस त्रासदी को अंकित करने के कारण यह उपन्यास यादव के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कहीं अधिक समकालीन और महत्वपूर्ण है।

कविता में नए प्रयोगों के साथ-साथ कहानी-उपन्यास आदि में भी नये प्रयोग हुए हैं। अब कहानी का तत्त्व क्षीण हो गया है, कथानक का पुराना रूप विघटित होकर नया हो गया है। अब जिन्दगी पूरे तौर पर विश्लेषित न होकर चेतना प्रवाह, स्वप्न सृष्टि के साथ जुड़ गई है, प्रतीक, कालांतर आदि के द्वारा उपन्यासों में नए शिल्प के दर्शन हुए हैं। इस प्रयोग-संपर्क में प्रभाकर माचवे के परन्तु', 'साँचा', और आभा', भारतीका 'सूरज का सांतवा घोड़ा', गिरधर गोपाल

का 'चाँदनी रात के खंडहर', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' आदि अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरे हुए प्रयोगशील उपन्यास हैं। उद्योगीकरण, महानगरीय सभ्यता, बदले हुए मानसिक परिवेश और भ्रष्ट व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति यांत्रिक, अजनबी, अकेला या विद्रोही हो गया है। इसकी अभिव्यक्ति मुख्यत: साठोत्तरी साहित्य में होती है, भले ही उपन्यास, नाटक की अपेक्षा इसका तेवर कविता और कहानी में ही अधिक तेजस्वितापूर्ण दिखाई देता है। इस प्रकार के उपन्यासों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

(1) यौन विकृतियों में पनाह खोजने वाले उपन्यास–मोहन राकेश के 'अन्धेरे बन्द कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अन्तराल', निर्मल वर्मा का 'वे दिन', महेन्द्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' और 'शहर था शहर नहीं था', श्री कान्त वर्मा का 'दूसरी बार', ममता कालिया का 'बेघर', गिरिराज किशोर का 'यात्राएं' मणिमधुकर का 'सफेद मेमने', कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अंधेरे के' आदि उपन्यास इसी कोटि के हैं। इन उपन्यासों के प्राय: सभी नायक मानसिक दृष्टि से अनिर्णयात्मक, आत्म-निर्वासित और नपुंसक हैं। वे मुक्त होने की प्रक्रिया में ऐसी उलझन में फंस जाते हैं, जहां से उन्हें निष्कृति नहीं मिलती। इन उपन्यासों से आधुनिकता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें स्त्री-शरीर 'नशे' या 'ड्रग' का काम करता है। राकेश को छोड़कर शेष उपन्यासों में प्रामाणिकता की भी कमी है।

(2) दी हुई मानवीय स्थितियों में बेमेल व्यक्तियों को चित्रित करने वाले उपन्यास–इस श्रेणी में उषा प्रियंवदा का 'रुकोगी नहीं राधिका'और मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' की गणना की जाएगी। इन उपन्यासों की आधारभूमियां ठोस और प्रामाणिक हैं।

(3) व्यवस्था की घुटन को अपनी नियति मानने या उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले उपन्यास–नरेश मेहता का 'वह पथ बन्धु था', गोविन्द मिश्र का वह 'अपना चेहरा', बदीउज्जमा का 'एक चूहे की मौत', काशीनाथ सिंह का 'अपना मोर्चा,नरेन्द्र कोहली का 'आश्रितों का विद्रोह' आदि उपन्यास इस कोटि के अन्तर्गत आते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी कई प्रयोगशील और प्रतिबद्ध उपन्यास लिखे हैं।

इनके अतिरिक्त गिरिराज किशोर का 'जुगलबन्दी' और 'ढाई आखर', लेख बख्शी का 'वैशाखियों वाली इमारत', देवराज उपाध्यायका 'दूसरा सूत्र' और 'अजय की डायरी' कमलेश्वर का 'डाक बंगला' और 'काली आंधी' और मन्नू भंडारी का 'महाभोज' श्री लाल शुक्ल का 'मकान' शिवप्रसाद सिंह का 'नीला चाँद' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। रमेश चौधरी आरिगमूडि, ओंकार शरद, मार्कण्डेय, मुद्राराक्षस, आनन्द प्रकाश चौबे, श्रीलाल शुक्ल, मोहन सिंह सेंगर, सत्येन्द्र गुप्त, राजेन्द्र अवस्थी, हंसराज रहबर, रामदरश मिश्र, मनहर चौहान, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, शिवानी आदि उपन्यास के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहे हैं। यूरोप के पुराने और नये उपन्यासों के अनुवाद का कार्य भी हो रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास का युग प्रयोग का युग रहा। जीवन-मरण सम्बन्धी पुराने सभी मत मतान्तरों को चुनौती दी गई है। महानगरीय अकेलापन, अत्यधिक निकटता में अजनबीपन, विसंगति, संत्रास यांत्रिक तटस्थता आदि का चित्रण किया गया है। बाह्य यथार्थ की अपेक्षा आन्तरिक यथार्थ को अधिक महत्ता दी गई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'सोया हुआ लाल', लक्ष्मी नारायण लाल का 'हरा समन्दर गोपी चन्दर' जैसे आधुनिक उपन्यासों में कथा का ह्रास हुआ है कथानक का नहीं। उपन्यासों में पीढ़ियों का वैचारिक मतभेद, पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बाप के सम्बन्ध में दोहरा व्यक्तित्त्व, अन्तःबाह्य संघर्ष, मिल मालिक और मजदूरों का संघर्ष, कृषकों का जागरूक होना पुलिस की धांधलियाँ, महाजनों के धन शोषण के तरीके महानगर, कस्बे और गांवों के परिवर्तन को समग्रता में रेखांकित किया गया है। उपन्यासों में पूर्वदीप्ति शैली, आत्म कथात्मक शैली, संकेत शैली, प्रतीक शैली द्वारा मानवीय संवेदना को उभारा गया है। विषय और शैली दोनों दृष्टियों से आज के उपन्यास समृद्ध दिखाई देते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाते हैं। वे हिन्दी में आधुनिकता के पहले रचनाकार थे। इनका मूल नाम 'हरिश्चन्द्र' था, 'भारतेन्दु' उनकी उपाधि थी। उनका कार्यकाल युग की सन्धि पर खड़ा है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामन्ती संस्कृति की पोषक वृत्तियों को छोड़कर स्वस्थ परम्परा की भूमि अपनाई और नवीनता के बीज बोए। हिन्दी साहित्य में

आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। भारतीय नवजागरण के अग्रदूत के रूप में प्रसिद्ध भारतेन्दु जी ने देश की गरीबी, पराधीनता, शासकों के अमानवीय शोषण का चित्रण को ही अपने साहित्य का लक्ष्य बनाया। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की दिशा में उन्होंने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया।

भारतेन्दु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी पत्रकारिता, नाटक और काव्य के क्षेत्र में उनका बहुमूल्य योगदान रहा। हिंदी में नाटकों का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चंद्र से माना जाता है। भारतेन्दु के नाटक लिखने की शुरुआत बंगला के विद्यासुन्दर (1867) नाटक के अनुवाद से होती है। यद्यपि नाटक उनके पहले भी लिखे जाते रहे किन्तु नियमित रूप से खड़ी बोली में अनेक नाटक लिखकर भारतेन्दु ने ही हिंदी नाटक की नींव को सुदृढ़ बनाया। उन्होंने 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका', 'कविवचनसुधा' और 'बाला बोधिनी' पत्रिकाओं का संपादन भी किया। वे एक उत्कृष्ट कवि, सशक्त व्यंग्यकार, सफल नाटककार, जागरूक पत्रकार तथा ओजस्वी गद्यकार थे। इसके अलावा वे लेखक, कवि, संपादक, निबंधकार, एवं कुशल वक्ता भी थे। भारतेन्दु जी ने मात्र चौंतीस वर्ष की अल्पायु में ही विशाल साहित्य की रचना की। उन्होंने मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से इतना लिखा और इतनी दिशाओं में काम किया कि उनका समूचा रचनाकर्म पथदर्शक बन गया।

जीवन परिचय

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 9 सितंबर, 1850 को काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता गोपालचंद्र एक अच्छे कवि थे और 'गिरधरदास' उपनाम से कविता लिखा करते थे। 1857 में प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय उनकी आयु 7 वर्ष की होगी। ये दिन उनकी आँख खुलने के थे। भारतेन्दु का कृतित्त्व साक्ष्य है कि उनकी आँखें एक बार खुलीं तो बन्द नहीं हुईं। उनके पूर्वज अंग्रेज भक्त थे, उनकी ही कृपा से धनवान हुये थे। हरिश्चंद्र पाँच वर्ष के थे तो माता की मृत्यु और दस वर्ष के थे तो पिता की मृत्यु हो गयी। इस प्रकार बचपन में ही माता-पिता के सुख से वंचित हो गये। विमाता ने खूब सताया। बचपन का सुख नहीं मिला। शिक्षा की व्यवस्था प्रथापालन के लिए होती रही। संवेदनशील व्यक्ति के नाते उनमें स्वतन्त्र रूप से देखने-सोचने-समझने की आदत का विकास होने लगा। पढ़ाई की विषय-वस्तु

और पद्धति से उनका मन उखड़ता रहा। क्वींस कॉलेज, बनारस में प्रवेश लिया, तीन-चार वर्षों तक कॉलेज आते-जाते रहे पर यहाँ से मन बार-बार भागता रहा। स्मरण शक्ति तीव्र थी, ग्रहण क्षमता अद्‌भुत। इसलिए परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते रहे। बनारस में उन दिनों अंग्रेजी पढ़े-लिखे और प्रसिद्ध लेखक - राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' थे, भारतेन्दु शिष्य भाव से उनके यहाँ जाते। उन्हीं से अंग्रेजी सीखी। भारतेन्दु ने स्वाध्याय से संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, उर्दू भाषाएँ सीख लीं।

उनको काव्य-प्रतिभा अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी। उन्होंने पांच वर्ष की अवस्था में ही निम्नलिखित दोहा बनाकर अपने पिता को सुनाया और सुकवि होने का आशीर्वाद प्राप्त किया-

लै ब्योढ़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेना को हनन लगे भगवान॥

धन के अत्यधिक व्यय से भारतेंदु जी ऋणी बन गए और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर शिथिल होता गया। परिणाम स्वरूप 1885 में अल्पायु में ही मृत्यु ने उन्हें ग्रस लिया।

साहित्यिक परिचय

भारतेन्दु के वृहत साहित्यिक योगदान के कारण ही 1857 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, भारतेन्दु अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्‌माकर, द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते थे, तो दूसरी ओर बंग देश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। प्राचीन और नवीन का सुंदर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।

पंद्रह वर्ष की अवस्था से ही भारतेंदु ने साहित्य सेवा प्रारंभ कर दी थी। अठारह वर्ष की अवस्था में उन्होंने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका निकाली, जिसमें उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों की रचनाएं छपती थीं। वे बीस वर्ष की अवस्था में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाए गए और आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने 1868 में 'कविवचनसुधा', 1873 में 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और 1874 में स्त्री शिक्षा के लिए 'बाला बोधिनी' नामक पत्रिकाएँ निकालीं। साथ ही उनके समांतर साहित्यिक संस्थाएँ भी खड़ी कीं। वैष्णव भक्ति के प्रचार के लिए उन्होंने 'तदीय समाज' की स्थापना की थी। राजभक्ति प्रकट

करते हुए भी, अपनी देशभक्ति की भावना के कारण उन्हें अंग्रेजी हुकूमत का कोपभाजन बनना पड़ा। उनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर काशी के विद्वानों ने 1880 में उन्हें 'भारतेंदु' (भारत का चंद्रमा) की उपाधि प्रदान की। हिन्दी साहित्य को भारतेन्दु की देन भाषा तथा साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में है। भाषा के क्षेत्र में उन्होंने खड़ी बोली के उस रूप को प्रतिष्ठित किया जो उर्दू से भिन्न है और हिन्दी क्षेत्र की बोलियों का रस लेकर संवर्धित हुआ है। इसी भाषा में उन्होंने अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य की रचना की। साहित्य सेवा के साथ-साथ भारतेंदु जी की समाज-सेवा भी चलती रही। उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना में अपना योग दिया। दीन-दुखियों, साहित्यिकों तथा मित्रों की सहायता करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे।

प्रमुख कृतियाँ

मौलिक नाटक

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873ई., प्रहसन)

सत्य हरिश्चन्द्र (1875,नाटक)

श्री चंद्रावली (1876, नाटिका)

विषस्य विषमौषधम् (1876, भाण)

भारत दुर्दशा (1880, ब्रजरत्नदास के अनुसार 1876, नाट्य रासक),

नीलदेवी (1881, ऐतिहासिक गीति रूपक)।

अंधेर नगरी (1881, प्रहसन)

प्रेमजोगिनी (1875, प्रथम अंक में चार गर्भांक, नाटिका)

सती प्रताप (1883,अपूर्ण, केवल चार दृश्य, गीतिरूपक, बाबू राधाकृष्णदास ने पूर्ण किया)

अनूदित नाट्य रचनाएँ

विद्यासुन्दर (1868,नाटक, संस्कृत 'चौरपंचाशिका' के यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत बँगला संस्करण का हिंदी अनुवाद)

पाखण्ड विडम्बन (कृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' नाटक के तृतीय अंक का अनुवाद)

धनंजय विजय (1873, व्यायोग, कांचन कवि कृत संस्कृत नाटक का अनुवाद)

कर्पूर मंजरी (1875, सट्टक, राजशेखर कवि कृत प्राकृत नाटक का अनुवाद)

भारत जननी (1877,नाट्यगीत, बंगला की 'भारत माता' के हिंदी अनुवाद पर आधारित)

मुद्राराक्षस (1878, विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद)

दुर्लभ बंधु (1880, शेक्सपियर के 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का अनुवाद)

निबंध संग्रह

भारतेन्दु ग्रन्थावली (तृतीय खंड) में संकलित।

'नाटक' शीर्षक प्रसिद्ध निबंध(1883)।

प्रमुख निबंध

नाटक

कालचक्र (जर्नल)
लेवी प्राण लेवी
भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?
कश्मीर कुसुम
जातीय संगीत
संगीत सार
हिंदी भाषा
स्वर्ग में विचार सभा

काव्यकृतियां

भक्तसर्वस्व (1870)
प्रेममालिका (1871)
प्रेम माधुरी (1875)
प्रेम-तरंग (1877)
उत्तरार्द्ध भक्तमाल (1876-77)
प्रेम-प्रलाप (1877)
होली (1879)

मधु मुकुल (1881)
राग-संग्रह (1880)
वर्षा-विनोद (1880)
विनय प्रेम पचासा (1881)
फूलों का गुच्छा- खड़ीबोली काव्य (1882)
प्रेम फुलवारी (1883)
कृष्णचरित्र (1883)
दानलीला
तन्मय लीला
नये जमाने की मुकरी
सुमनांजलि
बन्दर सभा (हास्य व्यंग्य)
बकरी विलाप (हास्य व्यंग्य)

कहानी

अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न
यात्रा वृत्तान्त
सरयूपार की यात्रा
लखनऊ

आत्मकथा

एक कहानी- कुछ आपबीती, कुछ जगबीती
उपन्यास
पूर्णप्रकाश
चन्द्रप्रभा

वर्ण्य विषय

भारतेंदु जी की यह विशेषता रही कि जहां उन्होंने ईश्वर भक्ति आदि प्राचीन विषयों पर कविता लिखी वहां उन्होंने समाज सुधार, राष्ट्र प्रेम आदि नवीन विषयों को भी अपनाया। भारतेंदु की रचनाओं में अंग्रेजी शासन का विरोध, स्वतंत्रता के लिए उद्दाम आकांक्षा और जातीय भावबोध की झलक मिलती है।

सामन्ती जकड़न में फंसे समाज में आधुनिक चेतना के प्रसार के लिए लोगों को संगठित करने का प्रयास करना उस जमाने में एक नई ही बात थी। उनके साहित्य और नवीन विचारों ने उस समय के तमाम साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को झकझोरा और उनके इर्द-गिर्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत लेखकों का एक ऐसा समूह बन गया जिसे भारतेन्दु मंडल के नाम से जाना जाता है।

विषय के अनुसार उनकी कविता श्रृंगार-प्रधान, भक्ति-प्रधान, सामाजिक समस्या प्रधान तथा राष्ट्र प्रेम प्रधान है।

श्रृंगार रस प्रधान भारतेंदु जी ने श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। वियोगावस्था का एक चित्र देखिए-

देख्यो एक बारहूं न नैन भरि तोहि याते
जौन जौन लोक जैहें तही पछतायगी।
बिना प्रान प्यारे भए दरसे तिहारे हाय,
देखि लीजो आँखें ये खुली ही रह जाएंगी।

भक्ति प्रधान भारतेंदु जी कृष्ण के भक्त थे और पुष्टि मार्ग के मानने वाले थे। उनको कविता में सच्ची भक्ति भावना के दर्शन होते हैं। वे कामना करते हैं-

बोल्यों करै नूपुर स्त्रीननि के निकट सदा
पद तल मांहि मन मेरी बिहरयौ करै।
बाज्यौ करै बंसी धुनि पूरि रोम-रोम,
मुख मन मुस्कानि मंद मनही हास्यौ करै।

सामाजिक समस्या प्रधान भारतेंदु जी ने अपने काव्य में अनेक सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों पर तीखे व्यंग्य किए। महाजनों और रिश्वत लेने वालों को भी उन्होंने नहीं छोड़ा-

चूरन अमले जो सब खाते,
दूनी रिश्वत तुरत पचाते।
चूरन सभी महाजन खाते,
जिससे जमा हजम कर जाते।

राष्ट्र-प्रेम प्रधान भारतेंदु जी के काव्य में राष्ट्र-प्रेम भी भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। भारत के प्राचीन गौरव की झांकी वे इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं -

भारत के भुज बल जग रच्छित,
भारत विद्या लहि जग सिच्छित।

भारत तेज जगत विस्तारा,
भारत भय कंपिथ संसारा।

प्राकृतिक चित्रण प्रकृति चित्रण में भारतेंदु जी को अधिक सफलता नहीं मिली, क्योंकि वे मानव-प्रकृति के शिल्पी थे, बाह्य प्रकृति में उनका मर्मपूर्ण रूपेण नहीं रम पाया। अत: उनके अधिकांश प्रकृति चित्रण में मानव हृदय को आकर्षित करने की शक्ति का अभाव है। चंद्रावली नाटिका के यमुना-वर्णन में अवश्य सजीवता है तथा उसकी उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं नवीनता लिए हुए हैं-

कै पिय पद उपमान जान यह निज उर धारत,
कै मुख कर बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत।
कै ब्रज तियगन बदन कमल की झलकत झांई,
कै ब्रज हरिपद परस हेतु कमला बहु आई॥

प्रकृति वर्णन का यह उदाहरण देखिये, जिसमे युमना की शोभा कितनी दर्शनीय है-

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहूँ सुहाये॥

भाषा

भारतेन्दु के समय में राजकाज और संभ्रांत वर्ग की भाषा फारसी थी। वहीं, अंग्रेजी का वर्चस्व भी बढ़ता जा रहा था। साहित्य में ब्रजभाषा का बोलबाला था। फारसी के प्रभाव वाली उर्दू भी चलन में आ गई थी। ऐसे समय में भारतेन्दु ने लोकभाषाओं और फारसी से मुक्त उर्दू के आधार पर खड़ी बोली का विकास किया। आज जो हिंदी हम लिखते-बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है। यही कारण है कि उन्हें आधुनिक हिंदी का जनक माना जाता है। केवल भाषा ही नहीं, साहित्य में उन्होंने नवीन आधुनिक चेतना का समावेश किया और साहित्य को 'जन' से जोड़ा।

भारतेन्दु की रचनाधर्मिता में दोहरापन दिखता है। कविता जहां वे ब्रज भाषा में लिखते रहे, वहीं उन्होंने बाकी विधाओं में सफल हाथ खड़ी बोली में आजमाया। सही मायने में कहें तो भारतेंदु आधुनिक खड़ी बोली गद्य के उन्नायक हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य की भाषा प्रधानत: ब्रज भाषा है। उन्होंने ब्रज भाषा के अप्रचलित शब्दों को छोड़ कर उसके परिकृष्ट रूप को अपनाया। उनकी भाषा में जहां-तहां उर्दू और अंग्रेजी के प्रचलित शब्द भी जाते हैं।

उनके गद्य की भाषा सरल और व्यवहारिक है। मुहावरों का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है।

शैली

भारतेंदु जी के काव्य में निम्नलिखित शैलियों के दर्शन होते हैं –

1. रीति कालीन रसपूर्ण अलंकार शैली – श्रृंगारिक कविताओं में,
2. भावात्मक शैली – भक्ति के पदों में,
3. व्यंग्यात्मक शैली – समाज-सुधार की रचनाओं में,
4. उद्‌बोधन शैली – देश-प्रेम की कविताओं में।

रस

भारतेंदु जी ने लगभग सभी रसों में कविता की है। श्रृंगार और शान्त रसों की प्रधानता है। श्रृंगार के दोनों पक्षों का भारतेंदु जी ने सुंदर वर्णन किया है। उनके काव्य में हास्य रस की भी उत्कृष्ट योजना मिलती है।

छन्द

भारतेंदु जी ने अपने समय में प्रचलित प्रायः सभी छंदों को अपनाया है। उन्होंने केवल हिंदी के ही नहीं उर्दू, संस्कृत, बंगला भाषा के छंदों को भी स्थान दिया है। उनके काव्य में संस्कृत के वसंत तिलका, शार्दूल विक्रीड़ित, शालिनी आदि हिंदी के चौपाई, छप्पय, रोला, सोरठा, कुंडलियाँ, कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि, बंगला के पयार तथा उर्दू के रेखता, गजल छंदों का प्रयोग हुआ है। इनके अतिरिक्त भारतेंदु जी कजली, ठुमरी, लावनी, मल्हार, चैती आदि लोक छंदों को भी व्यवहार में लाए हैं।

अलंकार

अलंकारों का प्रयोग भारतेंदु जी के काव्य में सहज रूप से हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और संदेह अलंकारों के प्रति भारतेंदु जी की अधिक रुचि है। शब्दालंकारों को भी स्थान मिला है। निम्न पंक्तियों में उत्प्रेक्षा और अनुप्रास अलंकार की योजना स्पष्ट दिखाई देती है–

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए।।

महत्त्वपूर्ण कार्य

नवीन साहित्यिक चेतना और स्वभाषा प्रेम का सूत्रपात

आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतेंदु जी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। भारतेंदु बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी क्षेत्रों में उनकी देन अपूर्व है। भारतेंदु जी हिंदी में नव जागरण का संदेश लेकर अवतरित हुए। उन्होंने हिंदी के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया। भाव, भाषा और शैली में नवीनता तथा मौलिकता का समावेश करके उन्हें आधुनिक काल के अनुरूप बनाया। आधुनिक हिंदी के वे जन्मदाता माने जाते हैं। हिंदी के नाटकों का सूत्रपात भी उन्हीं के द्वारा हुआ।

भारतेंदु जी अपने समय के साहित्यिक नेता थे। उनसे कितने ही प्रतिभाशाली लेखकों को जन्म मिला। मातृ-भाषा की सेवा में उन्होंने अपना जीवन ही नहीं संपूर्ण धन भी अर्पित कर दिया। हिंदी भाषा की उन्नति उनका मूलमंत्र था –

निज भाषा उन्नति लहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल॥
विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार॥

1882 में शिक्षा आयोग (हन्टर कमीशन) के समक्ष अपनी गवाही में हिन्दी को न्यायालयों की भाषा बनाने की महत्ता पर उन्होंने कहा-

यदि हिन्दी अदालती भाषा हो जाए, तो सम्मन पढ़वाने, के लिए दो-चार आने कौन देगा, और साधारण-सी अर्जी लिखवाने के लिए कोई रुपया-आठ आने क्यों देगा। तब पढ़ने वालों को यह अवसर कहाँ मिलेगा कि गवाही के सम्मन को गिरफ्तारी का वारंट बता दें। सभी सभ्य देशों की अदालतों में उनके नागरिकों की बोली और लिपि का प्रयोग किया जाता है। यही (भारत) ऐसा देश है जहाँ अदालती भाषा न तो शासकों की मातृभाषा है और न प्रजा की। यदि आप दो सार्वजनिक नोटिस, एक उर्दू में तथा एक हिंदी में, लिखकर भेज दें तो आपको आसानी से मालूम हो जाएगा कि प्रत्येक नोटिस को समझने वाले लोगों का अनुपात क्या है। जो सम्मन जिलाधीशों द्वारा जारी किये जाते हैं उनमें हिंदी का प्रयोग होने से रैयत और जमींदार को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त हुई है। साहूकार और व्यापारी अपना हिसाब-किताब हिंदी में रखते हैं। स्त्रियाँ हिंदी लिपि का

प्रयोग करती हैं। पटवारी के कागजात हिंदी में लिखे जाते हैं और ग्रामों के अधिकतर स्कूल हिंदी में शिक्षा देते हैं।

इसी सन्दर्भ में 1868 ई में 'उर्दू का स्यापा' से उन्होंने एक व्यंग्य कविता लिखी–

है है उर्दू हाय हाय। कहाँ सिधारी हाय हाय।
मेरी प्यारी हाय हाय। मुंशी मुल्ला हाय हाय।
बल्ला बिल्ला हाय हाय। रोये पीटें हाय हाय।
टाँग घसीटैं हाय हाय। सब छिन सोचौं हाय हाय।
डाढ़ी नोचौं हाय हाय। दुनिया उल्टी हाय हाय।
रोजी बिल्टी हाय हाय। सब मुखतारी हाय हाय।
किसने मारी हाय हाय। खबर नवीसी हाय हाय।
दाँत पीसी हाय हाय। एडिटर पोसी हाय हाय।
बात फरोशी हाय हाय। वह लस्सानी हाय हाय।
चरब-जुबानी हाय हाय। शोख बयानि हाय हाय।
फिर नहीं आनी हाय हाय।

अपनी इन्हीं कार्यों के कारण भारतेन्दु हिन्दी साहित्याकाश के एक दैदीप्यमान नक्षत्र बन गए और उनका युग भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हरिश्चंद्र चंद्रिका, कविवचनसुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन, स्त्री बाला बोधिनी जैसे प्रकाशन उनके विचारशील और प्रगतिशील सम्पादकीय दृष्टिकोण का परिचय देते हैं।

साम्राज्य-विरोधी चेतना तथा स्वदेश प्रेम का विकास

भारतेन्दु का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उन्होंने हिन्दी साहित्य को, और उसके साथ समाज को साम्राज्य-विरोधी दिशा में बढ़ने की प्रेरणा दी। 1870 में जब कविवचनसुधा में उन्होंने लॉर्ड मेयो को लक्ष्य करके 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख लिखा तब से हिन्दी साहित्य में एक नयी साम्राज्य-विरोधी चेतना का प्रसार आरम्भ हुआ। 6 जुलाई 1874 को कविवचनसुधा में लिखा कि जिस प्रकार अमेरिका उपनिवेशित होकर स्वतन्त्र हुआ उसी प्रकार भारत भी स्वतन्त्रता लाभ कर सकता है। उन्होंने तदीय समाज की स्थापना की जिसके सदस्य स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रतिज्ञा करते थे। भारतेन्दु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का

जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था,

हमलोग सर्वातर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।

सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने ही साहित्य में जन भावनाओं और आकांक्षाओं को स्वर दिया था। पहली बार साहित्य में 'जन' का समावेश भारतेन्दु ने ही किया। उनके पहले काव्य में रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ही बोलबाला था। साहित्य पतनशील सामन्ती संस्कृति का पोषक बन गया था, पर भारतेन्दु ने साहित्य को जनता की गरीबी, पराधीनता, विदेशी शासकों के अमानवीय शोषण के चित्रण और उसके विरोध का माध्यम बना दिया। अपने नाटकों, कवित्त, मुकरियों और प्रहसनों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजी राज पर कटाक्ष और प्रहार किए, जिसके चलते उन्हें अंग्रेजों का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

भारतेंदु अंग्रेजों के शोषण तंत्र को भली-भांति समझते थे। अपनी पत्रिका कविवचनसुधा में उन्होंने लिखा था–

जब अंग्रेज विलायत से आते हैं प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिंदुस्तान से अपने विलायत को जाते हैं तब कुबेर बनकर जाते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज ही हैं।

यही नहीं, 20वीं सदी की शुरुआत में दादाभाई नौरोजी ने धन के अपवहन यानी ड्रेन ऑफ वेल्थ के जिस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था, भारतेन्दु ने बहुत पहले ही शोषण के इस रूप को समझ लिया था। उन्होंने लिखा था–

अंगरेजी राज सुखसाज सजे अति भारी, पर सब धन विदेश चलि जात ये ख्वारी।

अंग्रेज भारत का धन अपने यहां लेकर चले जाते हैं और यही देश की जनता की गरीबी और कष्टों का मूल कारण है, इस सच्चाई को भारतेंदु ने समझ लिया था। कविवचनसुधा में उन्होंने जनता का आह्वान किया था–

भाइयो! अब तो सन्नद्ध हो जाओ और ताल ठोक के इनके सामने खड़े तो हो जाओ। देखो भारतवर्ष का धन जिसमें जाने न पावे वह उपाय करो।"

भारत की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्न

भारतेन्दु की वैश्विक चेतना भी अत्यन्त प्रखर थी। उन्हें अच्छी तरह पता था कि विश्व के कौन से देश कैसे और कितनी उन्नति कर रहे हैं। इसलिए उन्होंने सन् 1884 में बलिया के दादरी मेले में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया था। यह लेख उनकी अत्यन्त प्रगतिशील सोच का परिचायक भी है। इसमें उन्होंने लोगों से कुरीतियों और अंधविश्वासों को त्यागकर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उद्योग-धंधों को विकसित करने, सहयोग एवं एकता पर बल देने तथा सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होने का आह्वान किया था। ददरी जैसे धार्मिक और लोक मेले के साहित्यिक मंच से भारतेंदु का यह उद्‌बोधन अगर देखा जाए तो आधुनिक भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चिंतन का प्रस्थानबिंदु है। भाषण का एक छोटा सा अंश देखिए-

"हम नहीं समझते कि इनको लाज भी क्यों नहीं आती कि उस समय में जबकि इनके पुरखों के पास कोई भी सामान नहीं था तब उन लोगों ने जंगल में पत्ते और मिट्‌टी की कुटियों में बैठ करके बाँस की नालियों से जो ताराग्रह आदि बेध करके उनकी गति लिखी है वह ऐसी ठीक है कि सोलह लाख रुपये के लागत की विलायत में जो दूरबीन बनी है उनसे उन ग्रहों को बेध करने में भी वही गति ठीक आती है और जब आज इस काल में हम लोगों को अंगरेजी विद्या के और जनता की उन्नति से लाखों पुस्तकें और हजारों यंत्र तैयार हैं तब हम लोग निरी चुंगी के कतवार फेंकने की गाड़ी बन रहे हैं। यह समय ऐसा है कि उन्नति की मानो घुड़दौड़ हो रही है। अमेरिकन अंगरेज फरासीस आदि तुरकी ताजी सब सरपट्‌ट दौड़े जाते हैं। सबके जी में यही है कि पाला हमी पहले छू लें। उस समय हिन्दू काठियावाड़ी खाली खड़े-खड़े टाप से मिट्‌टी खोदते हैं। इनको औरों को जाने दीजिए जापानी टट्‌टुओं को हाँफते हुए दौड़ते देख करके भी लाज नहीं आती। यह समय ऐसा है कि जो पीछे रह जायेगा फिर कोटि उपाय किये भी आगे न बढ़ सकेगा। इस लूट में इस बरसात में भी जिसके सिर पर कम्बख्ती का छाता और आँखों में मूर्खता की पट्‌टी बँधी रहे उन पर ईश्वर का कोप ही कहना चाहिए।

विचारों की स्पष्टता और उसे विनोदप्रियता के साथ किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है, इसका यह निबन्ध बेजोड़ उदाहरण है। देखिए, किस तरह भारत की चिंता इस निबन्ध में भारतेंदु व्यक्त करते हैं, बहुत लोग यह कहैंगे कि हमको पेट के धंधे के मारे छुट्टी ही नहीं रहती बाबा, हम क्या उन्नति करैं? तुम्हारा पेट भरा है तुमको दून की सूझती है। यह कहना उनकी बहुत भूल है। इंगलैंड का पेट भी कभी यों ही खाली था। उसने एक हाथ से पेट भरा, दूसरे हाथ से उन्नति की राह के कांटों को साफ किया। वास्तव में उनका यह लेख भारत दुर्दशा नामक उनके नाटक का एक तरह से वैचारिक विस्तार है। भारत दुर्दशा में वे कहते हैं,

रोअहुं सब मिलिकै आवहुं भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुर्दशा देखी न जाई॥

भारतेन्दु अच्छी तरह समझ चुके थे कि 'अंग्रेजी शासन भारतीयों के लाभ के लिए है' यह पूर्णत: खोखला दावा था और दुष्प्रचार था। अँग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया–

"सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"

भारतेन्दु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कविवचनसुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा–

"यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।"

प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचंद की रचनाएँ

प्रेमचंद की कहानियां इस प्रकार से है पंच परमेश्वर, कफन, नमक का दरोगा, बूढ़ी काकी, नशा, परीक्षा, ईदगाह, बड़े घर की बेटी, सुजान भगत, शतरंज

के खिलाड़ी, माता का हृदय, मिस पदमा, बलिदान, दो बैलों की कथा तथा पूस की रात, सौत कजाकी, प्रेमचंद की पहली कहानी संसार का अनमोल रत्न 1960 में जमाना पत्रिका में प्रकाशित की गयी थी।

प्रेमचंद के उपन्यास भारत और दुनिया की कई भाषाओं में अनुदित हुए, खास कर उनका सर्वाधिक चर्चित उपन्यास गोदान है। सेवा सदन एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। प्रेमाश्रम किसान जीवन पर लिखा हिंदी का संभवत पहला उपन्यास है यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया। रंगभूमि में प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात कर चुके थे। गोदान का हिंदी साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद ने सेवा सदन (1918) उपन्यास से हिंदी उपन्यास की दुनिया में प्रवेश किया यह मूल रूप से उन्होंने बाजार ए हुस्न नाम से पहले उर्दू में लिखा इसका हिंदी रूप सेवा सदन पहले प्रकाशित कराया।

साहित्यिक विशेषताएं–इनकी रचनाओं में भारत के दर्शन होते हैं। मुंशी प्रेमचंद के साहित्य पर गांधीवाद का प्रभाव दिखाई देता है। साहित्य को समाज का दर्पण नहीं, मशाल होना चाहिए। यह बोलते थे प्रेमचंद।

जीवन परिचय

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1880 को वाराणसी के निकट लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। लमही, उत्तर प्रदेश राज्य के बनारस शहर के नजदीक ही लगभग चार मील दूर स्थित हैं। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था तथा पिता मुंशी अजायबराय लमही में डाक मुंशी थे। उनकी शिक्षा का आरंभ उर्दू, फारसी से हुआ और जीवन-यापन का अध्यापन से। पढ़ने का शौक उन्हें बचपन से ही लग गया। 13 साल की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया और उन्होंने उर्दू के मशहूर रचनाकार रतननाथ 'शरसार', मिर्जा हादी रुस्वा और मौलाना शरर के उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया। 1898 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक स्थानीय विद्यालय में शिक्षक नियुक्त हो गए। नौकरी के साथ ही उन्होंने पढ़ाई जारी रखी।1910 में उन्होंने अंग्रेजी, दर्शन, फारसी और इतिहास लेकर इंटर पास किया और 1919 में बी. ए. पास करने के बाद शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हुए।

सात वर्ष की अवस्था में उनकी माता तथा चौदह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो जाने के कारण उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। उनका पहला विवाह पंद्रह साल की उम्र में हुआ जो सफल नहीं रहा। वे आर्य समाज से प्रभावित रहे, जो उस समय का बहुत बड़ा धार्मिक और सामाजिक आंदोलन था। उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया और 1906 में दूसरा विवाह अपनी प्रगतिशील परंपरा के अनुरूप बाल-विधवा शिवरानी देवी से किया। उनकी तीन संताने हुई- श्रीपत राय, अमृत राय और कमला देवी श्रीवास्तव। 1910 में उनकी रचना सोजे-वतन (राष्ट्र का विलाप) के लिए हमीरपुर के जिला कलेक्टर ने तलब किया और उन पर जनता को भड़काने का आरोप लगाया। सोजे-वतन की सभी प्रतियाँ जब्त कर नष्ट कर दी गई। कलेक्टर ने नवाबराय को हिदायत दी कि अब वे कुछ भी नहीं लिखेंगे, यदि लिखा तो जेल भेज दिया जाएगा। इस समय तक प्रेमचंद, धनपत राय नाम से लिखते थे। उर्दू में प्रकाशित होने वाली जमाना पत्रिका के सम्पादक और उनके अजीज दोस्त मुंशी दयानारायण निगम की सलाह से वे प्रेमचंद नाम से लिखने लगे। उन्होंने आरंभिक लेखन जमाना पत्रिका में ही किया। जीवन के अंतिम दिनों में वे गंभीर रूप से बीमार पड़े। उनका उपन्यास मंगलसूत्र पूरा नहीं हो सका और लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया। उनका अंतिम उपन्यास मंगल सूत्र उनके पुत्र अमृतराय ने पूरा किया।

कार्यक्षेत्र

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी कहानी के पितामह और उपन्यास सम्राट माने जाते हैं। यों तो उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ 1901 से हो चुका था पर उनकी पहली हिन्दी कहानी सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर अंक में 1915 में सौत नाम से प्रकाशित हुई और 1936 में अंतिम कहानी कफन नाम से प्रकाशित हुई। उनसे पहले हिंदी में काल्पनिक, ऐय्यारी और पौराणिक धार्मिक रचनाएं ही की जाती थी। प्रेमचंद ने हिंदी में यथार्थवाद की शुरूआत की। ' भारतीय साहित्य का बहुत सा विमर्श जो बाद में प्रमुखता से उभरा चाहे वह दलित साहित्य हो या नारी साहित्य उसकी जड़ें कहीं गहरे प्रेमचंद के साहित्य में दिखाई देती हैं।' प्रेमचंद के लेख 'पहली रचना' के अनुसार उनकी पहली रचना अपने मामा पर लिखा व्यंग्य थी, जो अब अनुपलब्ध है। उनका पहला उपलब्ध लेखन उनका उर्दू उपन्यास 'असरारे मआबिद' है। प्रेमचंद का दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी

रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। इसके बाद प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे-वतन नाम से आया जो 1908 में प्रकाशित हुआ। देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होने के कारण इस पर अंग्रेजी सरकार ने रोक लगा दी और इसके लेखक को भविष्य में इस तरह का लेखन न करने की चेतावनी दी। इसके कारण उन्हें नाम बदलकर लिखना पड़ा। 'प्रेमचंद' नाम से उनकी पहली कहानी बड़े घर की बेटी जमाना पत्रिका के दिसम्बर 1910 के अंक में प्रकाशित हुई। मरणोपरांत उनकी कहानियाँ मानसरोवर नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुईं। कथा सम्राट प्रेमचन्द का कहना था कि साहित्यकार देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह बात उनके साहित्य में उजागर हुई है। 1921 में उन्होंने महात्मा गांधी के आह्वान पर अपनी नौकरी छोड़ दी। कुछ महीने मर्यादा पत्रिका का संपादन भार संभाला, छह साल तक माधुरी नामक पत्रिका का संपादन किया, 1930 में बनारस से अपना मासिक पत्र हंस शुरू किया और 1932 के आरंभ में जागरण नामक एक साप्ताहिक और निकाला। उन्होंने लखनऊ में 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। उन्होंने मोहन दयाराम भवनानी की अजंता सिनेटोन कंपनी में कहानी-लेखक की नौकरी भी की। 1934 में प्रदर्शित मजदूर नामक फिल्म की कथा लिखी और कॉन्ट्रेक्ट की साल भर की अवधि पूरी किये बिना ही दो महीने का वेतन छोड़कर बनारस भाग आये। उन्होंने मूल रूप से हिंदी में 1915 से कहानियां लिखना और 1918 (सेवासदन) से उपन्यास लिखना शुरू किया।

उपन्यास–प्रेमचंद का पहला उर्दू उपन्यास (अपूर्ण) 'असरारे मआबिद उर्फ 'देवस्थान रहस्य' उर्दू साप्ताहिक 'आवाज-ए-खल्क' में 8 अक्टूबर, 1903 से 1 फरवरी, 1905 तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उनका दूसरा उपन्यास 'हमखुर्मा व हमसवाब' जिसका हिंदी रूपांतरण 'प्रेमा' नाम से 1907 में प्रकाशित हुआ। चूंकि प्रेमचंद मूल रूप से उर्दू के लेखक थे और उर्दू से हिंदी में आए थे, इसलिए उनके सभी आरंभिक उपन्यास मूल रूप से उर्दू में लिखे गए और बाद में उनका हिन्दी तर्जुमा किया गया।

सेवासदन (1918)–यह मूल रूप से उन्होंने 'बाजारे-हुस्न' नाम से पहले उर्दू में लिखा गया लेकिन इसका हिंदी रूप 'सेवासदन' पहले प्रकाशित हुआ। यह एक नारी के वेश्या बनने की कहानी है। डॉ रामविलास शर्मा 'सेवासदन' की मुख्य समस्या भारतीय नारी की पराधीनता को मानते हैं।

प्रेमाश्रम (1922)–यह किसान जीवन पर उनका पहला उपन्यास है। इसका मसौदा भी पहले उर्दू में 'गोशाए-आफियत' नाम से तैयार हुआ था, लेकिन इसे पहले हिंदी में प्रकाशित कराया। यह अवध के किसान आंदोलनों के दौर में लिखा गया।

रंगभूमि (1925)- इसमें प्रेमचंद एक अंधे भिखारी सूरदास को कथा का नायक बनाकर हिंदी कथा साहित्य में क्रांतिकारी बदलाव का सूत्रपात करते हैं।

निर्मला (1925)

कायाकल्प (1927)

गबन (1928)

कर्मभूमि (1932)

गोदान (1936)

मंगलसूत्र (अपूर्ण)- यह प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है।

कहानी

इनकी अधिकतर कहानियाँ में निम्न व मध्यम वर्ग का चित्रण है। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद की संपूर्ण हिंदी-उर्दू कहानी को प्रेमचंद कहानी रचनावली नाम से प्रकाशित कराया है। उनके अनुसार प्रेमचंद ने कुल 301 कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 3 अभी अप्राप्य हैं। प्रेमचंद का पहला कहानी संग्रह सोजे वतन नाम से जून 1908 में प्रकाशित हुआ। इसी संग्रह की पहली कहानी दुनिया का सबसे अनमोल रतन को आम तौर पर उनकी पहली प्रकाशित कहानी माना जाता रहा है। डॉ. गोयनका के अनुसार कानपुर से निकलने वाली उर्दू मासिक पत्रिका जमाना के अप्रैल अंक में प्रकाशित सांसारिक प्रेम और देश-प्रेम (इश्के दुनिया और हुब्बे वतन) वास्तव में उनकी पहली प्रकाशित कहानी है। प्रेमचंद की प्रमुख कहानियाँ-

- पंच परमेश्वर
- गुल्ली डंडा
- दो बैलों की कथा
- ईदगाह
- बड़े भाई साहब
- पूस की रात
- ठाकुर का कुआँ

- सद्गति
- बूढ़ी काकी
- तावान
- विध्वंस
- दूध का दाम
- मंत्र
- कफन

कहानी संग्रह

- सप्त सरोज
- नवनिधि
- प्रेमपूर्णिमा
- प्रेम-पचीसी
- प्रेम-प्रतिमा
- प्रेम-द्वादशी
- समरयात्र

मानसरोवर—भाग एक व दो और 'कफन'। उनकी मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' शीर्षक से 8 भागों में प्रकाशित हुई।

नाटक

- संग्राम (1923),
- कर्बला (1924)
- प्रेम की वेदी (1933)

ये नाटक शिल्प और संवेदना के स्तर पर अच्छे हैं, लेकिन उनकी कहानियों और उपन्यासों ने इतनी ऊँचाई प्राप्त कर ली थी कि नाटक के क्षेत्र में प्रेमचंद को कोई खास सफलता नहीं मिली। ये नाटक वस्तुतः संवादात्मक उपन्यास ही बन गए हैं।

लेख/निबंध

अमृतराय द्वारा संपादित 'प्रेमचंद—विविध प्रसंग' (तीन भाग) वास्तव में प्रेमचंद के लेखों का ही संकलन है। प्रेमचंद के लेख प्रकाशन संस्थान से 'कुछ विचार' शीर्षक से भी छपे हैं। उनके प्रसिद्ध लेख हैं-

साहित्य का उद्देश्य,
पुराना जमाना नया जमाना,
स्वराज के फायदे,
कहानी कला (1,2,3),
कौमी भाषा के विषय में कुछ विचार,
हिंदी-उर्दू की एकता,
महाजनी सभ्यता,
उपन्यास,
जीवन में साहित्य का स्थान।

अनुवाद

प्रेमचंद एक सफल अनुवादक भी थे। उन्होंने दूसरी भाषाओं के जिन लेखकों को पढ़ा और जिनसे प्रभावित हुए, उनकी कृतियों का अनुवाद भी किया। 'टॉलस्टॉय की कहानियाँ' (1923), गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का हड़ताल (1930), चाँदी की डिबिया (1931) और न्याय (1931) नाम से अनुवाद किया। उनके द्वारा रतननाथ सरशार के उर्दू उपन्यास फसान-ए-आजाद का हिंदी अनुवाद आजाद कथा बहुत मशहूर हुआ।

जीवनी

प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी ने प्रेमचंद घर लिखी और उनके व्यक्तित्व के उस हिस्से को उजागर किया है, जिससे लोग अनभिज्ञ थे। यह पुस्तक 1944 में पहली बार प्रकाशित हुई थी, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में इसके महत्व का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसे दुबारा 2005 में संशोधित करके प्रकाशित किया गया। इस काम को उनके ही नाती प्रबोध कुमार ने अंजाम दिया। इसका अंग्रेजी व हसन मंजर का किया हुआ उर्दू अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। उनके ही बेटे अमृत राय ने कलम का सिपाही नाम से पिता की जीवनी लिखी है।

विविध

1. बाल साहित्य–रामकथा, कुत्ते की कहानी
2. विचार–प्रेमचंद–विविध प्रसंग, प्रेमचंद के विचार (तीन खंडों में)

3. संपादन–मर्यादा, माधुरी, हंस, जागरण

समालोचना

प्रेमचन्द उर्दू का संस्कार लेकर हिन्दी में आए थे और हिन्दी के महान लेखक बने। हिन्दी को अपना खास मुहावरा और खुलापन दिया। कहानी और उपन्यास दोनो में युगान्तरकारी परिवर्तन किए। उन्होंने साहित्य में सामयिकता का प्रबल आग्रह स्थापित किया। आम आदमी को उन्होंने अपनी रचनाओं का विषय बनाया और उसकी समस्याओं पर खुलकर कलम चलाते हुए उन्हें साहित्य के नायकों के पद पर आसीन किया। प्रेमचंद से पहले हिंदी साहित्य राजा-रानी के किस्सों, रहस्य-रोमांच में उलझा हुआ था। प्रेमचंद ने साहित्य को सच्चाई के धरातल पर उतारा। उन्होंने जीवन और कालखंड की सच्चाई को पन्ने पर उतारा। वे सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जमींदारी, कर्जखोरी, गरीबी, उपनिवेशवाद पर आजीवन लिखते रहे। प्रेमचन्द की ज्यादातर रचनाएँ उनकी ही गरीबी और दैन्यता की कहानी कहती है। ये भी गलत नहीं है कि वे आम भारतीय के रचनाकार थे। उनकी रचनाओं में वे नायक हुए, जिसे भारतीय समाज अछूत और घृणित समझा था। उन्होंने सरल, सहज और आम बोल-चाल की भाषा का उपयोग किया और अपने प्रगतिशील विचारों को दृढ़ता से तर्क देते हुए समाज के सामने प्रस्तुत किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने कहा कि लेखक स्वभाव से प्रगतिशील होता है और जो ऐसा नहीं है वह लेखक नहीं है। प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की एक नई परंपरा शुरू की।

प्रेमचंद के जीवन संबंधी विवाद

इतने महान रचनाकार होने के बावजूद प्रेमचंद का जीवन आरोपों से मुक्त नहीं है। प्रेमचंद के अध्येता कमलकिशोर गोयनका ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद–अध्ययन की नई दिशाएं' में प्रेमचंद के जीवन पर कुछ आरोप लगाकर उनके साहित्य का महत्व कम करने की कोशिश की। प्रेमचंद पर लगे मुख्य आरोप हैं- प्रेमचंद ने अपनी पहली पत्नी को बिना वजह छोड़ा और दूसरे विवाह के बाद भी उनके अन्य किसी महिला से संबंध रहे (जैसा कि शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' में उद्धृत किया है), प्रेमचंद ने 'जागरण विवाद' में विनोदशंकर व्यास के साथ धोखा किया, प्रेमचंद ने अपनी प्रेस के वरिष्ठ कर्मचारी प्रवासीलाल वर्मा के साथ

धोखाधड़ी की, प्रेमचंद की प्रेस में मजदूरों ने हड़ताल की, प्रेमचंद ने अपनी बेटी के बीमार होने पर झाड़-फूंक का सहारा लिया आदि। कमलकिशोर गोयनका द्वारा लगाए गए ये आरोप प्रेमचंद के जीवन का एक पक्ष जरूर हमारे सामने लाते हैं जिसमें उनकी इंसानी कमजोरियों जाहिर होती हैं, लेकिन उनके व्यापक साहित्य के मूल्यांकन पर इन आरोपों का कोई असर नहीं पड़ पाया है। प्रेमचंद्र को लोग आज उनकी काबिलियत की वजह से याद करते हैं, जो विवादों को बहुत कम जगह देती है।

मुंशी के विषय में विवाद

मुंशी, प्रेमचंद

'हंस के संपादक प्रेमचंद तथा कन्हैयालाल मुंशी थे। परन्तु कालांतर में पाठकों ने 'मुंशी' तथा 'प्रेमचंद' को एक समझ लिया और 'प्रेमचंद'- 'मुंशी प्रेमचंद' बन गए। यह स्वाभाविक भी है। सामान्य पाठक प्रायः लेखक की कृतियों को पढ़ता है, नाम की सूक्ष्मता को नहीं देखा करता। आज प्रेमचंद का मुंशी अलंकरण इतना रूढ़ हो गया है कि मात्र 'मुंशी' से ही प्रेमचंद का बोध हो जाता है तथा 'मुंशी' न कहने से प्रेमचंद का नाम अधूरा-अधूरा सा लगता है।

विरासत

प्रेमचंद ने अपनी कला के शिखर पर पहुँचने के लिए अनेक प्रयोग किए। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था। लेकिन होते-होते उन्होंने गोदान जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है। उन्होंने चीजों को खुद गढ़ा और खुद आकार दिया। जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था तब उन्होंने कथा साहित्य द्वारा हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं को जो अभिव्यक्ति दी उसने सियासी सरगर्मी को, जोश को और आंदोलन को सभी को उभारा और उसे ताकतवर बनाया और इससे उनका लेखन भी ताकतवर होता गया। प्रेमचंद इस अर्थ में निश्चित रूप से हिंदी के पहले प्रगतिशील लेखक कहे जा सकते हैं। 1936 में उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले सम्मेलन को सभापति के रूप

में संबोधन किया था। उनका यही भाषण प्रगतिशील आंदोलन के घोषणा पत्र का आधार बना। प्रेमचंद ने हिन्दी में कहानी की एक परंपरा को जन्म दिया और एक पूरी पीढ़ी उनके कदमों पर आगे बढ़ी, 50-60 के दशक में रेणु, नागार्जुन और इनके बाद श्रीनाथ सिंह ने ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ लिखी हैं, वो एक तरह से प्रेमचंद की परंपरा के तारतम्य में आती हैं। प्रेमचंद एक क्रांतिकारी रचनाकार थे, उन्होंने न केवल देशभक्ति बल्कि समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को देखा और उनको कहानी के माध्यम से पहली बार लोगों के समक्ष रखा। उन्होंने उस समय के समाज की जो भी समस्याएँ थीं उन सभी को चित्रित करने की शुरुआत कर दी थी। उसमें दलित भी आते हैं, नारी भी आती हैं। ये सभी विषय आगे चलकर हिन्दी साहित्य के बड़े विमर्श बने। प्रेमचंद हिन्दी सिनेमा के सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यकारों में से हैं। सत्यजित राय ने उनकी दो कहानियों पर यादगार फिल्में बनाईं। 1977 में शतरंज के खिलाड़ी और 1981 में सद्गति। उनके देहांत के दो वर्षों बाद के. सुब्रमण्यम ने 1938 में सेवासदन उपन्यास पर फिल्म बनाई जिसमें सुब्बालक्ष्मी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। 1977 में मृणाल सेन ने प्रेमचंद की कहानी कफन पर आधारित ओका ऊरी कथा नाम से एक तेलुगू फिल्म बनाई जिसको सर्वश्रेष्ठ तेलुगू फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। 1963 में गोदान और 1966 में गबन उपन्यास पर लोकप्रिय फिल्में बनीं। 1980 में उनके उपन्यास पर बना टीवी धारावाहिक निर्मला भी बहुत लोकप्रिय हुआ था।

प्रेमचंद संबंधी नए अध्ययन

हिंदी साहित्य व आलोचना में प्रेमचंद को प्रतिष्ठित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को दिया जाता है, परन्तु यह एक गलत धारणा है। दरअसल एक कहानीकार और उपन्यासकार के रूप में प्रेमचंद की लोकप्रियता उनके जीवनकाल में ही इतनी ज्यादा थी कि उन्हें 'उपन्यास सम्राट' कहा जाने लगा था। प्रेमचंद को स्थापित करने वाले उनके पाठक थे, आलोचक नहीं। प्रेमचंद के पत्रों को सहेजने का काम अमृतराय और मदनगोपाल ने किया। प्रेमचंद पर हुए नए अध्ययनों में कमलकिशोर गोयनका और डॉ. धर्मवीर का नाम उल्लेखनीय है। कमलकिशोर गोयनका ने प्रेमचंद के जीवन के कमजोर पक्षों को उजागर करने के साथ-साथ प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य (दो भाग) व 'प्रेमचंद विश्वकोश' (दो भाग) का संपादन भी किया है। डॉ. धर्मवीर ने दलित दृष्टि

से प्रेमचंद साहित्य का मूल्यांकन करते हुए प्रेमचंद–सामंत का मुंशी व प्रेमचंद की नीली आँखें नाम से पुस्तकें लिखी हैं।

पुरस्कार व सम्मान

प्रेमचंद की स्मृति में भारतीय डाक-तार विभाग की ओर से 30 जुलाई 1980 को उनकी जन्मशती के अवसर पर 30 पैसे मूल्य का एक डाक टिकट जारी किया गया। गोरखपुर के जिस स्कूल में वे शिक्षक थे, वहाँ प्रेमचंद साहित्य संस्थान की स्थापना की गई है। प्रेमचंद की 125वीं सालगिरह पर सरकार की ओर से घोषणा की गई कि वाराणसी से लगे इस गाँव में प्रेमचंद के नाम पर एक स्मारक तथा शोध एवं अध्ययन संस्थान बनाया जाएगा।

प्रेमचंद के साहित्य की विशेषताएँ

प्रेमचंद हिंदी के युग प्रवर्तक रचनाकार हैं। उनकी रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। वे सर्वप्रथम उपन्यासकार थे जिन्होंने उपन्यास साहित्य को तिलस्मी और ऐयारी से बाहर निकाल कर उसे वास्तविक भूमि पर ला खड़ा किया। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। प्रेमचंद की रचनाओं को देश में ही नहीं विदेशों में भी आदर प्राप्त हैं। प्रेमचंद और उनकी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। आज उन पर और उनके साहित्य पर विश्व के उस विशाल जन समूह को गर्व है, जो साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और सामंतवाद के साथ संघर्ष में जुटा हुआ है।

वर्ण्य विषय

प्रेमचंद की रचनाओं में जीवन की विविध समस्याओं का चित्रण हुआ है। उन्होंने मिल मालिक और मजदूरों, जमीदारों और किसानों तथा नवीनता और प्राचीनता का संघर्ष दिखाया है।

प्रेमचंद के युग-प्रवर्तक अवदान की चर्चा करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–

'प्रथमतः उन्होंने हिन्दी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप से जोड़ने का काम किया। चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं ...ने उन्हें उपन्यास लेखन के लिए प्रेरित किया।'

प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चुनाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से किया है, किंतु उनकी दृष्टि समाज से उपेक्षित वर्ग की ओर अधिक रही है। प्रेमचंद जी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को अपनाया है। उनके पात्र प्राय: वर्ग के प्रतिनिधि रूप में सामने आते हैं। घटनाओं ने विकास के साथ-साथ उनकी रचनाओं में पात्रों के चरित्र का भी विकास होता चलता है। उनके कथोपकथन मनोवैज्ञानिक होते हैं। प्रेमचंद जी एक सच्चे समाज सुधारक और क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होंने अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर दहेज, बेमेल विवाह आदि का सबल विरोध किया है। नारी के प्रति उनके मन में स्वाभाविक श्रद्धा थी। समाज में उपेक्षिता, अपमानिता और पतिता स्त्रियों के प्रति उनका हृदय सहानुभूति से परिपूर्ण रहा है।

जीवन-दर्शन

मूर्धन्य आलोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं,

'अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-व्यवहार, भाषा-भाव, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दु:ख-सुख और सूझ-बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता. . ....समाज के विभिन्न आयामों को उनसे अधिक विश्वसनीयता से दिखा पाने वाले परिदर्शक को हिन्दी-उर्दू की दुनिया नहीं जानती. परन्तु आप सर्वत्र ही एक बात लक्ष्य करेंगे. जो संस्कृतियों औए संपदाओं से लद नहीं गए हैं, अशिक्षित निर्धन हैं, जो गंवार और जाहिल हैं, वो उन लोगों से अधिक आत्मबल रखते हैं और न्याय के प्रति अधिक सम्मान दिखाते हैं, जो शिक्षित हैं, चतुर हैं, जो दुनियादार हैं, जो शहरी हैं। यही प्रेमचंद का जीवन-दर्शन है। '

प्रेमचंद ने अतीत का गौरव राग नहीं गाया, न ही भविष्य की हैरत-अंगेज कल्पना की. वे ईमानदारी के साथ वर्तमान काल की अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा कि ये बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान, ये गरीब, यह अनुभव कर सकें कि संसार की कोइ भी शक्ति उन्हें नहीं दबा सकती तो ये निश्चय ही अजेय हो जायेंगे।

सच्चा प्रेम सेवा और त्याग में ही अभिव्यक्ति पाता है। प्रेमचंद का पात्र जब प्रेम करने लगता है तो सेवा की ओर अग्रसर होता है और अपना सर्वस्व परित्याग कर देता है।

भाषा

प्रेमचंद की भाषा सरल और सजीव और व्यावहारिक है। उसे साधारण पढ़े-लिखे लोग भी समझ लेते हैं। उसमें आवश्यकतानुसार अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का भी प्रयोग है। प्रेमचंद की भाषा भावों और विचारों के अनुकूल है। गंभीर भावों को व्यक्त करने में गंभीर भाषा और सरल भावों को व्यक्त करने में सरल भाषा को अपनाया गया है। इस कारण भाषा में स्वाभाविक उतार-चढ़ाव आ गया है। प्रेमचंद जी की भाषा पात्रों के अनुकूल है। उनके हिंदू पात्र हिंदी और मुस्लिम पात्र उर्दू बोलते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण पात्रों की भाषा ग्रामीण है। और शिक्षितों की भाषा शुद्ध और परिष्कृत भाषा है।

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–'उनके उपन्यासों की भाषा की खूबी यह है कि शब्दों के चुनाव एवं वाक्य-योजना की दृष्टि से उसे 'सरल' एवं 'बोलचाल की भाषा' कहा जाता है। पर भाषा की इस सरलता को निर्जीवता, एकरसता एवं अकाव्यात्मकता का पर्याय नहीं समझा जाना चाहिए।'

ष्भाषा के सटीक, सार्थक एवं व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

शिल्प

डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं–

'प्रेमचंद ने सहज सामान्य मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज-तीव्र मानवीय रुचि पैदा कर दी।

'शिल्प और भाषा की दृष्टि से भी प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को विशिष्ट स्तर प्रदान किया। ...चित्रणीय विषय के अनुरूप शिल्प के अन्वेषण का प्रयोग हिन्दी उपन्यास में पहले प्रेमचंद ने ही किया। उनकी विशेषता यह है कि उनके द्वारा प्रस्तुत किये गए दृश्य अत्यंत सजीव गतिमान और नाटकीय हैं।'

शैली

प्रेमचंद ने हिंदी और उर्दू दोनों की शैलियों को मिला दिया है। उनका हिंदी और उर्दू दोनों पर अधिकार था। अत: वे भावों को व्यक्त करने के लिए बड़े सरल और सजीव शब्द ढूँढ़ लेते थे। उनकी शैली में चुलबुलापन और निखार है। प्रेमचंद की शैली की दूसरी विशेषता सरलता और सजीवता है। उनकी शैली

में अलंकारिकता का भी गुण विद्यमान है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के द्वारा शैली में विशेष लालित्य आ गया है। इस प्रकार की अलंकारिक शैली का परिचय देते हुए वे लिखते हैं- 'अरब की भारी तलवार ईसाई की हल्की कटार के सामने शिथिल हो गई। एक सर्प की भाँति फन से चोट करती थी, दुसरी नागिन की भाँति उड़ती थी। एक लहरों की भाँति लपकती थी दूसरी जल की मछलियों की भाँति चमकती थी।'

चित्रोपमता भी प्रेमचंद की शैली में खूब मिलती है। प्रेमचंद भाव घटना अथवा पात्र का ऐसे ढंग से वर्णन करते हैं कि सारा दृश्य आँखों के सम्मुख नाच उठता है उसका एक चित्र-सा खिंच जाता है। रंगभूमि उपन्यास के सूरदास की झोपड़ी का दृश्य बहुत सजीव है-

'कैसा नैराश्यपूर्ण दृश्य था। न खाट न बिस्तर, न बर्तन न भांडे। एक कोने में एक मिट्टी का घड़ा जिसकी आयु का अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हांडी थी। एक पुरानी चलनी की भाँति छिद्रों से भरा हुआ तवा और एक छोटी-सी कठौत और एक लोटा। बस यही उस घर की संपत्ति थी।'

प्रेमचंद के पात्रों के उत्तर-प्रत्युत्तर उनकी शैली में अभिनयात्मकता का गुण भी समावेश कर देते हैं। उनकी शैली में हास्य-व्यंग्य का भी पुट रहता है, किंतु उनका व्यंग्य ऐसा नहीं होता जो किसा का दिल दुखाए। उसमें एक ऐसी मिठास रहती है, जो मनोरंजन के साथ-साथ हमारी आँखें भी खोल देती हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है- 'वह गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और आसामियों को एक दूसरे से लड़वा कर रकमें मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। परमार्थी थे। बुखार के दिनों में सरकारी कुनैन बाँट कर यश कमाते थे।'

मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग करने में प्रेमचंद जी बड़े कुशल थे। उन्होंने शहरी और ग्रामीण दोनों ही प्रकार के मुहावरों का खूब प्रयोग किया है। प्रेमचंद की सी मुहावरेदार शैली कदाचित ही किसी हिंदी लेखक की हो। क्षमा कहानी में प्रयुक्त एक सूक्ति देखें-'जिसको तलवार का आश्रय लेना पड़े वह सत्य ही नहीं है।' प्रेमचंद जी की शैली पर उनके व्यक्तित्त्व की छाप स्पष्ट रूप से अंकित है।

प्रेमचंद की सिद्धहस्त लेखनी के कुछ नमूने

'गोदान' का क्लाईमैक्स

प्रेमचंद के सर्वप्रसिद्ध मार्मिक उपन्यास 'गोदान' का क्लाईमैक्स देखिये–

धनिया ने होरी की देह छुई तो कलेजा सन से हो गया। मुख कांतिहीन हो गया था।

कांपती हुई आवाज से बोली - कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आँखों से देखा और बोला – तुम आ गये गोबर? मैंने मंगल के लिये गाय ले ली है। वह खड़ा है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गाँव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गयी है, उसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर बोली – मेरी ओर देखो, मैं हूँ, धनिया। मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गयी थी। आग दहकने वाली थी। धुआँ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूंदें ढुलक पडीं। क्षीण स्वर में बोला – मेरा कहा सुना माफ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गयी। अब तो यहाँ के रुपए किरया-करम में जायँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलायेगी? सब दुर्दशा तो हो गयी। अब मरने दे।

और उसकी आँखें फिर बंद हो गयीं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुँच गये। होरी को उठाकर डोली में लिटाया और गाँव की ओर चले। गाँव में यह खबर हवा की तरह फैल गयी। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था। पर जबान बंद हो गयी थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दु:ख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाये हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा

सके। उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके। मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, मगर यंत्र की भाँति दौड़-दौड़कर कभी आम भून कर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती। हीरा ने रोते हुए कहा – भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या वह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है?

और कई आवाजें आयीं – हाँ गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली – महराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

प्रेमचन्द के उपन्यास

गोदान उपन्यास प्रेमचंद का अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जाता है। प्रेमचंद ने गोदान को 1932 में लिखना शुरू किया था और 1936 में प्रकाशित करवाया था। 1936 में प्रकाशित गोदान उपन्यास को हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया था। संसार की शायद ही कोई भाषा होगी, जिसमे गोदान का अनुवाद न हुआ हो। प्रेमचंद का गोदान, किसान जीवन के संघर्ष एवं वेदना को अभिव्यक्त करने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। यह प्रेमचंद की आकस्मिक रचना नहीं है, उनके जीवन भर के लेखन प्रयासों का निष्कर्ष है। यह रचना और भी तब महत्त्वपूर्ण बन जाती है, जब प्रेमचंद भारत के ऐसे कालखंड का वर्णन करते है, जिसमे सामंती समाज के अंग किसान और जमींदार दोनों ही मिट रहे है और पूंजीवादी समाज के मजदूर तथा उद्योगपति उनकी जगह ले रहे है। गोदान, ग्रामीण जीवन और कृषक संस्कृति का महाकाव्य कहा जा सकता है। ग्रामीण जीवन का इतना वास्तविक, व्यापक और प्रभावशाली चित्रण, हिन्दी साहित्य के किसी अन्य उपन्यास में नहीं हुआ है।

कथानक

कथा नायक होरी की वेदना पाठको के मन में गहरी संवेदना भर देती है। संयुक्त परिवार के विघटन की पीड़ा होरी को तोड़ देती है, परन्तु गोदान की इच्छा उसे जीवित रखती है और वह यह इच्छा मन में लिए ही वह इस दुनिया से कूच कर जाता है। गोदान औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसान का महाजनी व्यवस्था में चलने वाले निरंतर शोषण तथा उससे उत्पन्न संत्रास की कथा है। गोदान का नायक होरी एक किसान है, जो किसान वर्ग के प्रतिनिधि के तौर पर मौजूद है। 'आजीवन दुर्धर्ष संघर्ष के बावजूद उसकी एक गाय की आकांक्षा पूर्ण नहीं हो पाती।' गोदान भारतीय कृषक जीवन के संत्रासमय संघर्ष की कहानी है।

'गोदान' होरी की कहानी है, उस होरी की जो जीवन भर मेहनत करता है, अनेक कष्ट सहता है, केवल इसलिए कि उसकी मर्यादा की रक्षा हो सके और इसीलिए वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है, किंतु उसे इसका फल नहीं मिलता और अंत में मजबूर होना पड़ता है, फिर भी अपनी मर्यादा नहीं बचा पाता। परिणामत: वह जप-तप के अपने जीवन को ही होम कर देता है। यह होरी की कहानी नहीं, उस काल के हर भारतीय किसान की आत्मकथा है। और इसके साथ जुड़ी है शहर की प्रासंगिक कहानी। 'गोदान' में उन्होंने ग्राम और शहर की दो कथाओं का इतना यथार्थ रूप और संतुलित मिश्रण प्रस्तुत किया है। दोनों की कथाओं का संगठन इतनी कुशलता से हुआ है कि उसमें प्रवाह आद्योपांत बना रहता है। प्रेमचंद की कलम की यही विशेषता है।

इस रचना में प्रेमचन्द का गांधीवाद से मोहभंग साफ-साफ दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासों में जहाँ आदर्शवाद दिखाई पडता है, गोदान में आकर यथार्थवाद नग्न रूप में परिणत होता है।

गबन

प्रेमचंद का उपन्यास 'गबन' सन् 1930 ई. में प्रकाशित हुआ। मध्यवर्गीय जीवन और मनोवृत्ति का जितना सफल चित्रण प्रेमचन्द ने 'गबन' में किया है, उतना उनके साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। औपन्यासिक कला की दृष्टि से भी यह उनकी एक सुन्दर रचना है।

कथानक

इसमें दो कथानक हैं - एक प्रयाग से सम्बद्ध और दूसरा कोलकाता से सम्बद्ध। दोनों कथानक जालपाकी मध्यस्थता द्वारा जोड़ दिए गये हैं। कथानक

में अनावश्यक घटनाओं और विस्तार का अभाव है। प्रयाग के छोटे से गाँव के जमींदार के मुख्तार महाशय दीनदयाल और मानकी की इकलौती पुत्री जालपा को बचपन से ही आभूषणों, विशेषत: चन्द्रहार की लालसा लग गयी थी। वह स्वप्न देखती थी कि विवाह के समय उसके लिए चन्द्रहार जरूर चढ़ेगा। जब उसका विवाह कचहरी में नौकर मुंशी दयानाथ के बेकार पुत्र रमानाथ से हुआ तो चढ़ावे में और गहने तो थे, चन्द्रहार न था। इससे जालपा को घोर निराशा हुई।

प्रयाग से सम्बद्ध

दीनदयाल और दयानाथ दोनों ने अपनी- अपनी बिसात से ज्यादा विवाह में खर्च किया। दयानाथ ने कचहरी में रहते हुए रिश्वत की कमाई से मुँह मोड़ रखा था। पुत्र के विवाह में वे कर्ज से लद गये। दयानाथ तो चन्द्रहार भी चढ़ाना चाहते थे लेकिन उनकी पत्नी जागेश्वरी ने उनका प्रस्ताव रद्द कर दिया था। जालपा की एक सखी शहजादी उसे चन्द्रहार प्राप्त करने के लिए और उत्तेजित करती है। जालपा चन्द्रहार की टेक लेकर ही ससुराल गयी। घर की हालत तो खस्ता थी, किंतु रमानाथ ने जालपा के सामने अपने घराने की बड़ी शान मार रखी थी। कर्ज उतारने के लिए जब पिता ने जालपा के कुछ गहने चुपके से लाने के लिए कहा तो रमानाथ कुछ मानसिक संघर्ष के बाद आभूषणों का सन्दूक चुपके से उठाकर उन्हें दे आते है और जालपा से चोरी हो जाने का बहाना कर देते हैं, किंतु अपने इस कपटपूर्ण व्यवहार से उन्हें आत्मग्लानि होती है, विशेषत: जब कि वे अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते हैं। जालपा का जीवन तो क्षुब्ध हो उठता है। अब रमानाथ को नौकरी की चिंता होती है। वे अपने शतरंज के साथी विधुर और चुंगी में नौकरी करने वाले रमेश बाबू की सहायता से चुंगी में तीस रुपये की मासिक नौकरी पा जाते हैं। जालपा को वे अपना वेतन चालीस रुपये बताते हैं। इसी समय जालपा को अपनी माता का भेजा हुआ चन्द्रहार मिलता है, किंतु दया में दिया हुआ दान समझकर वह उसे स्वीकार नहीं करती। अब रमानाथ में जालपा के लिए गहने बनवाने का हौसला पैदा होता है। इस हौसले को को वे सराफों के कर्ज से लद जाने पर भी पूरा है। इन्दुभूषण वकील की पत्नी रतन को जालपा के जड़ाऊ कंगन बहुत अच्छे लगते हैं। वैसे ही कंगन लाने के लिए वह रमानाथ को 600 रुपये देती है। सर्राफ इन रुपयों को कर्जखाते में जमाकर रमानाथ को कंगन उधार देने से इंकार कर देता हैं। रतन कंगनों के लिए बराबर तकाजा करती रहती है। अंत में वह अपने रुपये ही वापस लाने के लिए

कहती है। उसके रुपये वापस करने के ख्याल से रमानाथ चुंगी के रुपये ही घर ले आते हैं। उनकी अनुपस्थिति में जब रतन अपने रुपये माँगने आती हैं तो जालपा उन्हीं रुपयों को उठाकर दे देती हैं। घर आने पर जब रमानाथ को पता लगा तो उन्हें बड़ी चिंता हुई। गबन के मामले में उनकी सजा हो सकती थी। सारी परिस्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने अपनी पत्नी के नाम एक पत्र लिखा। वे उसे अपनी पत्नी को देने या न देने के बारे में सोच ही रहे थे, कि वह पत्र जालपा को मिल जाता हैं। उसे पत्र पढ़ते देखकर उन्हें इतनी आत्म- ग्लानि होती है कि वे घर से भाग जाते हैं जालपा अपने गहने बेचकर चुंगी के रुपये लौटा देती है। इसके पश्चात् कथा कलकत्ते की ओर मुड़ती है।

कलकत्ते से सम्बद्ध

कलकत्ते में रमानाथ अपने हितैषी देवीदीन खटिक के यहाँ कुछ दिनों तक गुप्त रूप से रहने के बाद चाय की दुकान खोल लेते हैं। वे अपनी वास्तविकता छिपाए रहते हैं। एक दिन जब वे नाटक देखकर लौट रहे थे, पुलिस उन्हें शुबहे में पकड़ लेती है। घबराहट में रमानाथ अपने गबन आदि के बारे में सारी कथा सुना देते हैं। पुलिसवाले अपनी तहकीकात द्वारा उन्हें निर्दोष पाते हुए भी नहीं छोड़ते और उन्हें क्रांतिकारियों पर चल रहे एक मुकदमें के गवाह के रूप में पेश कर देते हैं। जेल- जीवन से भयभीत होने के कारण रमानाथ पुलिसवालों की बात मान लेते हैं। पुलिस ने उन्हें एक बँगले में बड़े आराम से रखा और जोहरा नामक एक वेश्या उनके मनोरंजन के लिए नियुक्त की गयी। उधर जालपा रतन के परामर्श से शतरंज- सम्बन्धी 50/- का एक विज्ञापन प्रकाशित करती है। जिस व्यक्ति ने वह विज्ञापन जीता, वह रमानाथ ही थे और इससे जालपा को मालूम हो गया कि वे कलकत्ते में हैं। खोजते- खोजते वह देवीदीन खटिक के यहाँ पहुँच जाती है और रमानाथ को पुलिस के कुचक्र से निकालने की असफल चेष्टा करती है। रतन भी उन्हीं दिनों अपने बूढ़े पति का इलाज कराने के लिए कलकत्ते आती है। पति की मृत्यु के बाद वह जालपा की सहायता करने में किसी प्रकार का संकोच प्रकट नहीं करती। क्रांतिकारियों के विरुद्ध गवाही देने के पश्चात् उन्हें जालपा का एक पत्र मिला, जिसने उनके भाव बदल दिये। उन्होंने जज के सामने सारी वास्तविकता प्रकट कर दी, जिससे उसको विश्वास हो गया कि निरपराध व्यक्तियों को दण्ड दिया गया है। जज ने अपना पहला निर्णय वापस ले लिया। रमानाथ, जालपा, जोहरा आदि वापस आकर प्रयाग के समीप रहने लगे।

उपसंहार

जालपा के कारण रमानाथ में आत्म- सम्मान का फिर से उदय हो जाता है। जोहरा वेश्या- जीवन छोड़कर सेवा- व्रत धारण करती है। रमानाथ और जालपा भी सेवा- मार्ग का अनुसरण करते हैं। जोहरा ने अपनी सेवा, आत्म- त्याग और सरल स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। रतन मृत्यु को प्राप्त हुई। एक बार प्रयाग के समीप गंगा में डूबते हुए यात्री को बचाते समय भी बह गयी। रमानाथ ने कोशिश की कि उसे बचाने लिए आगे बढ़ जाय। जालपा भी पानी में कूद पड़ी थी। रमानाथ आगे न बढ़ सके। एक शक्ति आगे खींचती थी, एक पीछे। आगे की शक्ति में अनुराग था, निराशा थी, बलिदान था। बन्धन ने रोक लिया। कलकत्ते में जोहरा विलास की वस्तु थी। प्रयाग में उसके घर के प्राणी- जैसा व्यवहार होता था। दयानाथ और रामेश्वरी को यह कह कर शांत कर दिया गया था कि वह देवीदीन की विधवा बहू है। जोहरा में आत्मशुद्धि की ज्योति जगमगा उठी थी। अपनी क्षीण आशा लिये रमानाथ और जालपा घर लौट गये। उनकी आँखों के सामने जोहरा की तस्वीर खड़ी हो जाती थी।

आलोचना

प्रसिद्ध आलोचनाकार डॉ. नामवर सिंह के अनुसार - 'गबन' उपन्यास की आलोचना करते हुए 'प्रेमचंद की कला' शीर्षक निबंध में जैनेंद्र कुमार ने लिखा है कि–

'बात को ऐसा सुलझाकर कहने की आदत मैं नहीं जानता, मैंने और कहीं देखी है। बड़ी से बड़ी बात को बहुत उलझन के अवसर पर ऐसे सुलझाकर थोड़े से शब्दों में भरकर, कुछ इस तरह कह जाते हैं, जैसे यह गूढ़, गहरी, अप्रत्यक्ष बात उनके लिए नित्य-प्रति घरेलू व्यवहार की जानी पहचानी चीज हो। उनकी कलम सब जगह पहुँचती है, लेकिन अंधेरे से अंधेरे में भी वह कभी धोखा नहीं देती। वह वहाँ भी सरलता से अपना मार्ग बनाती चली जाती है। स्पष्टता के मैदान में प्रेमचंद अविजय हैं। उनकी बात निर्णीत, खुली, निश्चित होती है।'

गद्य साहित्य की वर्तमान गति–तृतीय उत्थान में वर्णित है -

प्रेमचंद की सी चलती और पात्रों के अनुरूप रंग बदलने वाली भाषा भी पहले नहीं देखी गई थी। अंत:प्रकृति या शील के उत्तरोत्तर उद्‌घाटन का कौशल भी प्रेमचंदजी के दो एक उपन्यासों में, विशेषत: 'गबन' में देखने में आया। सत् और असत् भला और बुरा दो सर्वथा भिन्न वर्ग करके पात्र निर्माण करने की

अस्वाभाविक प्रथा भी इस तृतीय उत्थान में बहुत कुछ कम हुई है, पर मनोवृत्ति की अस्थिरता का वह चित्र अभी बहुत कम दिखाई पड़ा है जिसके अनुसार कुछ परिस्थितियों में मनुष्य अपने शील स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध आचरण कर जाता है।

कर्मभूमि

प्रेमचंद द्वारा रचित 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास सन् 1932 में प्रकाशित हुआ था। यह राजनीतिक कथानक पर आधारित उपन्यास है।

उपन्यास के पात्र

प्रेमचन्द्र का यह उपन्यास पाँच भागों में विभाजित है। इस उपन्यास में लाला समरकांत, उनके पुत्र अमरकांत, पुत्रवधु सुखदा, रेणुकांत (सुखदा का पुत्र), पुत्री नैना सकीना, हाफिज हलीम और उनके पुत्र सलीम, धनीराम और उनके पुत्र मनीराम, डॉ. शांतिकुमार और स्वामी आत्मानन्द, गूदड़, प्रयाग, काशी, सलोनी और मुन्नी आदि की कहानी है। कर्मभूमि में परिवारों की कथा है। इसमें प्रेमचन्द देशानुराग, समाज- सुधार, मठिरा- निवारण, अछूतोद्धार, शिक्षा, गरीबों के लिए मकानों की समस्या, देश के प्रति कर्त्तव्य, जन- जागृति आदि की ओर संकेत करते हैं। कृषकों की समस्या उपन्यास में है तो, किंतु वह प्रमुख नहीं हो पायी। सम्पूर्ण कथा का कार्य- क्षेत्र प्रधानतः काशी और हरिद्वार के पास का देहाती इलाका है।

राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द का कर्मभूमि उपन्यास एक राजनीतिक उपन्यास है जिसमें विभिन्न राजनीतिक समस्याओं को कुछ परिवारों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। ये परिवार यद्यपि अपनी पारिवारिक समस्याओं से जूझ रहे हैं तथापि तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलन में भाग ले रहे हैं। उपन्यास का कथानक काशी और उसके आस-पास के गाँवों से संबंधित है। आन्दोलन दोनों ही जगह होता है और दोनों का उद्देश्य क्रान्ति है। किन्तु यह क्रान्ति गाँधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित है। गाँधीजी का कहना था कि जेलों को इतना भर देना चाहिए कि उनमें जगह न रहे और इस प्रकार शक्ति और अहिंसा से अंग्रेज सरकार पराजित हो जाए।

समस्या

इस उपन्यास की मूल समस्या यही है। उपन्यास के सभी पात्र जेलों में ठूस दिए जाते हैं। इस तरह प्रेमचन्द क्रान्ति के व्यापक पक्ष का चित्रण करते हुए तत्कालीन सभी राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को कथानक से जोड़ देते हैं। निर्धनों के मकान की समस्या, अछूतोद्धार की समस्या, अछूतों के मन्दिर में प्रवेश की समस्या, भारतीय नारियों की मर्यादा और सतीत्व की रक्षा की समस्या, ब्रिटिश साम्राज्य के दमन चक्र से उत्पन्न समस्याएँ, भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक पाखण्ड की समस्या पुनर्जागरण और नवीन चेतना के समाज में संचरण की समस्या, राष्ट्र के लिए आन्दोलन करने वालों की पारिवारिक समस्याएँ आदि इस उपन्यास में बड़े यथार्थवादी तरीके से व्यक्त हुई हैं।

कथानक

अमरकांत बनारस के रईस समरकांत के पुत्र हैं। वे विद्यार्थी- जीवन से ही सार्वजनिक जीवन में कार्य करने के शौकीन हैं। अपने मित्र सलीम की आर्थिक सहायता भी करते रहते हैं। प्रारम्भ में उनके लोभी पिता के आदर्शों में काफी अंतर बना रहता है। अमरकांत का विवाह लखनऊ के एक धनी परिवार की एकमात्र संतान सुखदा से हो जाता है, किंतु दोनों के दृष्टिकोणों में साम्य नहीं है। साथ-साथ रहते हुए भी दोनों को एक - दूसरे से प्रेम नहीं है। सुखदा को अपने पति का खादी बेचना और सार्वजनिक कार्य पसन्द नहीं। पत्नी से प्रेम न पाकर अमरकांत सकीना की मुहब्बत में पड़ जाते है। वे पहले से ही डॉक्टर शांतिकुमार के साथ काशी में कार्य करते थे। गोरे सिपाहियों द्वारा सताई गयी मुन्नी के मुकदमे के सम्बन्ध में उन्होंने काफी कार्य किया। व्यावहारिकता और आदर्श में संघर्ष होने के कारण अपने पिता तथा सुखदा से उनका पहले से ही जी ऊबा हुआ था, लेकिन जब सकीना के साथ उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार देखकर पठानिन ने उन्हें फटकारा तो वे शहर छोड़कर चले गये।

हरिद्वार में

शहर छोड़कर वे हरिद्वार के पास एक ऐसे देहाती इलाके में पहुँचे जहाँ मुर्दाखोर और अछूत कहे जाने वाले लोग और किसान रहते थे। वे सलोनी के यहाँ रहते हुए गूदड़, प्रयाग, काशी आदि के सम्पर्क में आये और गाँववालों में शिक्षा, अच्छी- अच्छी आदतों, सफाई आदि का प्रचार करने लगे। यहाँ रहते हुए

उनकी मुन्नी से भेंट हुई। दोनों में परस्पर आकर्षण भी उत्पन्न हुआ। काशी से आये आत्मानन्द से उन्हें अपने सेवा- कार्य में बराबर सहायता प्राप्त होती रहती थी। कृषकों की सहायता के लिए वे महंत आशाराम गिरि से मिले, किंतु उन्हें अधिक सफलता प्राप्त न हुई, किंतु काशी में सुखदा के त्याग समाचार सुनकर भी वे उत्तेजित हो उठते हैं और लगानबन्दी का आंदोलन शुरू कर देते हैं। उनका पुराना मित्र सलीम, अब आई. सी. एस. ऑफिसर और उस इलाके का इंचार्ज, उन्हें पकड़ ले जाता है। किंतु लाला समरकांत, जिनमें अब परिवर्तन हो चुका था, जन - सेवा की ओर मुड़कर उसी इलाके में पहुँच जाते हैं और किसान - आन्दोलन के सिलसिले में कारावास दण्ड भी भुगतते हैं। उनके प्रभाव से सलीम के हृदय में भी परिवर्तन हो जाता है। वह स्वंय आन्दोलन की बागडोर सम्हालता है और अंत में पकड़ा जाता है। तत्पश्चत मुन्नी और सकीना (वह भी उस इलाके में पहुँच जाती है) भी गिरफ्तार हो जाती हैं। उग्र आत्मानन्द भी सरकारी शिकंजे से बच नहीं पाते।

काशी में

उधर काशी के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश, गरीबों के लिए मकान बनवाने आदि समस्याओं को लेकर आन्दोलन छिड़ जाता है और सरकार से संघर्ष होता है। इस आन्दोलन का संचालन सुखदा, पठानिन, रेणुकादेवी और यहाँ तक कि समरकांत भी करते हैं। ये सब और डॉक्टर शांतिकुमार जेल-यात्रा करते हैं। नैना भी वहाँ आ जाती है और एक जलूस का नेतृत्व करते हुए चुंगी की ओर जाती है। वहाँ उसका पति मनीराम उसे गोली मार देता है। उसकी मृत्यु से चुंगी के मेम्बरों में भी हृदय - परिर्वतन हो जाता है और वे गरीबों के मकानों के लिए जमीन दे देते हैं। जो आन्दोलन सुखदा ने प्रारम्भ किया था, उसका अंत नैना की बलि से होता है। लखनऊ के सेण्ट्रल जेल में अमरकांत, मुन्नी, सकीना, सुखदा, पठानिन, रेणुका आदि सब मिल जाते हैं। धनीराम का पुत्र मनीराम मृत्यु को प्राप्त होता है।

अंत

अंत में सेठ धनीराम की मध्यस्थता से सरकार द्वारा एक कमेटी नियुक्त हो जाती है, जो सरकार से मिलकर किसानों और गरीबों की समस्याओं पर विचार करेगी। उस कमेटी में अमर और सलीम तो रहते ही हैं, उनके अतिरिक्त

तीन अन्य सदस्यों को चुनने का उन्हें अधिकार दिया गया। सरकार ने भी उस कमेटी में दो सदस्य अपने रखे। यह समझौते वाली नीति 1930 के कांग्रेस और सरकार के अस्थायी समझौते के प्रभाव के रूप में है। सरकार तब कैदियों को छोड़ देती है। अमरकांत, सकीना और मुन्नी को बहन के रूप में स्वीकार करते हैं और अमरकांत और सुखदा एक दूसरे का महत्त्व पहचानते हैं।

प्रेमचन्द की रचना कौशल

प्रेमचन्द की रचना कौशल इस तथ्य में है कि उन्होंने इन समस्याओं का चित्रण सत्यानुभूति से प्रेरित होकर किया है कि उपन्यास पढ़ते समय तत्कालीन राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन पाठक की आँखों के समक्ष सजीव हो जाता हैं। छात्रों तथा घटनाओं की बहुलता के बावजूद उपन्यास न कहीं बोझिल होता है, न कहीं नीरस। प्रेमचन्द हर पात्र और घटना की डोर अपने हाथ में रखते हैं इसलिए कहीं शिथिलता नहीं आने देते। आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से ओतप्रोत कर्मभूमि उपन्यास प्रेमचन्द की एक प्रौढ़ रचना है, जो हर तरह से प्रभावशाली बन पड़ी है।

कायाकल्प

प्रेमचंद के 'कायाकल्प' नामक उपन्यास का प्रकाशन 1928 ई. में हुआ। प्रेमचन्द का एक नवीन प्रयोगशील किंतु शिथिल उपन्यास है।

कथानक

चक्रधर की कथा के साथ प्रेमचंद ने रानी देवप्रिया की अलौकिक कथा जोड़ दी है। चक्रधर की कथा के माध्यम द्वारा लेखक ने विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याएँ उठायी हैं। रानी देवप्रिया की कथा द्वारा आत्मज्ञान से विहीन जड़ विज्ञान की निरर्थकता और जन्मांतरवाद का प्रतिपादन हुआ है। इसी दूसरी कथा से 'कायाकल्प' में नवीनता दृष्टिगोचर होती है अन्यथा उसके बिना यह उपन्यास प्रेमचन्द्र के अन्य उपन्यासों की परम्परा में नहीं रखा जा सकता है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक समस्याओं के अतिरिक्त रानी देवप्रिया, ठाकुर विशालसिंह, शंखधर और यहाँ तक कि स्वयं चक्रधर की पत्नी अहल्या के जीवन-क्रम के आधार पर उपन्यास की मूल समस्या दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता है। लौंगी का आदर्श प्रेम और पति-भक्ति और वागीश्वरी का अहल्या को उपदेश, ये दोनों बातें इसी मूल समस्या की ओर

संकेत करती हैं अर्थात् साधना तथा आत्मिक संयोग के अभाव में विलास और तृष्णा पर आधारित दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सकता।

परिवार पर आधारित

अपने अन्य उपन्यासों की भाँति प्रेमचंद 'कायाकल्प' में भी परिवारों को लेकर चलते है - यशोदानंदन और वागीश्वरी का परिवार, ख्वाजा महमूद का परिवार, मुंशी ब्रजधर और निर्मल का परिवार, ठाकुर विशालसिंह का परिवार, रानी देवप्रिया का परिवार और अंत में चक्रधर और अहल्या का परिवार।

निर्मला

प्रेमचन्द द्वारा लिखित 'निर्मला' उपन्यास, जिसका निर्माण काल 1923 ई. और प्रकाशन का समय 1927 ई. है। प्रेमचन्द्र की गणना हिन्दी के निर्माताओं में की जाती है। कहानी और उपन्यास के क्षेत्रों में उन्होंने पहली सफल रचनाएँ दीं जो गुण तथा आकार दोनों दृष्टियों से अन्यतम हैं। प्रेमचन्द्र के जिन उपन्यासों ने साहित्य के मानक स्थापित किए, उनमें निर्मला बहुत आगे माना जाता है। इसमें हिन्दू समाज में स्त्री के स्थान का सशक्त चित्रण किया गया है। इस पर बना दूरदर्शन का सीरियल भी बहुत लोकप्रिय हुआ है।

प्रमुख उपन्यास

प्रेमचन्द का यह उपन्यास ''निर्मला'' छोटा होते हुए भी उनके प्रमुख उपन्यासों में गिना जाता है। इसका प्रकाशन 1927 में हुआ था। इस उपन्यास में उन्होंने दहेज प्रथा तथा बेमेल विवाह की समस्या उठाई है और बहुसंख्यक मध्यमवर्गीय हिन्दू समाज के जीवन का बड़ा यथार्थवादी मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके अन्य उपन्यास निम्नवर्गीय तथा ग्रामीण कृषक जीवन का चित्रण करते हैं तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा समानता का पक्ष प्रबलता से प्रस्तुत करते हैं। इस श्रेणी में 'गोदान', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि, 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' आदि उपन्यास आते हैं, जो सब गांधी विचारधारा से प्रभावित आदर्शवादी तथा आम जनता के जीवन से संबंधित है। 'गबन' भी 'निर्मला' की ही भाँति स्त्रियों की समस्या पर है, परन्तु यह एक अन्य समस्या-स्त्रियों के आभूषण प्रेम की समस्या प्रस्तुत करता है।

कथानक

प्रेमचन्द कृत 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह और दहेज-प्रथा की दु:खांत कहानी है। उपन्यास के अंत में निर्मला की मृत्यु इस कुत्सित सामाजिक प्रथा को मिटा डालने के लिए एक भारी चुनौती है। पिता उदयभानु लाल की मृत्यु हो जाने पर माता कल्याणी दहेज न दे सकने के कारण अपनी पुत्री निर्मला का विवाह भालचन्द्र और रँगीली के पुत्र भुवन मोहन से न कर बूढ़े वकील तोताराम से कर देती है। तोताराम के तीन पुत्र पहले ही से थे, इस पर भी उनकी विलासिता किसी प्रकार कम न हुई। इतना ही नहीं, निर्मला के घर में आने पर एक नवयुवती वधू के हृदय की उमंगों का आदर और उसे अपना प्रेम देने के स्थान पर तोताराम को अपनी पत्नी और अपने बड़े लड़के मंसाराम के पारस्परिक सम्बन्ध पर विलासिताजन्य सन्देह होने लगता है, जो अंततोगत्वा न केवल मंसाराम के प्राणांत का कारण बनता है, वरन् सारे परिवार के लिए अभिशाप बन जाता है।

दूसरा लड़का जियाराम भी घर के विषाक्त वातावरण के प्रभावांतर्गत कुसंग में पड़कर निर्मला के आभूषण चुराकर ले जाता है। रहस्य का उद्‌घाटन होने पर वह भी आत्महत्या कर लेता है।

सबसे छोटा लड़का सियाराम विरक्त होकर साधु हो जाता है। परिवार में निर्मला की ननद रुक्मिणी उसको फूटी आँखों भी नहीं देख सकती और प्राय: निर्मला के लिए दु:ख और क्लेश का कारण बनती है। तोताराम दो पुत्रों के विरह से संतप्त होकर सियाराम को ढूँढ़ने निकल पड़ते हैं। उधर भुवन मोहन निर्मला को अपने प्रेम-पाश में फाँसने की चेष्टा करता है और असफल होने पर आत्महत्या कर लेता है। निर्मला के जीवन में घुटन के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। अंत में वह मृत्यु को प्राप्त होती है। जिस समय उसकी चिता जलती है, तोताराम लौट आते हैं। इस प्रकार उपन्यास का अंत करूणापूर्ण है और घटना-प्रवाह में अत्यंत तीव्रता है।

उपकथायें

निर्मला और तोताराम की इस प्रधान कथा के साथ सुधा की कहानी जुड़ी हुई है। तोताराम को जब निर्मला और मंसाराम के सम्बन्ध में निराधार

सन्देह होने लगता है और, निर्मला अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मंसाराम के प्रति निष्ठुरता का अभिनय करती है और जब मंसाराम को घर से हटाकर बोर्डिंग में दाखिल कर दिया जाता है, तो बालक मंसाराम के हृदय को मार्मिक आघात पहुँचना है। उसकी दशा दिन-पर-दिन गिरती जाती है, और अंत में अपने पिता का भ्रम दूरकर वह मृत्यु को प्राप्त होता है। तोताराम को मानसिक विक्षोभ होता है। इसी समय समय प्रेमचन्द ने सुधा और उसके पति डॉ. भुवन मोहन का (जिसके साथ निर्मला का पहले विवाह होने वाला था) निर्मला से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराया है। सुधा और निर्मला घनिष्ठ मित्र बन जाती हैं। सुधा अपने शील सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण हृदय से निर्मला को मुग्ध कर लेती है। वह निर्मला की छोटी बहन कृष्णा का विवाह अपने देवर से कराती ही नहीं वरन् निर्मला की माता की गुप्त रूप से अधिक सहायता भी करती है। निर्मला के मायके में कृष्ण के विवाह के बाद सुधा का पुत्र मर जाता है। निर्मला के भी एक बच्ची पैदा होती है। उसे लेकर वह अपने घर लौट आती है। एक दिन सुधा की अनुपस्थिति में जब निर्मला उसके घर गयी तो डॉ. भुवन मोहन आत्मसंयम खो बैठते हैं। पता लगने पर सुधा अपने पति की ऐसी भर्त्सना करती है कि वह आत्मग्लानि के वशीभूत हो आत्महत्या कर लेता है। इस घटना के पश्चात् तो निर्मला के जीवन की विषादपूर्ण कथा अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है।

हास्य

प्रेमचन्द ने भालचन्द और मोटेराम शास्त्री के प्रसंग द्वारा उपन्यास में हास्य की सृष्टि की है।

सफल उपन्यास

आकस्मिक रूप से घटित होने वाली कुछ घटनाओं को छोड़कर 'निर्मला' के कथानक का विकास सीधे-सरल ढंग से होता है। प्रासंगिक कथाओं के कारण उसमें दुरूहता उत्पन्न नहीं हुई है। कथानक में कसावट है। कथा अत्यंत दृढ़ता के साथ विवृत होती हुई अपने अंतिम लक्ष्य तक पहुँच जाती है।

प्रतिज्ञा

प्रेमचन्द कृत उपन्यास, जिसका प्रकाशन 1904 ई. के लगभग हुआ था।

विधवा समस्या

'प्रतिज्ञा' उपन्यास विषम परिस्थितियों में घुट-घुटकर जी रही भारतीय नारी की विवशताओं और नियति का सजीव चित्रण है। 'प्रतिज्ञा' का नायक विधुर अमृतराय किसी विधवा से शादी करना चाहता है ताकि किसी नवयौवना का जीवन नष्ट न हो। नायिका पूर्णा आश्रयहीन विधवा है। समाज के भूखे भेड़िये उसके संचय को तोड़ना चाहते हैं। उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा समस्या को नये रूप में प्रस्तुत किया है एवं विकल्प भी सुझाया है।

विशेष

इसी पुस्तक में प्रेमचंद का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास 'मंगलसूत्र' भी है। इसका थोड़ा-बहुत अंश ही वे लिख पाए थे। यह 'गोदान' के तुरंत बाद की कृति है। जिसमें लेखक अपनी शक्तियों के चरमोत्कर्ष पर था।

कथानक

प्रेमचन्द कृत उपन्यास (प्र.1904 ई. के लगभग) 'प्रतिज्ञा' में लाला बदरीप्रसाद और देवकी, पण्डित बसंतकुमार और पूर्णा के परिवारों, विधुर अमृतराय और दाननाथ की कथा है और प्रेमचन्द्र ने विधवा नारी की समस्या उठाई है। लाला बदरीप्रसाद की एक पुत्री प्रेमा और एक पुत्र कमलाप्रसाद तथा पुत्रवधू सुमित्र हैं। अमृतराय और दाननाथ घनिष्ठ मित्र है। और प्रेमा से प्रेम करते है। प्रेमा अमृतराय की साली है। अमृतराय अमरनाथ का भाषण सुनकर प्रेमा से विवाह न कर किसी विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा करते तथा अपना जीवन निस्सहाय विधवाओं की सहायता के लिए अर्पित कर देते हैं। प्रेमा का पिता उसका विवाह दाननाथ के साथ कर देता है, यद्यपि प्रेमा और अमृतराय एक-दूसरे को अपने-अपने हृदय में स्थान दिये रहते हैं। प्रेमा पत्नी के रूप में अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित न होकर पतिव्रत धर्म का पालन करती है। गंगा में डूब जाने के कारण बसंतकुमार की मृत्यु हो जाने के उपरांत उसकी पत्नी पूर्णा प्रेमा के पिता लाला बदरीप्रसाद के यहाँ आकर रहने लगती है, किंतु कृपण और दुराचारी तथा विलासी कमलाप्रसाद अपनी पत्नी सुमित्र से उदासीन रहने के कारण अब पूर्णा को अपने प्रेमजाल में फाँसने की चेष्टा में रत रहता है और साथ ही अमृतराय की नारी-सहायता सम्बन्धी योजनाओं का विरोध करता है। दाननाथ भी अपने मित्र का विरोध करता है-अपने प्रति प्रेमा के प्रेम की परीक्षा करने के

लिए। प्रेमा यद्यपि अपने पतिव्रत में कोई अंतर नहीं आने देती किंतु उसकी सहानुभूति पूर्णतः अमृतराय की सहायता भी करती है। उधर एक दिन कमलाप्रसाद पूर्णा को अपने बाग में ले जाकर बलात्कार करने की चेष्टा करने में उसके द्वारा घायल होता है। पूर्णा अमृतराय के आश्रम में चली जाती है। कमलाप्रसाद सुधरकर अपना दुराचरण छोड़ देता है और सुमित्र के साथ सुखपूर्वक रहने लगता है। अमृतराय ने आश्रम के लिए जीवन अर्पित कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

समाज-सुधार सम्बन्धी दृष्टिकोण

उपन्यास में प्रेमचन्द का समाज-सुधार सम्बन्धी दृष्टिकोण और आर्य-समाज का प्रभाव मिलता है। कला की दृष्टि से वह उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं है

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम', जिसका प्रकाशन 1922 ई. में हुआ था, मुंशी प्रेमचन्द का सर्वप्रथम उपन्यास है, जिसमें उन्होंने नागरिक जीवन और ग्रामीण जीवन का सम्पर्क स्थापित किया है और राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। परिवारों की कथा का मोह तो वे इस उपन्यास में भी नहीं छोड़ सके, क्योंकि प्रभाशंकर राय कमलानन्द गायत्री और डिप्टी ज्वालासिंह के परिवारों की कथा से ही उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है, तो भी वे जीवन के व्यापक क्षेत्र में आते हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम झाँकी और भावनागत राम-राज्य की स्थापना का स्वप्न 'प्रेमाश्रम' की अपनी विशेषता है। उसका उद्देश्य है-साम्य सिद्धांत। प्रेमशंकर द्वारा हाजीपुर में स्थापित प्रेमाश्रम में जीवन-मरण के गूढ़ जटिल प्रश्नों की मीमांसा होती थी। सभी लोग पक्षपात और अहंकार से मुक्त थे। आश्रम सारल्य, संतोष और सुविचार की तपोभूमि बन गया था वहाँ न धन की पूजा होती थी और न दीनता पैरों तले कुचली जाती थी। आश्रम में सब एक दूसरे के मित्र और हितैषी थे। मानव-कल्याण उनका चरम लक्ष्य था। उसका व्यावहारिक रूप हमें उपन्यास के 'उपसंहार' शीर्षक अंश में मिलता है। लखनपुर गाँव में स्वार्थ-सेवा और माया का प्रभाव नहीं रह गया। वहाँ अब मनुष्य की मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठा हुई है-ऐसे मनुष्य की जिसके जीवन में सुख, शांति, आनन्द और आत्मोल्लास है।

कथानक

'प्रेमाश्रम' की कथा का सूत्रपात बनारस से बाहर मील दूर लखनपुर गाँव से होता है। जमींदार ज्ञानशंकर की ओर से शुद्ध घी के लिए बयाना बँटना है। केवल मनोहर नहीं लेता। मनोहर की धृष्टता जमींदार और उसके कारिन्दा गौस खाँ के लिए असह्य थी। ज्ञानशंकर तो उससे बहुत नाराज होते हैं और इस मामले को लेकर अपने चाचा प्रभाशंकर तक से बिगड़ जाते है। प्रभाशंकर पुराने रईस हैं, बनारस के औरंगाबाद मुहल्ले में रहते हैं और अपने असामियों के प्रति भी वात्सल्य भाव रखते हैं। उनके भाई जटाशंकर के पुत्र ज्ञानशंकर को उनकी यह उदारता पसन्द नहीं। अपने चाचा की नीति से प्रसन्न न होने के कारण वे प्रभाशंकर के दारोगा पुत्र दयाशंकर पर चल रहे अभियोग में जरा भी सहायता करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं किंतु उनके मित्र डिप्टी ज्वालासिंह ने दयाशंकर को छोड़ दिया। नौबत यहाँ तक पहुँची कि ज्ञानशंकर ने परिवार में बँटवारा करा लिया। डिप्टी ज्वालासिंह न्यायशील और दयालु व्यक्ति थे। कर्तव्य-पालन की ओर उनका सदैव ध्यान रहता था।

वे गाँव के दौरे में बेगारी बंद करा देने की आज्ञा देते हैं और मनोहर के पुत्र बलराज की निर्भीकता से प्रसन्न होते हैं। ज्ञानशंकर अत्यन्त स्वार्थ-प्रिय और धनलोलुप है। जब अपने ससुर राय कमलानंद (लखनऊ) के पुत्र की मृत्यु के समय वे अपनी पत्नी विद्या (राय कमलानंद की छोटी पुत्री) के साथ लखनऊ पहुँचते हैं तो उनकी निगाह अपनी विधवा साली गायत्री पर और उसके धन-सम्पत्ति पर भी पड़ती है। राय कमलानंद बड़े ही रसिक और अनुभवी व्यक्ति हैं। वे ज्ञानशंकर नीयत तुरंत ताड़ जाते हैं। वे यह भी समझ जाते है कि ज्ञानशंकर की दृष्टि गायत्री और उसकी धन-सम्पत्ति पर ही नहीं, उनकी अपनी धन-सम्पत्ति पर भी है। सरल-हृदया गायत्री ज्ञानशंकर के पंजे में धीरे-धीरे फँसती जाती है। वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उधर गाँव में आये दिन कोई-न-कोई अत्याचार होता रहता है।

ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर भी अमेरिका से लौट आते हैं। वे नवीन आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विचारों से अनुप्राणित होकर घर वापिस आये हैं। ज्ञानशंकर को उनके वापिस आने से हार्दिक प्रसन्नता न हुई। प्रेमशंकर के विदेश-गमन के फलस्वरूप उनके जाति-बहिष्कार या प्रायश्चित की समस्या भी उठती है। यहाँ तक कि प्रेमशंकर निर्भीक होकर अपने मार्ग का निर्माण स्वयं करते है। वे सब प्रकार का आर्थिक लोभ छोड़कर जन-सेवा का मार्ग ग्रहण करते

और हाजीपुर में अपना आश्रम स्थापित करते हैं। ज्ञानशंकर को अपने भाई का साम्य-सिद्धांत बिल्कुल पसन्द नहीं। प्रेमशंकर ने जब पैतृक सम्पत्ति में अपने अधिकार को तिलांजलि दे दी तो ज्ञानशंकर को अत्यंत प्रसन्नता हुई। वे अब गायत्री के यहाँ गोरखपुर आने-जाने लगे और अपनी बुद्धि, व्यावहारिकता, प्रबन्ध-पटुता और कार्य-कुशलता के फलस्वरूप उस पर पूर्ण रूप से हावी ही नहीं हो गये, वरन् उसकी धार्मिकता का अनुचित लाभ उठाते हुए 'राधा-कृष्णभाव' की भक्ति का भी आनन्द उठाने लगे।

इसी समय विलासी का अपमान करने के कारण मनोहर ने साथ जाकर बलराज द्वारा गौस खाँ कारिन्दा की हत्या करा दी, जिसके फलस्वरूप सारा गाँव विपत्ति में पड़ गया। गाँववालों पर मुकदमा चला। प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वालासिंह उनकी आर्थिक और कानूनी सहायता के लिए कटिबद्ध हो गये। ज्ञानशंकर को यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी। उधर राय कमलानन्द ज्ञानशंकर की 'भक्ति' के जाल से गायत्री को बचाना चाहते थे। ज्ञानशंकर ने उन्हें विष देकर मार डालना चाहा किंतु राय कमलानन्द अपने योग-बल द्वारा विष को पचा गये। राय कमलानन्द ने अपने को चेतावनी देनी चाही। यद्यपि विद्या को अपने पति की स्वार्थपरता को क्षुद्रता बिल्कुल न सुहाती थी तो भी उसे पति के नैतिक चरित्र के सम्बन्ध में अभी तक कोई सन्देह न था।

इसलिए राय कमलानन्द की चेतावनी उसे अच्छी न लगी किंतु बनारस आकर जब उसने ज्ञानशंकर और गायत्री का 'भक्ति-सम्बन्ध' देखा तो आँखें खुल गयी। गायत्री को तो इससे आत्मग्लानि हुई ही, विद्या को भी अत्यधिक मानसिक क्लेश हुआ। जब ज्ञानशंकर ने मायाशंकर को गायत्री की गोद देना चाहा तब तो उसने अपने हाथों विद्या की इहलीला ही समाप्त कर दी। विद्या की मृत्यु ने गायत्री के सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट कर दी। वह ज्ञानशंकर की बदनीयती और क्रूरता से ही अवगत न हुई वरन् विद्या के रक्त से अपने ही हाथ सान कर तीर्थाटन के लिए चली जाती है। वह बदरीनारायण जाना चाहती थी, किंतु चित्रकूट में एक महात्मा की (जो वास्तव में राय कमलानन्द थे) चर्चा सुनकर वह उधर ही चल पड़ी। वह अपने मानसिक संघर्ष को लिये जब पहाड़ी पर चढ़ने की चेष्टा कर रही थी, उस समय पैर फिसल जाने के कारण पर्वत के गहन गर्त में गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गयी। प्रेमशंकर और डिप्टी ज्वालासिंह ने इरफान अली वकील और डॉ. प्रियनाथ चोपड़ा की सहायता से गाँव वालों की रक्षा की, यद्यपि मनोहर ने जेल ही में आत्मा हत्या कर ली थी। इतना ही, नहीं,

इरफान अली और डा. प्रियनाथ चोपड़ा जैसे आत्म-सेवियों के हृदय में प्रेमशंकर अपने स्नेह और त्याग से परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। इजाद हुसेन भी, जो पहले हिन्दू-मुस्लिम इत्तिहाद के बहाने अपना ही स्वार्थ साधते थे, प्रेमशंकर के व्यक्तित्त्व से प्रभावित हो सच्चाई और ईमान का मार्ग ग्रहण करते हैं। श्रद्धा, जो अपनी जड़ और मिथ्या धार्मिकता के कारण अपने पति से कटी-कटी रहती है, अब उनकी सेवा त्याग, संयम, साधना, परोपकार-व्यस्तता आदि को प्रायश्चित का असली रूप समझ कर पति के चरणों की सच्ची उपासिका बन सचमुच श्रद्धा और अनुराग की देवी बन जाती है। प्रभाशंकर का पुत्र दयाशंकर वैराग्य धारण कर लेता है। उन के दो अन्य पुत्र तेजशंकर और पद्मशंकर आसानी से समृद्ध हो जाने की आकांक्षा से प्रेरित हो भैरव-मंत्र जगाने के प्रयत्न में अपना-अपना अंत कर डालते हैं। मिथ्या विश्वास और कुशिक्षा ने दो जीवन-पुष्पों को अपने पैरों तले कुचल दिया। मायाशंकर प्रारम्भ से ही संतोष और त्याग की भावना लिए हुए था। प्रेमशंकर के संरक्षण में रहने के कारण उसके ये संस्कार और भी दृढ़ हो गये। अपने तिलकोत्सव के समय उसने जो भाषण दिया, उसमें दीनों के कल्याण, कर्त्तव्य-पालन, न्याय, धर्म, दुर्बलों के आँसुओं की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया था। उसने जमींदारी-उन्मूलन और सहकारिता के भाव व्यक्त किये थे। ज्ञानशंकर ने अपने जीवन भर की आशाओं पर पानी फिरते देख गंगा में डूबकर आत्महत्या कर ली।

अंत में प्रेमाश्रम के सदस्यों के साथ प्रेमशंकर और मायाशंकर दीनों की रक्षा और उनके जीवन को सुखमय बनाने में दत्तचित्त रहते हैं। राजसभा के सदस्यों के रूप में भी वे जन-सेवा की भावना से ही प्रेरित होते हैं। गाँव में रामराज्य की स्थापना कर वे दिव्य आनन्द का अनुभव करते हैं। विविध सुधारों, सफाई, शिक्षा, अच्छी कृषि के लिए अच्छे बीज की व्यवस्था की जाती है। वे प्रजा के ट्रस्टी बन जाते हैं।

मंगलसूत्र

प्रेमचंद द्वारा लिखित 'मंगलसूत्र' उपन्यास उनका अपूर्ण उपन्यास है। 1936 ई. में अपने अंतिम दिनों में प्रेमचंद 'मंगलसूत्र' उपन्यास लिख रहे थे किंतु वे उसे पूर्ण न सके। इस उपन्यास का अंतिम रूप क्या होता, यह तो कहना कठिन है तो भी ऐसी प्रतीत होता है कि वे इसकी रचना आत्मकथात्मक रूप में करना चाहते थे।

कथानक

'मंगलसूत्र' में एक साहित्यिक के जीवन की समस्या गयी है। इसी दृष्टि से यह उपन्यास प्रेमचंद्र के अन्य उपन्यासों से भिन्न है। इसके चार अध्यायों में देव साहित्य-साधना में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें कुछ व्यसन भी लगे हुए हैं। इन दोनों कारणों से उनका भौतिक जीवन तो सुखी नहीं होता। हाँ, उन्हें ख्याति अवश्य प्राप्त होती है। उनके दो पुत्र, वकील संतकुमार और मधुकुमार हैं। ज्येष्ठ पुत्र संतकुमार जीवन में सुख और ऐश्वर्य चाहता है और पिता की जीवनदर्शन का समर्थन नहीं करता। छोटा पुत्र उनके विचारों और आदर्शों से सहमत है। वह भी पिता की भाँति आदर्शवादी है। प्रेमचंद्र ने देवकुमार को जीवन के संघर्षों के फलस्वरूप स्वनिर्धारित आदर्श से विचलित होता हुआ सा चित्रित किया है। भविष्य में क्या होता, इसका अनुमान मात्र प्रेमचंद्र की पिछली कृतियों के आधार पर किया जा सकता है। देवकुमार की एक पुत्री पंकजा भी है, जिसका विवाह हो जाता है।

उपन्यास

उन दिनों नील नदी के तट पर बहुत से तपस्वी रहा करते थे। दोनों ही किनारों पर कितनी ही झोंपड़ियां थोड़ी-थोड़ी दूर पर बनी हुई थीं। तपस्वी लोग इन्हीं में एकान्तवास करते थे और जरूरत पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करते थे। इन्हीं झोंपड़ियों के बीच में जहाँ-तहाँ गिरजे बने हुए थे। प्रायः सभी गिरजाघरों पर सलीब का आकार दिखाई देता था। धर्मोत्सवों पर साधु-सन्त दूर-दूर से वहाँ आ जाते थे। नदी के किनारे जहां-तहां मठ भी थे। जहाँ तपस्वी लोग अकेले छोटी-छोटी गुफाओं में सिद्धि प्राप्त करने का यत्न करते थे।

यह सभी तपस्वी बड़े-बड़े कठिन व्रत धारण करते थे, केवल सूर्यास्त के बाद एक बार सूक्ष्म आहार करते। रोटी और नमक के सिवाय और किसी वस्तु का सेवन न करते थे। कितने ही तो समाधियों या कन्दराओं में पड़े रहते थे। सभी ब्रह्मचारी थे, सभी मिताहारी थे। वह ऊन का एक कुरता और कनटोप पहनते थे, रात को बहुत देर तक जागते और भजन करने के पीछे भूमि पर सो जाते थे। अपने पूर्वपुरुष के पापों का प्रायश्चित करने के लिए वह अपनी देह को भोगविलास ही से दूर नहीं रखते थे, वरन् उसकी इतनी रक्षा भी न करते थे जो वर्तमानकाल में अनिवार्य समझी जाती है। उनका विश्वास था कि देह को जितना

कष्ट दिया जाए, वह जितनी रुग्णावस्था में हो, उतनी ही आत्मा पवित्र होती है। उनके लिए कोढ़ और फोड़ों से उत्तम शृंगार की कोई वस्तु न थी।

इस तपोभूमि में कुछ लोग तो ध्यान और तप में जीवन को सफल करते थे, पर कुछ ऐसे लोग भी थे जो ताड़ की जटाओं को बट कर किसानों के लिए रस्सियां बनाते या फल के दिनों में कृषकों की सहायता करते थे। शहर के रहने वाले समझते थे कि यह चोरों और डाकुओं का गिरोह है, यह सब अरब के लुटेरों से मिलकर काफिलों को लूट लेते हैं। किन्तु यह भरम था। तपस्वी धन को तुच्छ समझते थे, आत्मोद्धार ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। उनके तेज की ज्योति आकाश को भी आलोकित कर देती थी।

स्वर्ग के दूत, युवकों या यात्रियों का वेश रखकर इन मठों में आते थे। इसी प्रकार राक्षस और दैत्य हब्शियों या पशुओं का रूप धरकर इस धर्माश्रम में तपस्वियों के बहकाने के लिए विचरा करते थे। जब ये भक्त गण अपने-अपने घड़े लेकर प्रातःकाल सागर की ओर पानी भरने जाते थे तो उन्हें राक्षसों और दैत्यों के पदचिह्न दिखाई देते थे। यह धर्माश्रम वास्तव में एक समरक्षेत्र था जहां नित्य और विशेषतः रात को स्वर्ग और नरक, धर्म और अधर्म में भीषण संग्राम होता रहता था। तपस्वी लोग स्वर्गदूतों तथा ईश्वर की सहायता से व्रत, ध्यान और तप से इन पिशाच सेनाओं के आघातों का निवारण करते थे। कभी इन्द्रियजनित वासनाएं उनके मर्मस्थल पर ऐसा अंकुश लगाती थीं कि वे पीड़ा से विकल होकर चीखने लगते थे और उनकी आर्तध्वनि वन पशुओं की गरज के साथ मिलकर तारों से भूषित आकाश तक गूंजने लगती थी। तब वही राक्षस और दैत्य मनोहर वेश धारण कर लेते थे, क्योंकि यद्यपि उनकी सूरत बहुत भयंकर होती है पर वह कभी-कभी सुन्दर रूप धर लिया करते हैं जिसमें उनकी पहचान न हो सके। तपस्वियों को अपनी कुटियों में वासनाओं के ऐसे दृश्य देखकर विस्मय होता था जिन पर उस समय धुरन्धर विलासियों का चित्त मुग्ध हो जाता। लेकिन सलीब की शरण में बैठे हुए तपस्वियों पर उनके प्रलोभनों का कुछ असर न होता था, और यह दुष्टात्माएं सूर्योदय होते ही अपना यथार्थ रूप धारण करके भाग जाती थीं। कोई उनसे पूछता तो कहते 'हम इसलिए रो रहे हैं कि तपस्वियों ने हमको मारकर भगा दिया है।'

धर्माश्रम के सिद्धपुरुषों का समस्त देश के दुर्जनों और नास्तिकों पर आतंक सा छाया हुआ था। कभी-कभी उनकी धर्मपरायणता बड़ा विकराल रूप धारण कर लेती थी। उन्हें धर्मस्मृतियों ने ईश्वरविमुख प्राणियों को दण्ड देने का

अधिकार प्रदान कर दिया था और जो कोई उनके कोप का भागी होता था उसे संसार की कोई शक्ति बचा न सकती थी। नगरों में, यहां तक कि इस्कन्द्रिया में भी, इन भीषण यन्त्रणाओं की अद्‌भुत दन्तकथाएं फैली हुई थीं। एक महात्मा ने कई दुष्टों को अपने सोटे से मारा, जमीन फट गयी और वह उसमें समा गये। अतः दुष्टजन, विशेषकर मदारी, विवाहित पादरी और वेश्याएं, इन तपस्वियों से थरथर कांपते थे।

इन सिद्धपुरुषों के योगबल के सामने वनजन्तु भी शीश झुकाते थे। जब कोई योगी मरणासन्न होता तो एक सिंह आकर पंजों से उसकी कब्र खोदता था। इससे योगी को मालूम होता था कि भगवान उसे बुला रहे हैं। वह तुरन्त जाकर अपने सहयोगियों के मुख चूमता था। तब कब्र में आकर समाधिस्थ हो जाता था।

अब तक इस तपाश्रम का प्रधान एण्तोनी था। पर अब उसकी अवस्था सौ वर्ष की हो चुकी थी। इसीलिए वह इस स्थान को त्याग कर अपने दो शिष्यों के साथ जिनके नाम मकर और अमात्य थे, एक पहाड़ी में विश्राम करने चला गया था। अब इस आश्रम में पापनाशी नाम के एक साधु से बड़ा और कोई महात्मा न था। उसके सत्कर्मों की कीर्ति दूरदूर फैली हुई थी और कई तपस्वी थे जिनके अनुयायियों की संख्या अधिक थी और जो अपने आश्रमों के शासन में अधिक कुशल थे। लेकिन पापनाशी व्रत और तप में सबसे बढ़ा हुआ था, यहां तक कि वह तीन तीन दिन अनशन व्रत रखता था रात को और प्रातःकाल अपने शरीर को बाणों से छेदता था और वह घण्टों भूमि पर मस्तक नवाये पड़ा रहता था।

उसके चौबीस शिष्यों ने अपनी अपनी कुटिया उसकी कुटी के आसपास बना ली थीं और योगक्रियाओं में उसी के अनुगामी थे। इन धर्मपुत्रों में ऐसे-ऐसे मनुष्य थे जिन्होंने वर्षों डकैतियां डाली थीं, जिनके हाथ रक्त से रंगे हुए थे, पर महात्मा पापनाशी के उपदेशों के वशीभूत होकर अब वह धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे और अपने पवित्र आचरणों से अपने सहवर्गियों को चकित कर देते थे। एक शिष्य, जो पहले हब्श देश की रानी का बावर्ची था, नित्य रोता रहता था। एक और शिष्य फलदा नाम का था जिसने पूरी बाइबिल कंठस्थ कर ली थी और वाणी में भी निपुण था। लेकिन जो शिष्य आत्मशुद्धि में इन सबसे बढ़कर था वह पॉल नाम का एक किसान युवक था। उसे लोग मूर्ख पॉल कहा करते थे, क्योंकि वह अत्यन्त सरल हृदय था। लोग उसकी भोली-भाली बातों पर हंसा करते थे, लेकिन ईश्वर की उस पर विशेष कृपादृष्टि थी। वह आत्मदर्शी और भविष्यवक्ता था। उसे इल्हाम हुआ करता था।

पापनाशी का जन्म स्थान इस्कन्द्रिया था। उसके माता-पिता ने उसे भौतिक विद्या की ऊंची शिक्षा दिलाई थी। उसने कवियों के शृंगार का आस्वादन किया था और यौवनकाल में ईश्वर के अनादित्व, बल्कि अस्तित्त्व पर भी दूसरों से वाद-विवाद किया करता था। इसके पश्चात् कुछ दिन तक उसने धनी पुरुषों के प्रथानुसार ऐन्द्रिय सुखभोग में व्यतीत किये, जिसे याद करके अब लज्जा और ग्लानि से उसको अत्यन्त पीड़ा होती थी। वह अपने सहचरों से कहा करता 'उन दिनों मुझ पर वासना का भूत सवार था।' इसका आशय यह कदापि न था कि उसने व्यभिचार किया था, बल्कि केवल इतना कि उसने स्वादिष्ट भोजन किया था और नाट्यशालाओं में तमाशा देखने जाया करता था। वास्तव में बीस वर्ष की अवस्था, तब उसने उस काल के साधारण मनुष्यों की भांति जीवन व्यतीत किया था। वही भोगलिप्सा अब उसके हृदय में कांटे के समान चुभा करती थी। दैवयोग से उन्हीं दिनों उसे मकर ऋषि के सदुपदेशों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसकी काया पलट हो गयी। सत्य उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गया, भाले के समान उसके हृदय में चुभ गया। बपतिस्मा लेने के बाद वह साल भर तक और भद्र पुरुषों में रहा, पुराने संस्कारों से मुक्त न हो सका। लेकिन एक दिन वह गिरजाघर में गया और वहां उपदेशक को यह पद गाते हुए सुना- 'यदि तू ईश्वरभक्ति का इच्छुक है तो जा, जो कुछ तेरे पास हो उसे बेच डाल और गरीबों को दे दे।' वह तुरन्त घर गया, अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर गरीबों को दान कर दी और धर्माश्रम में प्रविष्ट हो गया और दस साल तक संसार से विरक्त होकर वह अपने पापों का प्रायश्चित करता रहा।

एक दिन वह अपने नियमों के अनुसार उन दिनों का स्मरण कर रहा था, जब वह ईश्वर विमुख था और अपने दुष्कर्मों पर एकएक करके विचार कर रहा था। सहसा याद आया कि मैंने इस्कन्द्रिया की एक नाट्यशाला में थायस नाम की एक रूपवती नटी देखी थी। वह रमणी रंगशालाओं में नृत्य करते समय अंग-प्रत्यंगों की ऐसी मनोहर छवि दिखाती थी कि दर्शकों के हृदय में वासनाओं की तरंगें उठने लगती थीं। वह ऐसा थिरकती थी, ऐसे भाव बताती थी, लालसाओं का ऐसा नग्न चित्र खींचती थी कि सजीले युवक और धनी वृद्ध कामातुर होकर उसके गृहद्वार पर फूलों की मालाएं भेंट करने के लिए आते। थायस उसका सहर्ष स्वागत करती और उन्हें अपनी अंकस्थली में आश्रय देती। इस प्रकार वह केवल अपनी ही आत्मा का सर्वनाश न करती थी, वरन् दूसरों की आत्माओं का भी खून करती थी।

पापनाशी स्वयं उसके मायापाश में फंसते-फंसते रह गया था। वह कामतृष्णा से उन्मत्त होकर एक बार उसके द्वार तक चला गया था। लेकिन वारांगना के चौखट पर वह ठिठक गया, कुछ तो उठती हुई जवानी की स्वाभाविक कातरता के कारण और कुछ इस कारण कि उसकी जेब में रुपये न थे, क्योंकि उसकी माता इसका सदैव ध्यान रखती थी कि वह धन का अपव्यय न कर सके। ईश्वर ने इन्हीं दो साधनों द्वारा उसे पाप के अग्निकुण्ड में गिरने से बचा लिया। किन्तु पापनाशी ने इस असीम दया के लिए ईश्वर को धन्यवाद दियाय क्योंकि उस समय उसके ज्ञानचक्षु बन्द थे। वह न जानता था कि मैं मिथ्या आनन्दभोग की धुन में पड़ा हूं। अब अपनी एकान्त कुटी में उसने पवित्र सलीब के सामने मस्तक झुका दिया और योग के नियमों के अनुसार बहुत देर तक थायस का स्मरण करता रहा क्योंकि उसने मूर्खता और अन्धकार के दिनों में उसके चित्त को इन्द्रिय सुख-भोग की इच्छाओं से आन्दोलित किया था। कई घण्टे ध्यान में डूबे रहने के बाद थायस की स्पष्ट और सजीव मूर्ति उसके हृदय नेत्रों के आगे आ खड़ी हुई। अब भी उसकी रूप शोभा उतनी ही अनुपम थी जितनी उस समय जब उसने उसकी कुवासनाओं को उत्तेजित किया था। वह बड़ी कोमलता से गुलाब की सेज पर सिर झुकाये लेटी हुई थी। उसके कमल नेत्रों में एक विचित्र आर्द्रता, एक विलक्षण ज्योति थी। उसके नथुने फड़क रहे थे, अधर कली की भांति आधे खुले हुए थे और उसकी बांहें दो जलधाराओं के सदृश निर्मल और उज्ज्वल थीं। यह मूर्ति देखकर पापनाशी ने अपनी छाती पीटकर कहा-ष्भगवान तू साक्षी है कि मैं पापों को कितना घोर और घातक समझ रहा हूं।'

धीरे-धीरे इस मूर्ति का मुख विकृत होने लगा, उसके होंठ के दोनों कोने नीचे को झुककर उसकी अन्तर्वेदना को प्रकट करने लगे। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें सजल हो गयीं। उसका वक्ष उच्छ्वासों से आन्दोलित होने लगा मानों तूफान के पूर्व हवा सनसना रही हो! यह कुतूहल देखकर पापनाशी को मर्मवेदना होने लगी। भूमि पर सिर नवाकर उसने यों प्रार्थना की- 'करुणामय ! तूने हमारे अन्तःकरण को दया से परिपूरित कर दिया है, उसी भांति प्रभात के समय खेत हिमकणों से परिपूरित होते हैं। मैं तुझे नमस्कार करता हूं! तू धन्य है। मुझे शक्ति दे कि तेरे जीवों को तेरी दया की ज्योति समझाकर प्रेम करुं, क्योंकि संसार में सब कुछ अनित्य है, एक तू ही नित्य, अमर है। यदि इस अभागिनी स्त्री के प्रति मुझे चिन्ता है तो इसका कारण है कि वह तेरी ही रचना है। स्वर्ग के दूत भी

उस पर दयाभाव रखते हैं। भगवान, क्या यह तेरी ही ज्योति का प्रकाश नहीं है ? उसे इतनी शक्ति दे कि वह इस कुमारी को त्याग दे। तू दयासागर है, उसके पाप महाघोर, घृणित हैं और उनके कल्पनामात्र ही से मुझे रोमांच हो जाता है। लेकिन वह जितनी पापिष्ठा है, उतना ही मेरा चित्त उसके लिए व्यथित हो रहा है। मैं यह विचार करके व्यग्र हो जाता हूं कि नरक के दूत अन्तकाल तक उसे जलाते रहेंगे।'

वह यही प्रार्थना कर रहा था कि उसने अपने पैरों के पास एक गीदड़ को पड़े हुए देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसकी कुटी का द्वार बन्द था। ऐसा जान पड़ता था कि वह पशु उसके मनोगत विचारों को भांप रहा है, वह कुत्ते की भांति पूंछ हिला रहा था। पापनाशी ने तुरन्त सलीब का आकार बनाया और पशु लुप्त हो गया। उसे तब ज्ञात हुआ कि आज पहली बार राक्षस ने मेरी कुटी में प्रवेश किया। उसने चित्त शान्ति के लिए छोटी सी प्रार्थना की और फिर थायस का ध्यान करने लगा।

उसने अपने मन में निश्चय किया ? 'हरीच्छा से मैं अवश्य उसका उद्धार करुंगा।' तब उसने विश्राम किया।

दूसरे दिन ऊषा के साथ उसकी निद्रा भी खुली। उसने तुरन्त ईश वंदना की और पालम सन्त से मिलने गया, जिनका आश्रम वहां से कुछ दूर था। उसने सन्त महात्मा को अपने स्वभाव के अनुसार फ्रुल्ल चित्त से भूमि खोदते पाया। पालम बहुत वृद्ध थे। उन्होंने एक छोटी सी फुलवाड़ी लगा रखी थी। वन जन्तु आकर उनके हाथों को चाटते थे और पिशाचादि कभी उन्हें कष्ट न देते थे।

उन्होंने पापनाशी को देखकर नमस्कार किया।

पापनाशी ने उत्तर देते हुए कहा- 'भगवान तुम्हें शान्ति दे।'

पालम- 'तुम्हें भी भगवान शान्ति दे।' यह कहकर उन्होंने माथे का पसीना अपने कुरते की अस्तीन से पौंछा।

पापनाशी- 'बन्धुवर, जहां भगवान की चर्चा होती है वहां भगवान अवश्य वर्तमान रहते हैं। हमारा धर्म है कि अपने सम्भाषणों में भी ईश्वर की स्तुति ही किया करें। मैं इस समय ईश्वर की कीर्ति प्रसारित करने के लिए एक प्रस्ताव लेकर आपकी सेवा में उपस्थिति हुआ हूं।'

पालम- 'बन्धु पापनाशी, भगवान तुम्हारे प्रस्ताव को मेरे कोल्हू के बैलों की भांति सफल करे। वह नित्य प्रभात को मेरी वाटिका पर ओस बिन्दुओं के साथ अपनी दया की वर्षा करता है और उसके प्रदान किए हुए खोरों और

खरबूजों का आस्वादन करके, मैं उसके असीम वात्सल्य की जय जयकार मानता हूं। उससे यही याचना करनी चाहिए कि हमें अपनी शान्ति की छाया में रखे क्योंकि मन को उद्विग्न करने वाले भीषण दुरावेगों से अधिक भयंकर और कोई वस्तु नहीं है। जब यह मनोवेग जागृत हो जाते हैं तो हमारी दशा मतवालों की सी हो जाती है, हमारे पैर लड़खड़ाने लगते हैं और ऐसा जान पड़ता है कि अब औंधे मुँह गिरे ! कभी-कभी इन मनोवेगों के वशीभूत होकर हम घातक सुखभोग में मग्न हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आत्मवेदना और इन्द्रियों की अशांति हमें नैराश्यनद में डुबा देती हैं, जो सुख भोग से कहीं सर्वनाशक है। बन्धुवर, मैं एक महान् पापी प्राणी हूं, लेकिन मुझे अपने दीर्घ जीवनकाल में यह अनुभव हुआ है कि योगी के लिए इस मलिनता से बड़ा और कोई शत्रु नहीं है। इससे मेरा अभिप्राय उस असाध्य उदासीनता और क्षोभ से है, जो कुहरे की भांति आत्मा पर परदा डाले रहती है और ईश्वर की ज्योति को आत्मा तक नहीं पहुंचने देती। मुक्तिमार्ग में इससे बड़ी और कोई बाधा नहीं है, और असुरराज की सबसे बड़ी जीत यही है कि वह एक साधु पुरुष के हृदय में क्षुब्ध और मलिन विचार अंकुरित कर दे। यदि वह हमारे ऊपर मनोहर प्रलोभनों ही से आक्रमण करता तो बहुत भय की बात न थी। पर शोक ! वह हमें क्षुब्ध करके बाजी मार ले जाता है। पिता एण्तोनी को कभी किसी ने उदास या दु:खी नहीं देखा। उनका मुखड़ा नित्य फूल के समान खिला रहता था। उनके मधुर मुसकान ही से भक्तों के चित्त को शान्ति मिलती थी। अपने शिष्यों में कितने प्रसन्न मुस्कान चित्त रहते थे। उनकी मुखकान्ति कभी मनोमालिन्य से धुंधली नहीं हुई। लेकिन हां, तुम किसी प्रस्ताव की चर्चा कर रहे थे'?

पापनाशी- 'बन्धु पालम, मेरे प्रस्ताव का उद्देश्य केवल ईश्वर के माहात्म्य को उज्ज्वल करना है। मुझे अपने सद्परामर्श से अनुगृहीत कीजिए, क्योंकि आप सर्वज्ञ है और पाप की वायु ने कभी आपको स्पर्श नहीं किया।'

पालम- 'बन्धु पापनाशी, मैं इस योग्य भी नहीं हूं कि तुम्हारे चरणों की रज भी माथे पर लगाऊं और मेरे पापों की गणना मरुस्थल के बालू कणों से भी अधिक है। लेकिन मैं वृद्ध हूं और मुझे जो अनुभव है, उससे तुम्हारी सहर्ष सेवा करुंगा।'

पापनाशी- 'तो फिर आपसे स्पष्ट कह देने में कोई संकोच नहीं है कि मैं इस्कन्द्रिय में रहने वाली थायस नाम की एक पवित्र स्त्री की अधोगति से बहुत

दु:खी हूं। वह समस्त नगर के लिए कलंक है और अपने साथ कितनी ही आत्माओं का सर्वनाश कर रही है।'

पालम- 'बन्धु पापनाशी, यह ऐसी व्यवस्था है जिस पर हम जितने आंसू बहायें, कम हैं। भद्र श्रेणी में कितनी ही रमणियों का जीवन ऐसा ही पापमय है। लेकिन इस दुरवस्था के लिए तुमने कोई निवारण विधि सोची है'?

पापनाशी- 'बन्धु पालम, मैं इस्कन्द्रिया जाऊंगा, इस वेश्या की तलाश करुंगा और ईश्वर की सहायता से उसका उद्धार करुंगा। यही मेरा संकल्प है। आप इसे उचित समझते हैं'?

पालम- 'प्रिय बन्धु, मैं एक अधम प्राणी हूं किन्तु हमारे पूज्य गुरु एण्तोनी का कथन था कि मनुष्य को अपना स्थान छोड़कर कहीं और जाने के लिए उतावली न करनी चाहिए।'

पापनाशी- 'पूज्य बन्धु, क्या आपको मेरा प्रस्ताव पसन्द नहीं है'?

पालम- 'प्रिय पापनाशी, ईश्वर न करे कि मैं अपने बन्धु के विशुद्ध भावों पर शंका करुं, लेकिन हमारे श्रद्धेय गुरु एण्तोनी का यह भी कथन था कि जैसे मछलियां सूखी भूमि पर मर जाती हैं, वही दशा उन साधुओं की होती है, जो अपनी कुटी छोड़कर संसार के प्राणियों से मिलते जुलते हैं। वहां भलाई की कोई आशा नहीं।'

यह कहकर संत पालम ने फिर कुदाल हाथ में ली और धरती गोड़ने लगे। वह फल से लदे हुए एक अंजीर के वृक्ष की जड़ों पर मिट्टी चढ़ा रहे थे। वह कुदाल चला ही रहे थे कि झाड़ियों में सनसनाहट हुई और एक हिरन बाग के बाड़े के ऊपर से कूदकर अन्दर आ गया। वह सहमा हुआ था, उसकी कोमल टांगें कांप रही थीं। वह सन्त पालम के पास आया और अपना मस्तक उनकी छाती पर रख दिया।

पालम ने कहा- 'ईश्वर धन्य है जिसने इस सुन्दर वनजन्तु की सृष्टि की।'

इसके पश्चात् पालम सन्त अपने झोंपड़े में चले गये। हिरन भी उनके पीछे पीछे चला। सन्त ने तब ज्वार की रोटी निकाली और हिरन को अपने हाथों से खिलायी।

पापनाशी कुछ देर तक विचार में मग्न खड़ा रहा। उसकी आंखें अपने पैरों के पास पड़े हुए पत्थरों पर जमी हुई थीं। तब वह पालम सन्त की बातों पर विचार करता हुआ धीरे धीरे अपनी कुटी की ओर चला। उसके मन में इस समय भीषण संग्राम हो रहा था।

उसने सोचा–सन्त पालम की सलाह अच्छी मालूम होती है। वह दूरदर्शी पुरुष हैं। उन्हें मेरे प्रस्ताव के औचित्य पर संदेह है, तथापि थायस को घात पिशाचों के हाथों में छोड़ देना घोर निर्दयता होगी। ईश्वर मुझे प्रकाश और बुद्धि दे।

चलते–चलते उसने एक तीतर को जाल में फंसे हुए देखा जो किसी शिकारी ने बिछा रखा था। यह तीतरी मालूम होती थी, क्योंकि उसने एक क्षण में नर को जाल के पास उड़कर और जाल के फन्दे को चोंच से काटते देखा, यहां तक कि जाल में तीतरी के निकलने भर का छिद्र हो गया। योगी ने घटना को विचारपूर्ण नेत्रों से देखा और अपनी ज्ञानशक्ति से सहज में इसका आध्यात्मिक आशय समझ लिया। तीतरी के रूप में थामस थी, जो पापजाल में फंसी हुई थी, और जैसे तीतर ने रस्सी का जाल काटकर उसे मुक्त कर दिया था, वह भी अपने योगबल और सदुपदेश से उन अदृश्य बंधनों को काट सकता था जिनमें थामस फंसी हुई थी। उसे निश्चय हो गया कि ईश्वर ने इस रीति से मुझे परामर्श दिया है। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया। उसका पूर्व संकल्प दृढ़ हो गया। लेकिन फिर जो देखा, नर की टांग उसी जाल में फंसी हुई थी जिसे काटकर उसने मादा को निवृत्त किया था तो वह फिर भ्रम में पड़ गया।

वह सारी रात करवटें बदलता रहा। उषाकाल के समय उसने एक स्वप्न देखा, थायस की मूर्ति फिर उसके सम्मुख उपस्थित हुई। उसके मुखचन्द्र पर कलुषित विलास की आभा न थी, न वह अपने स्वभाव के अनुसार रत्नजटित वस्त्र पहने हुए थी। उसका शरीर एक लम्बी चौड़ी चादर से ढ़का हुआ था, जिससे उसका मुँह भी छिप गया था केवल दो आंखें दिखाई दे रही थीं, जिनमें से आंसू बह रहे थे।

यह स्वप्नदृश्य देखकर पापनाशी शोक से विह्वल हो रोने लगा और यह विश्वास करके कि यह दैवी आदेश है, उसका विकल्प शान्त हो गया। वह तुरन्त उठ बैठा, जरीब हाथ में ली जो ईसाई धर्म का एक चिह्न था। कुटी के बाहर निकला, सावधानी से द्वार बन्द किया, जिसमें वनजन्तु और पक्षी अन्दर जाकर ईश्वर ग्रन्थ को गन्दा न कर दें जो उसके सिरहाने रखा हुआ था। तब उसने अपने प्रधान शिष्य फलदा को बुलाया और उसे शेष तेईस शिष्यों के निरीक्षण में छोड़कर, केवल एक ढ़ीला ढ़ाला चोगा पहने हुए नील नदी की ओर प्रस्थान किया। उसका विचार था कि लाइबिया होता हुआ मकदूनिया नरेश (सिकन्दर) के बसाये हुए नगर में पहुंच जाऊं। वह भूख, प्यास और थकान की कुछ परवाह

न करते हुए प्रात:काल से सूर्यास्त तक चलता रहा। जब वह नदी के समीप पहुंचा तो सूर्य क्षितिज की गोद में आश्रय ले चुका था और नदी का रक्तजल कंचन और अग्नि के पहाड़ों के बीच में लहरें मार रहा था।

वह नदी के तटवर्ती मार्ग से होता हुआ चला। जब भूख लगती किसी झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा होकर ईश्वर के नाम पर कुछ मांग लेता। तिरस्कारों, उपेक्षाओं और कटुवचनों को प्रसन्नता से शिरोधार्य करता था। साधु को किसी से अमर्ष नहीं होता। उसे न डाकुओं का भय था, न वन के जन्तुओं का, लेकिन जब किसी गांव या नगर के समीप पहुंचता तो कतराकर निकल जाता। वह डरता था कि कहीं बालवृन्द उसे आंख-मिचौली खेलते हुए न मिल जाऐं अथवा किसी कुएं पर पानी भरने वाली रमणियों से सामना न हो जाए जो घड़ों को उतारकर उससे हास-परिहास कर बैठें। योगी के लिए यह सभी शंका की बातें हैं, न जाने कब भूत-पिशाच उसके कार्य में विघ्न डाल दें। उसे धर्मग्रन्थों में यह पढ़कर भी शंका होती है कि भगवान नगरों की यात्रा करते थे और अपने शिष्यों के साथ भोजन करते थे। योगियों की आश्रमवाटिका के पुष्प जितने सुन्दर हैं, उतने ही कोमल भी होते हैं, यहां तक कि सांसारिक व्यवहार का एक झोंका भी उन्हें झुलसा सकता है, उनकी मनोरम शोभा को नष्ट कर सकता है। इन्हीं कारणों से पापनाशी नगरों और बस्तियों से अलग अलग रहता था कि अपने स्वजातीय भाईयों को देखकर उसका चित्त उनकी ओर आकर्षित न हो जाए।

वह निर्जन मार्गों पर चलता था। संध्या समय जब पक्षियों का मधुर कलरव सुनाई देता और समीर के मन्द झोंके आने लगते तो अपने कनटोप को आँखों पर खींच लेता कि उस पर प्रकृति सौन्दर्य का जादू न चल जाए। इसके प्रतिकूल भारतीय ऋषि महात्मा प्रकृति सौन्दर्य के रसिक होते थे। एक सप्ताह की यात्रा के बाद वह सिलसिल नाम के स्थान पर पहुंचा। वहां नील नदी एक संकरी घाटी में होकर बहती है और उसके तट पर पर्वत श्रेणी की दुहरी मेंड़ सी बनी हुई है। इसी स्थान पर मिस्त्र निवासी अपने पिशाच पूजा के दिनों में मूर्तियां अंकित करते थे। पापनाशी को एक बृहदाकार 'स्फिटिक' ठोस पत्थर का बना हुआ दिखाई दिया। इस भय से कि इस प्रतिमा में अब भी पैशाचिक विभूतियां संचित न हों, पापनाशी ने सलीब का चिह्न बनाया और प्रभु मसीह का स्मरण किया। तत्क्षण उसने प्रतिमा के एक कान में से एक चमगादड़ को उड़कर भागते देखा। पापनाशी को विश्वास हो गया कि मैंने उस पिशाच को भगा दिया जो शताब्दियों से इन प्रतिमा में अड्डा जमाये हुए था। उसका धर्मोत्साह बढ़ा, उसने एक पत्थर

उठाकर प्रतिमा के मुख पर मारा। चोट लगते ही प्रतिमा का मुख इतना उदास हो गया कि पापनाशी को उस पर दया आ गयी। उसने उसे सम्बोधित करके कहा– 'हे प्रेत, तू भी उन प्रेतों की भांति प्रभु पर ईमान ला जिन्हें प्रातः स्मरणीय एण्तोनी ने वन में देखा था, और मैं ईश्वर, उसके पुत्र और अलख ज्योति के नाम पर तेरे उद्घार करुंगा।'

यह वाक्य समाप्त होते ही सिंफक्स के नेत्रों में अग्निज्योति परस्फुटित हुई, उसकी पलकें कांपने लगीं और उसके पाषाणमुख से 'मसीह' की ध्वनि निकली, मानो पापनाशी के शब्द प्रतिध्वनित हो गये हों। अतएव पापनाशी ने दाहिना हाथ उठाकर उस मूर्ति को आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार पाषाण हृदय में भक्ति का बीज आरोपित करके पापनाशी ने अपनी राह ली। थोड़ी देर के बाद घाटी चौड़ी हो गयी। वहां किसी बड़े नगर के अवशिष्ट चिह्न दिखाई दिये। बचे हुए मन्दिर जिन खम्भों पर अवलम्बित थे, वास्तव के उन बड़ी बड़ी पाषाण मूर्तियों ने ईश्वरीय प्रेरणा से पापनाशी पर एक लम्बी निगाह डाली। वह भय से कांप उठा। इस प्रकार वह सत्रह दिन तक चलता रहा, क्षुधा से व्याकुल होता तो वनस्पतियां उखाड़ कर खा लेता और रात को किसी भवन के खंडहर में, जंगली बिल्लियों और चूहों के बीच में सो रहता। रात को ऐसी स्त्रियां भी दिखायी देती थीं जिनके पैरों की जगह कांटेदार पूंछ थी। पापनाशी को मालूम था कि यह नारकीय स्त्रियां हैं और वह सलीब के चिह्न बनाकर उन्हें भगा देता था।

अठारहवें दिन पापनाशी को बस्ती से बहुत दूर एक दरिद्र झोंपड़ी दिखाई दी। वह खजूर के पत्तियों की थी और उसका आधा भाग बालू के नीचे दबा हुआ था। उसे आशा हुई कि इनमें अवश्य कोई सन्त रहता होगा। उसने निकट आकर एक बिल के रास्ते अन्दर झांका (उसमें द्वार न थे) तो एक घड़ा, प्याज का एक गट्ठा और सूखी पत्तियों का बिछावन दिखाई दिया। उसने विचार किया, यह अवश्य किसी तपस्वी की कुटिया है, और उनके शीघ्र ही दर्शन होंगे, हम दोनों एक दूसरे के प्रति शुभकामनासूचक पवित्र शब्दों का उच्चारण करेंगे। कदाचित ईश्वर अपने किसी कौए द्वारा रोटी का एक टुकड़ा हमारे पास भेज देगा और हम दोनों मिलकर भोजन करेंगे।

मन में यह बातें सोचता हुआ उसने सन्त को खोजने के लिए कुटिया की परिक्रमा की। एक सौ पग भी न चला होगा कि उसे नदी के तट पर एक मनुष्य पाल्थी मारे बैठा दिखाई दिया। वह नग्न था। उसके सिर और दाढ़ी के बाल सन

हो गये थे और शरीर ईंट से भी ज्यादा लाल था। पापनाशी ने साधुओं के प्रचलित शब्दों में उसका अभिवादन किया– 'बन्धु, भगवान तुम्हें शान्ति दे, तुम एक दिन स्वर्ग के आनन्द लाभ करो।'

पर उस वृद्ध पुरुष ने इसका कुछ उत्तर न दिया, अचल बैठा रहा। उसने मानो कुछ सुना ही नहीं। पापनाशी ने समझा कि वह ध्यान में मग्न है। वह हाथ बांधकर उकडूं बैठ गया और सूर्यास्त तक ईश प्रार्थना करता रहा। जब अब भी वह वृद्ध पुरुष मूर्तिवत बैठा रहा तो उसने कहा– 'पूज्य पिता, अगर आपकी समाधि टूट गयी है तो मुझे प्रभु मसीह के नाम पर आशीर्वाद दीजिए।'

वृद्ध पुरुष ने उसकी ओर बिना ताके ही उत्तर दिया–

'पथिक, मैं तुम्हारी बात नहीं समझा और न प्रभु मसीह को ही जानता हूं।'

पापनाशी ने विस्मित होकर कहा– 'अरे जिसके प्रति ऋषियों ने भविष्यवाणी की, जिसके नाम पर लाखों आत्माएं बलिदान हो गयीं, जिसकी सीजर ने भी पूजा की और जिसका जयघोष सिलसिली की प्रतिमा ने अभी–अभी किया है, क्या उस प्रभु मसीह के नाम से भी तुम परिचित नहीं हो ? क्या यह सम्भव है'?

वृद्ध– 'हां मित्रवर, यह सम्भव है, और यदि संसार में कोई वस्तु निश्चित होती तो निश्चित भी होता !'

पापनाशी उस पुरुष की अज्ञानावस्था पर बहुत विस्मित और दु:खी हुआ। बोला– 'यदि तुम प्रभु मसीह को नहीं जानते तो तुम्हारा धर्म कर्म सब व्यर्थ है, तुम कभी अनन्तपद नहीं प्राप्त कर सकते।'

वुद्ध– 'कर्म करना, या कर्म से हटना दोनों ही व्यर्थ हैं। हमारे जीवन और मरण में कोई भेद नहीं।'

पापनाशी– 'क्या, क्या? क्या तुम अनन्त जीवन के आकांक्षी नहीं हो ? लेकिन तुम तो तपस्वियों की भांति वन्यकुटी में रहते हो'?

'हां, ऐसा जान पड़ता है।'

'क्या मैं तुम्हें नग्न और विरत नहीं देखता'?

'हां, ऐसा जान पड़ता है।'

'क्या तुम कन्दमूल नहीं खाते और इच्छाओं का दमन नहीं करते'?

'हां, ऐसा जान पड़ता है।'

'क्या तुमने संसार के मायामोह को नहीं त्याग दिया है'?

'हां, ऐसा जान पड़ता है। मैंने उन मिथ्या वस्तुओं को त्याग दिया है, जिन पर संसार के प्राणी जान देते हैं।'

'तुम मेरी भांति एकान्तसेवी, त्यागी और शुद्धाचरण हो। किन्तु मेरी भांति ईश्वर की भक्ति और अनन्त सुख की अभिलाषा से यह व्रत नहीं धारण किया है। अगर तुम्हें प्रभु मसीह पर विश्वास नहीं है तो तुम क्यों सात्विक बने हुए हो? अगर तुम्हें स्वर्ग के अनन्त सुख की अभिलाषा नहीं है तो संसार के पदार्थों को क्यों नहीं भोगते'?

वृद्ध पुरुष ने गम्भीर भाव से जवाब दिया- 'मित्र, मैंने संसार की उत्तम वस्तुओं का त्याग नहीं किया है और मुझे इसका गर्व है कि मैंने जो जीवन पथ ग्रहण किया है वह सामान्तयः सन्तोषजनक है, यद्यपि यथार्थ तो यह है कि संसार की उत्तम या निकृष्ट, भले या बुरे जीवन का भेद ही मिथ्या है। कोई वस्तु स्वतः भली या बुरी, सत्य या असत्य, हानिकर या लाभकर, सुखमय या दुःखमय नहीं होती। हमारा विचार ही वस्तुओं को इन गुणों में आभूषित करता है, उसी भांति जैसे नमक भोजन को स्वाद प्रदान करता है।'

पापनाशी ने अपवाद किया- 'तो तुम्हारे मतानुसार संसार में कोई वस्तु स्थायी नहीं है ? तुम उस थके हुए कुत्ते की भांति हो, जो कीचड़ में पड़ा सो रहा है- अज्ञान के अन्धकार में अपना जीवन नष्ट कर रहे हो। तुम प्रतिमावादियों से भी गये गुजरे हो।'

'मित्र, कुत्तों और ऋषियों का अपमान करना समान ही व्यर्थ है। कुत्ते क्या हैं, हम यह नहीं जानते। हमको किसी वस्तु का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं।'

'तो क्या तुम भ्रांतिवादियों में हो ? क्या तुम उस निबुद्धि, कर्महीन सम्प्रदाय में हो, जो सूर्य के प्रकाश में और रात्रि के अन्धकार में कोई भेद नहीं कर सकते'?

'हां मित्र, मैं वास्तव में भ्रमवादी हूं। मुझे इस सम्प्रदाय में शान्ति मिलती है, चाहे तुम्हें हास्यास्पद जान पड़ता हो। क्योंकि एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेती है। इस विशाल मीनारों ही को देखो। प्रभात के प्रकाश में यह केशर के कंगूरों से देख पड़ते हैं। सन्ध्या समय सूर्य की ज्योति दूसरी ओर पड़ती है और काले-काले त्रिभुजों के सदृश दिखाई देते हैं। यथार्थ में किस रंग के हैं, इसका निश्चय कौन करेगा ? बादलों ही को देखो। वह कभी अपनी दमक से कुन्दन को जलाते हैं, कभी अपनी कालिमा से अन्धकार को मात करते हैं। विश्व के सिवाय और कौन ऐसा निपुण है, जो उनके विविध आवरणों की छाया उतार सके ? कौन कह सकता है कि वास्तव में इस मेघसमूह का क्या रंग है ? सूर्य मुझे ज्योतिर्मय दीखता है, किन्तु मैं उसके

तत्त्व को नहीं जानता। मैं आग को जलते हुए देखता हूं, पर नहीं जानता कि कैसे जलती है और क्यों जलती है ? मित्रवर, तुम व्यर्थ मेरी उपेक्षा करते हो। लेकिन मुझे इसकी भी चिन्ता नहीं कि कोई मुझे क्या समझता है, मेरा मान करता है या निन्दा।'

पापनाशी ने फिर शंका की- 'अच्छा एक बात और बता दो। तुम इस निर्जन वन में प्याज और छुहारे खाकर जीवन व्यतीत करते हो। तुम इतना कष्ट क्यों भोगते हो। तुम्हारे ही समान मैं भी इन्द्रियों का दमन करता हूं और एकान्त में रहता हूं। लेकिन मैं यह सब कुछ ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, स्वर्गीय आनन्द भोगने के लिए करता हूं। यह एक मार्जनीय उद्देश्य है, परलोक सुख के लिए ही इस लोक में कष्ट उठाना बुद्धिसंगत है। इसके प्रतिकूल व्यर्थ बिना किसी उद्देश्य के संयम और व्रत का पालन करना, तपस्या से शरीर और रक्त को घुलाना निरी मूर्खता है। अगर मुझे विश्वास न होता- हे अनादि ज्योति, इस दुर्वचन के लिए क्षमा कर- अगर मुझे उस सत्य पर विश्वास है, जिसका ईश्वर ने ऋषियों द्वारा उपदेश किया है, जिसका उसके परमप्रिय पुत्र ने स्वयं आचरण किया है, जिसकी धर्म सभाओं ने और आत्मसमर्पण करने वाले महान् पुरुषों ने साक्षी दी है- अगर मुझे पूर्ण विश्वास न होता कि आत्मा की मुक्ति के लिए शारीरिक संयम और निग्रह परमावश्यक है, यदि मैं भी तुम्हारी ही तरह अज्ञेय विषयों से अनभिज्ञ होता, तो मैं तुरन्त सांसारिक मनुष्यों में आकर मिल जाता, धनोपार्जन करता, संसार के सुखी पुरुषों की भांति सुखभोग करता और विलासदेवी के पुजारियों से कहता- आओ मेरे मित्रो, मद के प्याले भर-भर कर पिलाओ, फूलों के सेज बिछाओ, इत्र और फुलेल की नदियां बहा दो। लेकिन तुम कितने बड़े मूर्ख हो कि व्यर्थ ही इन सुखों को त्याग रहे हो, तुम बिना किसी लाभ की आशा के यह सब कष्ट उठाते हो। देते हो, मगर पाने की आशा नहीं रखते और नकल करते हो हम तपस्वियों की, जैसे अबोध बन्दर दीवार पर रंग पोतकर अपने मन में समझता है कि मैं चित्रकार हो गया। इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है'?

वृद्ध ने सहिष्णुता से उत्तर दिया- 'मित्र, कीचड़ में सोने वाले कुत्ते और अबोध बन्दर का जवाब ही क्या'?

पापनाशी का उद्देश्य केवल इस वृद्ध पुरुष को ईश्वर का भक्त बनाना था। उसकी शान्तिवृत्ति पर वह लज्जित हो गया। उसका क्रोध उड़ गया। बड़ी नम्रता से क्षमा प्रार्थना की- 'मित्रवर, अगर मेरा धर्मोत्साह औचित्य की सीमा से बाहर

हो गया है तो मुझे क्षमा करो। ईश्वर साक्षी है कि मुझे तुमसे नहीं, केवल तुम्हारी भ्रान्ति से घृणा है ! तुमको इस अन्धकार में देखकर मुझे हार्दिक वेदना होती है, और तुम्हारे उद्‌गार की चिन्ता मेरे रोम-रोम में व्याप्त हो रही है। तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, मैं तुम्हारी उक्तियों का खण्डन करने के लिए उत्सुक हूं।'

वृद्ध पुरुष ने शान्तिपूर्वक कहा- 'मेरे लिए बोलना या चुप रहना एक ही बात है। तुम पूछते हो, इसलिए सुनो- जिन कारणों से मैंने वह सात्विक जीवन ग्रहण किया है। लेकिन मैं तुमसे इनका प्रतिवाद नहीं सुनना चाहता। मुझे तुम्हारी वेदना, शान्ति की कोई परवाह नहीं, और न इसकी परवाह है कि तुम मुझे क्या समझते हो। मुझे न प्रेम है न घृणा। बुद्धिमान पुरुष को किसी के प्रति ममत्व या द्वेष न होना चाहिए। लेकिन तुमने जिज्ञासा की है, उत्तर देना मेरा कर्त्तव्य है। सुनो, मेरा नाम टिमाक्लीज है। मेरे माता-पिता धनी सौदागर थे। हमारे यहां नौकाओं का व्यापार होता था। मेरा पिता सिकन्दर के समान चतुर और कार्यकुशल था, पर वह उतना लोभी न था। मेरे दो भाई थे। वह भी जहाजों ही का व्यापार करते थे। मुझे विद्या का व्यसन था। मेरे बड़े भाई को पिताजी ने एक धनवान युवती से विवाह करने पर बाध्य किया, लेकिन मेरे भाई शीघ्र ही उससे असन्तुष्ट हो गये। उनका चित्त अस्थिर हो गया। इसी बीच में मेरे छोटे भाई का उस स्त्री से कुलषित सम्बन्ध हो गया। लेकिन वह स्त्री दोनों भाइयों में किसी को भी न चाहती थी। उसे एक गवैये से प्रेम था। एक दिन भेद खुल गया। दोनों भाइयों ने गवैये का वध कर डाला। मेरी भावज शोक से अव्यवस्थित चित्त हो गयी। यह तीनों अभागे प्राणी बुद्धि को वासनाओं की बलिदेवी पर चढ़ाकर शहर की गलियों में फिरने लगे। नंगे, सिर के बाल बाये, मुँह से फिचकुर बहाते, कुत्ते की भांति चिल्लाते रहते थे। लड़के उन पर पत्थर फेंकते और उन पर कुत्ते दौड़ाते। अन्त में तीनों मर गये और मेरे पिता ने अपने ही हाथों से उन तीनों को कब्र में सुलाया। पिताजी को भी इतना शोक हुआ कि उनका दाना-पानी छूट गया और वह अपरिमित धन रहते हुए भी भूख से तड़प-तड़पकर परलोक सिधारे। मैं एक विपुल सम्पति का वारिस हो गया। लेकिन घर वालों की दशा देखकर मेरा चित्त संसार से विरक्त हो गया था। मैंने उस सम्पत्ति को देशाटन में व्यय करने का निश्चय किया। इटली, यूनान, अफ्रीका आदि देशों की यात्रा की, पर एक प्राणी भी ऐसा न मिला जो सुखी या ज्ञानी हो। मैंने इस्कन्द्रिया और एथेन्स में दर्शन का अध्ययन किया और उसके अपवादों को सुनते मेरे कान बहरे हो गये। निदान देश-विदेश घूमता हुआ मैं भारतवर्ष में जा पहुंचा और वहां गंगातट पर मुझे एक

नग्न पुरुष के दर्शन हुए जो वहीं तीस वर्षों से मूर्ति की भांति निश्चल पद्मासन लगाये बैठा हुआ था। उसके तृणवत शरीर पर लताएं चढ़ गयी थीं और उसकी जटाओं में चिड़ियों ने घोंसले बना लिये थे, फिर भी वह जीवित था। उसे देखकर मुझे अपने दोनों भाइयों की, भावज की, गवैये की, पिता की याद आयी और तब मुझे ज्ञात हुआ कि यही एक ज्ञानी पुरुष है। मेरे मन में विचार उठा कि मनुष्यों के दु:ख के तीन कारण होते हैं। या तो वह वस्तु नहीं मिलती जिसकी उन्हें अभिलाषा होती है अथवा उसे पाकर उन्हें उसके हाथ से निकल जाने का भय होता है अथवा जिस चीज को वह बुरा समझते हैं उसका उन्हें सहन करना पड़ता है। इन विचारों को चित्त से निकाल दो और सारे दु:ख आप-ही-आप शांत हो जाएगें। संसार के श्रेष्ठ पदार्थों का परित्याग कर दूंगा और उसी भारतीय योगी की भांति मौन और निश्चल रहूंगा।'

पापनाशी ने इस कथन को ध्यान से सुना और तब बोला- 'टिमो, मैं स्वीकार करता हूं कि तुम्हारा कथन बिल्कुल अर्थशून्य नहीं है। संसार की धनसम्पत्ति को तुच्छ समझना बुद्धिमानों का काम है। लेकिन अपने अनन्त सुख की उपेक्षा करना परले सिरे की नादानी है। इससे ईश्वर के क्रोध की आशंका है। मुझे तुम्हारे अज्ञान पर बड़ा दु:ख है और मैं सत्य का उपदेश करुंगा जिसमें तुमको उसके अस्तित्त्व का विश्वास हो जाए और तुम आज्ञाकारी बालक के समान उसकी आज्ञा पालन करो।'

टिमाक्लीज ने बात काटकर कहा- 'नहीं नहीं, मेरे सिर अपने धर्म सिद्धान्तों का बोझ मत लादो। इस भूल में न पड़ो कि तुम मुझे अपने विचारों के अनुकूल बना सकोगे। यह तर्क-वितर्क सब मिथ्या है। कोई मत न रखना ही मेरा मत है। किसी सम्प्रदाय में न होना ही मेरा सम्प्रदाय है। मुझे कोई दु:ख नहीं, इसलिए कि मुझे किसी वस्तु की ममता नहीं। अपनी राह जाओ, और मुझे इस उदासीनावस्था से निकालने की चेष्टा न करो। मैंने बहुत कष्ट झेले हैं और यह दशा ठण्डे जल से स्नान करने की भांति सुखकर प्रतीत हो रही है।'

पापनाशी को मानव चरित्र का पूरा ज्ञान था। वह समझ गया कि इस मनुष्य पर ईश्वर की कृपादृष्टि नहीं हुई है और उसकी आत्मा के उद्धार का समय अभी दूर है। उसने टिमाक्लीज का खण्डन न किया कि कहीं उसकी उद्धारक शक्ति घातक न बन जाए क्योंकि विधर्मियों से शास्त्रार्थ करने में कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि उनके उद्धार के साधन उनके अपकार के यन्त्र बन जाते हैं। अतएव जिन्हें सद्ज्ञान प्राप्त है। उन्हें बड़ी चतुराई से उसका प्रचार करना चाहिए। उसने

टिमाक्लीज को नमस्कार किया और एक लम्बी सांस खींचकर रात ही को फिर यात्रा पर चल पड़ा।

सूर्योदय हुआ तो उसने जलपक्षियों को नदी के किनारे एक पैर पर खड़े देखा। उनकी पीली और गुलाबी गर्दनों को प्रतिबिम्ब जल में दिखाई देता था। कोमल बेंत वृक्ष अपनी हरी-हरी पत्तियों को जल पर फैलाए हुए थे। स्वच्छ आकाश में सारसों का समूह त्रिभुज के आकार में उड़ रहा था और झाड़ियों में छिपे हुए बगुलों की आवाज सुनाई देती थी। जहां तक निगाह जाती थी नदी का हरा जल हिलकोरें मार रहा था। उजले पाल वाली नौकाएं चिड़ियों की भांति तैर रही थीं, और किनारों पर जहां-तहां श्वेत भवन जगमगा रहे थे। तटों पर हल्का कुहरा छाया हुआ था और द्वीपों की आड़ से जो, खजूर, फूल और फल के वृक्षों के झुरमुट निकले हुए थे उनमें से बत्तख, लालसर, हारिल आदि ये चिड़ियां कलरव करती हुई निकल रही थी। बाईं ओर मरुस्थल तक हरे-भरे खेतों और वृक्षपुंजों की शोभा आँखों को मुग्ध कर देती थी। पके हुए गेहूं के खेतों पर सूर्य की किरणें चमक रही थीं और भूमि से भीनी-भीनी सुगन्ध के झोंके आते थे। यह प्रकृति शोभा देखकर पापनाशी ने घुटनों पर गिरकर ईश्वर की वन्दना की- 'भगवान, मेरी यात्रा समाप्त हुई। तुझे धन्यवाद देता हूं। दयानिधि, जिस प्रकार तूने इन अंजीर के पौधों पर ओस की बूंदों की वर्षा की है, उसी प्रकार थायस पर, जिसे तूने अपने प्रेम से रचा है, अपनी दया की दृष्टि कर। मेरी हार्दिक इच्छा है कि वह तेरी प्रेममयी रक्षा के अधीन एक नवविकसित पुष्प की भांति स्वर्गतुल्य जेरुशलम में अपने यश और कीर्ति का प्रसार करे।'

और तदुपरान्त उसे जब कोई वृक्ष फूलों से सुशोभित अथवा कोई चमकीले परों वाला पक्षी दिखाई देता तो उसे थायस की याद आती। कई दिन तक नदी के बायें किनारे पर, एक उर्वर और आबाद प्रान्त में चलने के बाद, वह इस्कन्द्रिया नगर में पहुंचा, जिसे यूनानियों ने 'रमणीक' और 'स्वर्णमयी' की उपाधि दे रखी थी। सूर्योदय की एक घड़ी बीत चुकी थी, जब उसे एक पहाड़ी के शिखर पर वह विस्तृत नगर नजर आया, जिसकी छतें कंचनमयी प्रकाश में चमक रही थीं। वह ठहर गया और मन में विचार करने लगा- 'यही वह मनोरम भूमि है जहां मैंने मृत्युलोक में पर्दापण किया, यहीं मेरे पापमय जीवन की उत्पत्ति हुई, यहीं मैंने विषाक्त वायु का आलिंगन किया, इसी विनाशकारी रक्तसागर में मैंने जलविहार किये ! वह मेरा पालना है जिसके घातक गोद में मैंने काम की मधुर लोरियां सुनीं। साधारण बोलचाल में कितना प्रतिभाशाली स्थान है, कितना

गौरव से भरा हुआ। इस्कन्द्रिया ! मेरी विशाल जन्मभूमि ! तेरे बालक तेरा पुत्रवत सम्मान करते हैं, यह स्वाभाविक है। लेकिन योगी प्रकृति को अवहेलनीय समझता है, साधु बहिरूप को तुच्छ समझता है, प्रभु मसीह का दास जन्मभूमि को विदेश समझता है, और तपस्वी इस पृथ्वी का प्राणी ही नहीं। मैंने अपने हृदय को तेरी ओर से फेर लिया है। मैं तुमसे घृणा करता हूं। मैं तेरी सम्पत्ति को, तेरी विद्या को, तेरे शास्त्रों को, तेरे सुख-विलास को, और तेरी शोभा को घृणित समझता हूं, तू पिशाचों का क्रीड़ास्थल है, तुझे धिक्कार है ! अर्थसेवियों की अपवित्र शैय्या नास्तिकता का वितण्डा क्षेत्र, तुझे धिक्कार है ! और जिबरील, तू अपने पैरों से उस अशुद्ध वायु को शुद्ध कर दे जिसमें मैं सांस लेने वाला हूं, जिसमें यहां के विषैले कीटाणु मेरी आत्मा को भ्रष्ट न कर दें।'

इस तरह अपने विचारोद्‌गारों को शान्त करके पापनाशी शहर में प्रविष्ट हुआ। यह द्वार पत्थर का एक विशाल मण्डप था। उसके मेहराब की छांह में कई दरिद्र भिक्षुक बैठे हुए पथिकों के सामने हाथ फैला-फैलाकर खैरात मांग रहे थे।

एक वृद्धा स्त्री ने जो वहां घुटनों के बल बैठी थी, पापनाशी की चादर पकड़ ली और उसे चूमकर बोली- 'ईश्वर के पुत्र, मुझे आशीर्वाद दो कि परमात्मा मुझसे सन्तुष्ट हो। मैंने परलौकिक सुख के निमित्त इस जीवन में अनेक कष्ट झेले। तुम देव पुरुष हो, ईश्वर ने तुम्हें दु:खी प्राणियों के कल्याण के लिए भेजा है, अतएव तुम्हारी चरणरज कंचन से भी बहुमूल्य है।'

पापनाशी ने वृद्धा को हाथों से स्पर्श करके आशीर्वाद दिया। लेकिन वह मुश्किल से बीस कदम चला होगा कि लड़कों के एक गोल ने उसको मुँह चिढ़ाना और उस पर पत्थर फेंकना शुरू किया और तालियां बजाकर कहने लगे- 'जरा अपनी विशालमूर्ति देखिए ! आप लंगूर से भी काले हैं, और आपकी दाढ़ी बकरे की दाढ़ी से लम्बी है। बिल्कुल भूतना मालूम होता है। इसे किसी बाग में मारकर लटका दो, कि चिड़ियां हौवा समझकर उड़ें। लेकिन नहीं, बाग में गया तो सेंत में सब फूल नष्ट हो जाएगें। उसकी सूरत ही मनहूस है। इसका मांस कौओं को खिला दो।' यह कहकर उन्होंने पत्थर की एक बौछार छोड़ दी।

लेकिन पापनाशी ने केवल इतना कहा- 'ईश्वर, तू इस अबोध बालकों को सुबुद्धि दे, वह नहीं जानते कि वे क्या करते हैं।'

वह आगे चला तो सोचने लगा- उस वृद्धा स्त्री ने मेरा कितना सम्मान किया और इन लड़कों ने कितना अपमान किया। इस भांति एक ही वस्तु को भ्रम में पड़े हुए प्राणी भिन्न-भिन्न भावों से देखते हैं। यह स्वीकार करना पड़ेगा

कि टिमाक्लीज मिथ्यावादी होते हुए भी बिल्कुल निर्बुद्धि न था। वह अंधा तो इतना जानता था कि मैं प्रकाश से वंचित हूं। उसका वचन इन दुराग्रहियों से कहीं उत्तम था जो घने अंधकार में बैठे पुकारते हैं- 'वह सूर्य है !' वह नहीं जानते कि संसार में सब कुछ माया, मृगतृष्णा, उड़ता हुआ बालू है। केवल ईश्वर ही स्थायी है।

वह नगर में बड़े वेग से पांव उठाता हुआ चला। दस वर्ष के बाद देखने पर भी उसे वहां का एक-एक पत्थर परिचित मालूम होता था, और प्रत्येक पत्थर उसके मन में किसी दुष्कर्म की याद दिलाता था। इसलिए उसने सड़कों से जड़े हुए पत्थरों पर अपने पैरों को पटकना शुरू किया और जब पैरों से रक्त बहने लगा तो उसे आनन्द सा हुआ। सड़क के दोनों किनारों पर बड़े-बड़े महल बने हुए थे जो सुगन्ध की लपटों से अलसित जान पड़ते थे। देवदार, छुहारे आदि के वृक्ष सिर उठाये हुए इन भवनों को मानो बालकों की भांति गोद में खिला रहे थे। अधखुले द्वारों में से पीतल की मूर्तियां संगमरमर के गमलों में रखी हुई दिखाई दे रही थीं और स्वच्छ जल के हौज कुंजों की छाया में लहरें मार रहे थे। पूर्ण शान्ति छाई थी। शोरगुल का नाम न था। हां, कभी-कभी द्वार से आने वाली वीणा की ध्वनि कान में आ जाती थी। पापनाशी एक भवन के द्वार पर रुका जिसकी सायबान के स्तम्भ युवतियों की भांति सुन्दर थे। दीवारों पर यूनान के सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की प्रतिमाएं शोभा दे रही थीं। पापनाशी ने अफलातूंन, सुकरात, अरस्तू, एपिक्युरस और जिनों की प्रतिमाएं पहचानीं और मन में कहा- इन मिथ्या भ्रम में पड़ने वाले मनुष्यों की कीर्तियों को, मूर्तियों को मूर्तिमान करना मूर्खता है। अब उनके मिथ्या विचारों की कलई खुल गयी। उनकी आत्मा अब नरक में पड़ी सड़ रही है, और यहां तक कि अफलातूंन भी, जिसने संसार को अपनी प्रगल्भता से गुंजरित कर दिया था, अब पिशाचों के साथ तू-तू मैं-मैं कर रहा है। द्वार पर एक हथौड़ी रखी हुई थी। पापनाशी ने द्वार खटखटाया। एक गुलाम ने तुरन्त द्वार खोल दिया और एक साधु को द्वार पर खड़े देखकर कर्कश स्वर में बोला- 'दूर हो यहां से, दूसरा द्वार देख, नहीं तो मैं डंडे से खबर लूंगा।'

पापनाशी ने सरल भाव से कहा- 'मैं कुछ भिक्षा मांगने नहीं आया हूं। मेरी केवल यही इच्छा है कि मुझे अपने स्वामी निसियास के पास ले चलो।'

गुलाम ने और भी बिगड़कर जवाब दिया- 'मेरा स्वामी तुम जैसे कुत्तों से मुलाकात नहीं करता !'

पापनाशी- 'पुत्र, जो मैं कहता हूं वह करो, अपने स्वामी से इतना ही कह दो कि मैं उससे मिलना चाहता हूं।'

दरबान ने क्रोध के आवेश में आकर कहा- 'चला जा यहां से, भिखमंगा कहीं का !' और अपनी छड़ी उठाकर उसने पापनाशी के मुँह पर जोर से लगाई। लेकिन योगी ने छाती पर हाथ बांधे, बिना जरा भी उत्तेजित हुए, शांत भाव से यह चोट सह ली और तब विनयपूर्वक फिर वही बात कही- 'पुत्र, मेरी याचना स्वीकार करो।'

दरबान ने चकित होकर मन में कहा- यह तो विचित्र आदमी है, जो मार से भी नहीं डरता और तुरन्त अपने स्वामी से पापनाशी का संदेशा कह सुनाया।

निसियास अभी स्नानागार से निकला था। दो युवतियां उसकी देह पर तेल की मालिश कर रही थीं। वह रूपवान पुरुष था, बहुत ही प्रसन्नचित्त। उसके मुख पर कोमल व्यंग्य की आभा थी। योगी को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ फैलाये हुए उसकी ओर बढ़ा- 'आओ मेरे मित्र, मेरे बन्धु, मेरे सहपाठी, आओ। मैं तुम्हें पहचान गया, यद्यपि तुम्हारी सूरत इस समय आदमियों की सी नहीं, पशुओं की सी है। आओ, मेरे गले से लग जाओ। तुम्हें वह दिन याद है जब हम व्याकरण, अलंकार और दर्शन शास्त्र पढ़ते थे ? तुम उस समय भी तीवर और उद्दण्ड प्रकृति के मनुष्य थे, पर पूर्ण सत्यवादी तुम्हारी तृप्ति एक चुटकी भर नमक में हो जाती थी पर तुम्हारी दानशीलता का वारापार न था। तुम अपने जीवन की भांति अपने धन की भी कुछ परवाह न करते थे। तुममें उस समय भी थोड़ी सी झक थी जो बुद्धि की कुशलता का लक्षण है। तुम्हारे चरित्र की विचित्रता मुझे बहुत भली मालूम होती थी। आज तुमने उस वर्षों के बाद दर्शन दिये हैं। हृदय से मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं। तुमने वन्यजीवन को त्याग दिया और ईसाइयों की दुर्मति को तिलांजलि देकर फिर अपने सनातन धर्म पर आरुढ़ हो गये, इसके लिए तुम्हें बधाई देता हूं। मैं सफेद पत्थर पर इस दिन का स्मारक बनाऊंगा।'

यह कहकर उसने उन दोनों युवती सुन्दरियों को आदेश दिया- 'मेरे प्यारे मेहमान के हाथों-पैरों और दाढ़ी में सुगन्ध लगाओ।'

युवतियां हंसीं और तुरन्त एक थाल, सुगन्ध की शीशी और आईना लायीं। लेकिन पापनाशी ने कठोर स्वर से उन्हें मना किया और आँखें नीची कर लीं कि उन पर निगाह न पड़ जाए क्योंकि दोनों नग्न थीं। निसियास ने तब उसके लिए गाव तकिये और बिस्तर मंगाये और नाना प्रकार के भोजन और उत्तम शराब

उसके सामने रखी। पर उसने घृणा के साथ सब वस्तुओं को सामने से हटा दिया। तब बोला- 'निसियास, मैंने उस सत्पथ का परित्याग नहीं किया जिसे तुमने गलती से 'ईसाइयों की दुर्मति' कहा है। वही तो सत्य की आत्मा और ज्ञान का प्राण है। आदि में केवल 'शब्द' था और 'शब्द' के साथ ईश्वर था, और शब्द ही ईश्वर था। उसी ने समस्त ब्रह्माण्ड की रचना की। वही जीवन का स्रोत है और जीवन मानवजाति का प्रकाश है।'

निसियास ने उत्तर दिया- 'प्रिय पापनाशी, क्या तुम्हें आशा है कि मैं अर्थहीन शब्दों की झंकार से चकित हो जाऊंगा ? क्या तुम भूल गये कि मैं स्वयं छोटा-मोटा दार्शनिक हूं? क्या तुम समझते हो कि मेरी शांति उन चिथड़ों से हो जाएगी जो कुछ निर्बुद्धि मनुष्यों ने इमलियस के वस्त्रों से फाड़ लिया है, जब इसलियस, अफलातुन और अन्य तत्त्वज्ञानियों से मेरी शांति न हुई ? ऋषियों के निकाले हुए सिद्धान्त केवल कल्पित कथाएं हैं, जो मानव सरल हृदयता के मनोरंजन के निमित्त कही गयी है। उनको पढ़कर हमारा मनोरंजन उसी भांति होता है जैसे अन्य कथाओं को पढ़कर।'

इसके बाद अपने मेहमान का हाथ पकड़कर वह उसे एक कमरे में ले गया जहां हजारों लपेटे हुए भोजपत्र टोकरों में रखे हुए थे। उन्हें दिखाकर बोला- 'यही मेरा पुस्तकालय है। इसमें उन सिद्धान्तों में से कितनों ही का संग्रह है, जो ज्ञानियों ने सृष्टि के रहस्य की व्याख्या करने के लिए आविष्कृत किये हैं। 'सेरापियम' में भी अतुल धन के होते हुए सब सिद्धान्तों का संग्रह नहीं है ! लेकिन शोक ! यह सब केवल रोग पीड़ित मनुष्यों के स्वप्न हैं !'

उसने तब अपने मेहमान को एक हाथीदांत की कुरसी पर जबरदस्ती बैठाया और खुद भी बैठ गया। पापनाशी ने इन पुस्तकों को देखकर त्यौरियाँ चढ़ायीं और बोला-'इन सबको अग्नि की भेंट कर देना चाहिए।'

निसियास बोला-'नहीं प्रिय मित्र, यह घोर अनर्थ होगा, क्योंकि रुग्ण पुरुषों को मिटा दें तो संसार शुष्क और नीरस हो जाएगा और हम सब विचारशैथिल्य में जा पड़ेंगे।

पापनाशी ने उसी ध्वनि में कहा-'यह सत्य है कि मूर्तिवादियों के सिद्धान्त मिथ्या और भ्रान्तिकारक हैं। किन्तु ईश्वर ने, जो सत्य का रूप है, मानवशरीर धारण किया और अलौकिक विभूतियों द्वारा अपने को प्रकट किया और हमारे साथ रहकर हमारा कल्याण करता रहा।'

निसियास ने उत्तर दिया–'प्रिय पापनाशी, तुमने यह बात अच्छी कही कि ईश्वर ने मानवशरीर धारण किया। तब तो वह मनुष्य ही हो गया। लेकिन तुम ईश्वर और उसके रूपान्तरों का समर्थन करने तो नहीं आये? बतलाओ तुम्हें मेरी सहायता तो न चाहिए? मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूं?'

पापनाशी बोला–'बहुत कुछ! मुझे ऐसा ही सुगन्धित एक वस्त्र दे दो जैसा तुम पहने हुए हो। इसके साथ सुनहरे खड़ाऊं और एक प्याला तेल भी दे दो कि मैं अपनी दाढ़ी और बालों में चुपड़ लूं। मुझे एक हजार स्वर्ण मुद्राओं की एक थैली भी चाहिए निसियास! मैं ईश्वर के नाम पर और पुरानी मित्रता के नाते तुमसे सहायता मांगने आया हूँ।'

निसियास ने अपना सर्वोत्तम वस्त्र मंगवा दिया। उस पर किमख्वाब के बूटों में फूलों और पशुओं के चित्र बने हुए थे। दोनों युवतियों ने उसे खोलकर उसका भड़कीला रंग दिखाया और प्रतीक्षा करने लगी कि पापनाशी अपना ऊनी लबादा उतारे तो पहनायें, लेकिन पापनाशी ने जोर देकर कहा कि यह कदापि नहीं हो सकता। मेरी खाल चाहे उतर जाए पर यह ऊनी लबादा नहीं उतर सकता। विवश होकर उन्होंने उस बहुमूल्य वस्त्र को लबादे के ऊपर ही पहना दिया। दोनों युवतियां सुन्दरी थीं, और वह पुरुषों से शरमाती न थीं। वह पापनाशी को इस दुरंगे भेष में देखकर खूब हंसी। एक ने उसे अपना प्यारा सामन्त कहा, दूसरी ने उसकी दाढ़ी खींच ली। लेकिन पापनाशी ने उन पर दृष्टिपात तक न किया। सुनहरी खड़ाऊं पैरों में पहनकर और थैली कमर में बांधकर उसने निसियास से कहा, जो विनोद भाव से उसकी ओर देख रहा था– 'निसियास, इन वस्तुओं के विषय में कुछ सन्देह मत करना, क्योंकि मैं इनका सदुपयोग करुंगा।'

निसियास बोला– 'प्रिय मित्र, मुझे कोई सन्देह नहीं हैं क्योंकि मेरा विश्वास है कि मनुष्य में न भले काम करने की क्षमता है न बुरे। भलाई व बुराई का आधार केवल प्रथा पर है। मैं उन सब कुत्सित व्यवहारों का पालन करता हूं जो इस नगर में प्रचलित हैं। इसलिए मेरी गणना सज्जन पुरुषों में है। अच्छा मित्र, अब जाओ और चैन करो।'

लेकिन पापनाशी ने उससे अपना उद्देश्य प्रकट करना आवश्यक समझा। बोला– 'तुम थायस को जानते हो जो यहां की रंगशालाओं का शृंगार है?' निसियास ने कहा– 'वह परम सुन्दरी है और किसी समय मैं उसके प्रेमियों में था। उसकी खातिर मैंने एक कारखाना और दो अनाज के खेत बेच डाले और उसके विरह वर्णन में निकृष्ट कविताओं से भरे हुए तीन ग्रन्थ लिख डाले। यह

निर्विवाद है कि रूपलालित्य संसार की सबसे प्रबल शक्ति है, और यदि हमारे शरीर की रचना ऐसी होती कि हम आजीवन उस पर अधिकृत रह सकते तो हम दार्शनिकों के जीवन और भ्रम, माया और मोह, पुरुष और प्रकृति की जरा भी परवाह न करते। लेकिन मित्र, मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि तुम अपनी कुटी छोड़कर केवल थायस की चर्चा करने के लिए आये हो।'

यह कहकर निसियास ने एक ठंडी सांस खींची। पापनाशी ने उसे भीतर नेत्रों से देखा। उसकी यह कल्पना ही असम्भव मालूम होती थी कि कोई मनुष्य इतनी सावधानी से अपने पापों को प्रकट कर सकता है। उसे जरा भी आश्चर्य न होता, अगर जमीन फट जाती और उसमें से अग्नि ज्वाला निकलकर उसे निगल जाती। लेकिन जमीन स्थिर बनी रही, और निसियास हाथ पर मस्तक रखे चुपचाप बैठा हुआ अपने पूर्व जीवन की स्मृतियों पर म्लानमुख से मुस्कराता रहा। योगी तब उठा और गम्भीर स्वर में बोला– 'नहीं निसियास, मैं अपना एकान्तवास छोड़कर इस पिशाच नगरी में थायस की चर्चा करने नहीं आया हूं। बल्कि, ईश्वर की सहायता से मैं इस रमणी को अपवित्र विलास के बन्धनों से मुक्त कर दूंगा और उसे प्रभु मसीह की सेवार्थ भेंट करुंगा। अगर निराकार ज्योति ने मेरा साथ न छोड़ा तो थायस अवश्य इस नगर को त्यागकर किसी वनिता धर्माश्राम में प्रवेश करेगी।'

निसियास ने उत्तर दिया– 'मधुर कलाओं और लालित्य की देवी वीनस को रुष्ट करते हो तो सावधान रहना। उसकी शक्ति अपार है और यदि तुम उसकी प्रधान उपासिका को ले जाओगे तो वह तुम्हारे ऊपर वज्रघात करेगी।'

पापनाशी बोला– 'प्रभु मसीह मेरी रक्षा करेंगे। मेरी उनसे यह भी प्रार्थना है कि वह तुम्हारे हृदय में धर्म की ज्योति प्रकाशित करें और तुम उस अन्धकारमय कूप में से निकल आओ जिसमें पड़े हुए एड़ियां रगड़ रहे हो।'

यह कहकर वह गर्व से मस्तक उठाये बाहर निकला। लेकिन निसियास भी उसके पीछे चला। द्वार पर आते-आते उसे पा लिया और तब अपना हाथ उसके कन्धे पर रखकर उसके कान में बोला– 'देखो वीनस को क्रुद्ध मत करना। उसका प्रत्याघात अत्यन्त भीषण होता है।'

किन्तु पापनाशी ने इस चेतावनी को तुच्छ समझा, सिर फेरकर भी न देखा। वह निसियास को पतित समझता था, लेकिन जिस बात से उसे जलन होती थी वह यह थी कि मेरा पुराना मित्र थायस का प्रेममात्र रह चुका है। उसे ऐसा अनुभव होता था कि इससे घोर अपराध हो ही नहीं सकता। अब से वह निसियास

को संसार का सबसे अधम, सबसे घृणित प्राणी समझने लगा। उसने भ्रष्टाचार से सदैव नफरत की थी, लेकिन आज के पहले यह पाप उसे इतना नारकीय कभी न प्रतीत हुआ था। उसकी समझ में प्रभु मसीह के क्रोध और स्वर्ग दूतों के तिरस्कार का इससे निन्द्य और कोई विषय ही न था।

उसके मन में थायस को इन विलासियों से बचाने के लिए और भी तीव्र आकांक्षा जागृत हुई। अब बिना एक क्षण विलम्ब किये मुझे थायस से भेंट करनी चाहिए। लेकिन अभी मध्याह्न काल था और जब तक दोपहर की गरमी शान्त न हो जाए, थायस के घर जाना उचित न था। पापनाशी शहर की सड़कों पर घूमता रहा। आज उसने कुछ भोजन न किया था जिसमें उस पर ईश्वर की दया दृष्टि रहे। कभी वह दीनता से आंखें जमीन की ओर झुका लेता था, और कभी अनुरक्त होकर आकाश की ओर ताकने लगता था। कुछ देर इधर उधर निष्प्रयोजन घूमने के बाद वह बन्दरगाह पर जा पहुंचा। सामने विस्तृत बन्दरगाह था, जिसमें असंख्य जलयान और नौकाएं लंगर डाले पड़ी हुई थीं, और उनके आगे नीला समुद्र, श्वेत चादर ओढ़े हंस रहा था। एक नौका ने, जिसकी पतवार पर एक अप्सरा का चित्र बना हुआ था, अभी लंगर खोला था। डांडें पानी में चलने लगे, मांझियों ने गाना आरम्भ किया और देखते-देखते वह श्वेत वस्त्रधारिणी जलकन्या योगी की दृष्टि में केवल एक स्वप्नचित्र की भांति रह गयी। बन्दरगाह से निकलकर, वह अपने पीछे जगमगाता हुआ जलमार्ग छोड़ती खुले समुद्र में पहुंच गयी।

पापनाशी ने सोचा- 'मैं भी किसी समय संसार सागर पर गोते लगाते हुए यात्रा करने को उत्सुक था लेकिन मुझे शीघ्र ही अपनी भूल मालूम हो गयी। मुझ पर अप्सरा का जादू न चला।'

इन्हीं विचारों में मग्न वह रस्सियों की गेंडुली पर बैठ गया। निद्रा से उसकी आँखें बन्द हो गयीं। नींद में उसे एक स्वप्न दिखाई दिया। उसे मालूम हुआ कि कहीं से तुरहियों की आवाज कान में आ रही है, आकाश रक्तवर्ण हो गया है। उसे ज्ञात हुआ कि धर्माधर्म के विचार का दिन आ पहुंचा। वह बड़ी तन्मयता से ईशवन्दना करने लगा। इसी बीच में उसने एक अत्यन्त भयंकर जंतु को अपनी ओर आते देखा, जिसके माथे पर प्रकाश का एक सलीब लगा हुआ था। पापनाशी ने उसे पहचान लिया-सिलसिली की पिशाचमूर्ति थी। उस जन्तु ने उसे दांतों के नीचे दबा लिया और उसे लेकर चला, जैसे बिल्ली अपने बच्चे को लेकर चलती है। इस भांति वह जन्तु पापनाशी को कितने ही द्वीपों से होता, नदियों को पार

करता, पहाड़ों को फांदता अन्त में एक निर्जन स्थान में पहुंचा, जहां दहकते हुए पहाड़ और झुलसते राख के ढेरों के सिवाय और कुछ नजर न आता था। भूमि कितने ही स्थलों पर फट गयी थी और उसमें से आग की लपट निकल रही थी। जन्तु ने पापनाशी को धीरे से उतार दिया और कहा–'देखो !'

पापनाशी ने एक खोह के किनारे झुककर नीचे देखा। एक आग की नदी पृथ्वी के अन्तस्थल में दो कालेकाले पर्वतों के बीच से बह रही थी। वहां धुंधले प्रकाश में नरक के दूत पापात्माओं को कष्ट दे रहे थे। इन आत्माओं पर उनके मृत शरीर का हलका आवरण था, यहां तक कि वह कुछ वस्त्र भी पहने हुए थी। ऐसे दारुण कष्टों में भी यह आत्माएं बहुत दु:खी न जान पड़ती थीं। उनमें से एक जो लम्बी, गौरवर्ण, आँखें बन्द किये हुए थी, हाथ में एक तलवार लिये जा रही थी। उसके मधुर स्वरों से समस्त मरुभूमि गूंज रही थी। वह देवताओं और शूरवीरों की विरुदावली गा रही थी। छोटे–छोटे हरे रंग के दैत्य उनके होंठ और कंठ को लाल लोहे की सलाखों से छेद रहे थे। यह अमर कवि होमर की प्रतिच्छाया थी। वह इतना कष्ट झेलकर भी गाने से बाज न आती थी। उसके समीप ही अनकगोरस, जिसके सिर के बाल गिर गये थे, धूल में प्रकाल से शक्लें बना रहा था। एक दैत्य उसके कानों में खौलता हुआ तेल डाल रहा था। पर उसकी एकाग्रता को भंग न कर सकता था। इसके अतिरिक्त पापनाशी को और कितनी ही आत्माएं दिखाई दीं जो जलती हुई नदी के किनारे बैठी हुई उसी भांति पठनपाठन, वादप्रतिवाद, उपासना–ध्यान में मग्न थीं जैसे यूनान के गुरुकुलों में गुरुशिष्य किसी वृक्ष की छाया में बैठकर किया करते थे, वृद्ध टिमाक्लीज ही सबसे अलग था और भरान्तिवादियों की भांति सिर हिला रहा था। एक दैत्य उसकी आँखों के सामने एक मशाल हिला रहा था, किन्तु टिमाक्लीज आँखें ही न खोलता था।

इस दृश्य से चकित होकर पापनाशी ने उस भयंकर जन्तु की ओर देखा जो उसे यहां लाया था। कदाचित उससे पूछना चाहता था कि यह क्या रहस्य है ? पर वह जन्तु अदृश्य हो गया था और उसकी जगह एक स्त्री मुँह पर नकाब डाले खड़ी थी। वह बोली–'योगी, खूब आँखें खोलकर देख ! इन भ्रष्ट आत्माओं का दुराग्रह इतना जटिल है कि नरक में भी उनकी भ्रांन्ति शान्त नहीं हुई। यहां भी वह उसी माया के खिलौने बने हुए हैं। मृत्यु ने उनके भ्रमजाल को नहीं तोड़ा क्योंकि प्रत्यक्ष ही, केवल मर जाने से ही ईश्वर के दर्शन नहीं होते। जो लोग जीवनभर अज्ञानान्धकार में पड़े हुए थे, वह मरने पर भी मूर्ख ही बने रहेंगे। यह

दैत्यगण ईश्वरीय न्याय के यंत्र ही तो हैं। यही कारण है कि आत्माएं उन्हें न देखती हैं न उनसे भयभीत होती हैं। वह सत्य के ज्ञान से शून्य थे, अतएव उन्हें अपने अकर्मों का भी ज्ञान न था। उन्होंने जो कुछ किया अज्ञान की अवस्था में किया। उन पर वह दोषारोपण नहीं कर सकता फिर वह उन्हें दण्ड भोगने पर कैसे मजबूर कर सकता है'?

पापनाशी ने उत्तेजित होकर कहा–'ईश्वर सर्वशक्तिमान है, वह सब कुछ कर सकता है।'

नकाबपोश स्त्री ने उत्तर दिया–'नहीं, वह असत्य को सत्य नहीं कर सकता। उसको दंड भोग के योग्य बनाने के लिए पहले उनको अज्ञान से मुक्त करना होगा, और जब वह अज्ञान से मुक्त हो जाऐंगे तो वह धर्मात्माओं की श्रेणी में आ जाऐंगे !'

पापनाशी उद्विग्न और ममार्हत होकर फिर खोह के किनारों पर झुका। उसने निसियास की छाया को एक पुष्पमाला सिर पर डाले और एक झुलसे हुए मेंहदी के वृक्ष के नीचे बैठे देखा। उसकी बगल में एक अति रूपवती वेश्या बैठी हुई थी और ऐसा विदित होता था कि वह प्रेम की व्याख्या कर रहे हैं। वेश्या की मुखश्री मनोहर और अप्रतिम थी। उन पर जो अग्नि की वर्षा हो रही थी वह ओस की बूंदों के समान सुखद और शीतल थी, और वह झुलसती हुई भूमि उनके पैरों से कोमल तृण के समान दब जाती थी। यह देखकर पापनाशी की क्रोधाग्नि जोर से भड़क उठी। उसने चिल्लाकर कहा–ईश्वर, इस दुराचारी पर वज्रघात कर ! यह निसियास है। उसे ऐसा कुचल कि वह रोये, कराहे और क्रोध से दांत पीसे। उसने थायस को भ्रष्ट किया है।

सहसा पापनाशी की आँखें खुल गईं। वह एक बलिष्ठ मांझी की गोद में था। मांझी बोला–'बस मित्र, शान्त हो जाओ। जल देवता साक्षी है कि तुम नींद में बुरी तरह चौंक पड़ते हो। अगर मैंने तुम्हें सम्हाल न लिया होता तो तुम अब तक पानी में डुबकियां खाते होते। आज मैंने तुम्हारी जान बचाई।'

पापनाशी बोला–'ईश्वर की दया है।'

वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ और इस स्वप्न पर विचार करता हुआ आगे बढ़ा। अवश्य ही यह दु:स्वप्न है। नरक को मिथ्या समझना ईश्वरीय न्याय का अपमान करना है। इस स्वप्न का प्रेषक कोई पिशाच है।

ईसाई तपस्वियों के मन में नित्य यह शंका उठती रहती कि इस स्वप्न का हेतु ईश्वर है या पिशाच। पिशाचादि उन्हें नित्य घेरे रहते थे। मनुष्यों से जो मुँह

मोड़ता है, उसका गला पिशाचों से नहीं छूट सकता। मरुभूमि पिशाचों का क्रीड़ाक्षेत्र है। वहां नित्य उनका शोर सुनाई देता है। तपस्वियों को प्रायः अनुभव से, स्वप्न की व्यवस्था से ज्ञान हो जाता है कि यह मर्द ईश्वरीय प्रेरणा है या पिशाचिक प्रलोभन। पर कभी-कभी बहुत यत्न करने पर भी उन्हें भरम हो जाता था। तपस्वियों और पिशाचों में निरन्तर और महाघोर संग्राम होता रहता था। पिशाचों को सदैव यह धुन रहती थी कि योगियों को किसी तरह धोखे में डालें और उनसे अपनी आज्ञा मनवा लें। सन्त जॉन एक प्रसिद्ध पुरुष थे। पिशाचों के राजा ने साठ वर्ष तक लगातार उन्हें धोखा देने की चेष्टा की, पर सन्त जॉन उसकी चालों को ताड़ लिया करते थे। एक दिन पिशाचराजा ने एक वैरागी का रूप धारण किया और जॉन की कुटी में आकर बोला-'जॉन, कल शाम तक तुम्हें अनशन (व्रत) रखना होगा।' जॉन ने समझा, वह ईश्वर का दूत है और दो दिन तक निर्जल रहा। पिशाच ने उन पर केवल यही एक विजय पराप्त की, यद्यपि इससे पिशाचराज का कोई कुत्सित उद्देश्य न पूरा हुआ, पर सन्त जॉन को अपनी प्राजय का बहुत शोक हुआ। किन्तु पापनाशी ने जो स्वप्न देखा था उसका विषय ही कहे देता था कि इसका कर्ता पिशाच है।

वह ईश्वर से दीन शब्दों में कह रहा था-'मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हुआ जिसके दण्डस्वरूप तूने मुझे पिशाच के फन्दे में डाल दिया।' सहसा उसे मालूम हुआ कि मैं मनुष्यों के एक बड़े समूह में इधर-उधर धक्के खा रहा हूं। कभी इधर जा पड़ता हूं, कभी उधर। उसे नगरों की भीड़-भाड़ में चलने का अभ्यास न था। वह एक जड़ वस्तु की भांति इधर-उधर ठोकरें खाता फिरता था, और अपने कमख्वाब के कुरते के दामन से उलझकर वह कई बार गिरते-गिरते बचा। अन्त में उसने एक मनुष्य से पूछा-'तुम लोग सबके-सब एक ही दिशा में इतनी हड़बड़ी के साथ कहां दौड़े जा रहे हो ? क्या किसी सन्त का उपदेश हो रहा है'?

उस मनुष्य ने उत्तर दिया-'यात्री, क्या तुम्हें मालूम नहीं कि शीघ्र ही तमाशा शुरू होगा और थायस रंगमंच पर उपस्थित होगी। हम सब उसी थियेटर में जा रहे हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी हमारे साथ चलो। इस अप्सरा के दर्शन मात्र ही से हम कृतार्थ हो जाएंगे।'

पापनाशी ने सोचा कि थायस को रंगशाला में देखना मेरे उद्देश्य के अनुकूल होगा। वह उस मनुष्य के साथ हो लिया। उनके सामने थोड़ी दूर पर रंगशाला स्थित थी। उसके मुख्य द्वार पर चमकते हुए परदे पड़े थे और उसकी

विस्तृत वृत्ताकार दीवारें अनेक परतिमाओं से सजी हुई थीं। अन्य मनुष्यों के साथ यह दोनों पुरुष भी तंग गली में दाखिल हुए। गली के दूसरे सिरे पर अर्द्धचन्द्र के आकार का रंगमंच बना हुआ था जो इस समय प्रकाश से जगमगा रहा था। वे दर्शकों के साथ एक जगह पर बैठे। वहां नीचे की ओर किसी तालाब के घाट की भांति सीड़ियों की कतार रंगशाला तक चली गयी थी। रंगशाला में अभी कोई न था, पर वह खूब सजी हुई थी। बीच में कोई परदा न था। रंगशाला के मध्य में कबर की भांति एक चबूतरा सा बना हुआ था। चबूतरे के चारों तरफ रावटियां थीं। रावटियों के सामने भाले रखे हुए थे और लम्बी लम्बी खूंटियों पर सुनहरी नालें लटक रही थीं। स्टेज पर सन्नाटा छाया हुआ था। जब दर्शकों का अर्धवृत्त ठसाठस भर गया तो मधुमक्खियों की भिनभिनाहट सी दबी हुई आवाज आने लगी। दर्शकों की आँखें अनुराग से भरी हुई, वृहद निस्तब्ध रंगमंच की ओर लगी हुई थीं। स्त्रियां हंसती थीं और नींबू खाती थीं और नित्यपरति नाटक देखने वाले पुरुष अपनी जगहों से दूसरों को हँस-हँस कर पुकारते थे।

पापनाशी मन में ईश्वर की प्रार्थना कर रहा था और मुँह से एक भी मिथ्या शब्द नहीं निकलता था, लेकिन उसका साथी नाट्यकाल की अवनति की चर्चा करने लगा-'भाई, हमारी इस कला का घोर पतन हो गया है। प्राचीन समय में अभिनेता चेहरे पहनकर कवियों की रचनाएं उच्च स्वर से गाया करते थे। अब तो वह गूंगों की भांति अभिनय करते हैं। वह पुराने सामान भी गायब हो गये। न तो वह चेहरे रहे जिनमें आवाज को फैलाने के लिए धातु की जीभ बनी रहती थी, न वह ऊंचे खड़ाऊं ही रह गये जिन्हें पहनकर अभिनेतागण देवताओं की तरह लम्बे हो जाते थे, न वह ओजस्विनी कविताएं रहीं और न वह मर्मस्पर्शी अभिनयचातुर्य। अब तो पुरुषों की जगह रंगमंच पर स्त्रियों का दौरदौरा है, जो बिना संकोच के खुले मुँह मंच पर आती हैं। उस समय के यूनान निवासी स्त्रियों को स्टेज पर देखकर न जाने दिल में क्या कहते। स्त्रियों के लिए जनता के सम्मुख मंच पर आना घोर लज्जा की बात है। हमने इस कुप्रथा को स्वीकार करके अपने माध्यात्मिक पतन का परिचय दिया है। यह निर्विवाद है कि स्त्री पुरुष का शत्रु और मानवजाति का कलंक है।

पापनाशी ने इसका समर्थन किया-श्बहुत सत्य कहते हो, स्त्री हमारी प्राणघातिका है। उससे हमें कुछ आनन्द प्राप्त होता है और इसलिए उससे सदैव डरना चाहिए।'

उसके साथी ने जिसका नाम डोरियन था, कहा–'स्वर्ग के देवताओं की शपथ खाता हूँ, स्त्री से पुरुष को आनन्द नहीं प्राप्त होता, बल्कि चिन्ता, दु:ख और अशान्ति। प्रेम ही हमारे दारुणतम कष्टों का कारण है। सुनो मित्र, जब मेरी तरुणावस्था थी तो मैं एक द्वीप की सैर करने गया था और वहां मुझे एक बहुत बड़ा मेंहदी का वृक्ष दिखाई दिया जिसके विषय में यह दन्तकथा प्रचलित है कि फीडरा जिन दिनों हिमोलाइट पर आशिक थी तो वह विरहदशा में इसी वृक्ष के नीचे बैठी रहती थी और दिल बहलाने के लिए अपने बालों की सुइयां निकालकर इन पत्तियों में चुभाया करती थी। सब पत्तियां छिद गयीं। फीडरा की प्रेमकथा तो तुम जानते ही होगे। अपने प्रेमी का सर्वनाश करने के पश्चात् वह स्वयं गले में फाँसी डाल, एक हाथीदांत की खूंटी से लटकर मर गयी। देवताओं की ऐसी इच्छा हुई कि फीडरा की असह्य विरहवेदना के चिह्नस्वरूप इस वृक्ष की पत्तियों में नित्य छेद होते रहे। मैंने एक पत्ती तोड़ ली और लाकर उसे अपने पलंग के सिरहाने लटका दिया कि वह मुझे प्रेम की कुटिलता की याद दिलाती रहे और मेरे गुरु, अमर एपिक्युरस के सिद्धान्तों पर अटल रखे, जिसका उद्देश्य था कि कुवासना से डरना चाहिए। लेकिन यथार्थ में प्रेम जिगर का एक रोग है और कोई यह नहीं कह सकता कि यह रोग मुझे नहीं लग सकता।'

पापनाशी ने प्रश्न किया–'डोरियन, तुम्हारे आनन्द के विषय क्या हैं'?

डोरियन ने खेद से कहा–'मेरे आनन्द का केवल एक विषय है, और वह भी बहुत आकर्षक नहीं। वह ध्यान है जिसकी पाचनशक्ति दूषित हो गयी हो उसके लिए आनन्द का और क्या विषय हो सकता है'?

पापनाशी को अवसर मिला कि वह इस आनन्दवादी को आध्यात्मिक सुख की दीक्षा दे जो ईश्वराधना से प्राप्त होता है। बोला–'मित्र डोरियन, सत्य पर कान धरो, और प्रकाश ग्रहण करो।'

लेकिन सहसा उसने देखा कि सबकी आंखें मेरी तरफ उठी हैं और मुझे चुप रहने का संकेत कर रहे हैं। नाट्यशाला में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गयी और एक क्षण में वीरगान की ध्वनि सुनाई दी।

खेल शुरू हुआ। होमर की इलियड का एक दु:खान्त दृश्य था। ट्रोजन युद्ध समाप्त हो चुका था। यूनान के विजयी सूरमा अपनी छोलदारियों से निकलकर कूच की तैयारी कर रहे थे कि एक अद्भुत घटना हुई। रंगभूमि के मध्यस्थित समाधि पर बादलों का एक टुकड़ा छा गया। एक क्षण के बाद बादल हट गया और एशिलीस का परेत सोने के शस्त्रों से सजा हुआ प्रकट हुआ। वह योद्धाओं

की ओर हाथ फैलाये मानो कह रहा है, हेलास के सपूतो, क्या तुम यहां से प्रस्थान करने को तैयार हो ? तुम उस देश को जाते हो जहां जाना मुझे फिर नसीब न होगा और मेरी समाधि को बिना कुछ भेंट किये ही छोड़े जाते हो।

यूनान के वीर सामन्त, जिनमें वृद्ध नेस्टर, अगामेमनन, उलाइसेस आदि थे, समाधि के समीप आकर इस घटना को देखने लगे। पिर्रस ने जो एशिलीस का युवक पुत्र था, भूमि पर मस्तक झुका दिया। उलीस ने ऐसा संकेत किया जिससे विदित होता था वह मृतआत्मा की इच्छा से सहमत है। उसने अगामेमनन से अनुरोध किया–हम सबों को एशिलीस का यश मानना चाहिए, क्योंकि हेलास ही की मानरक्षा में उसने वीरगति पायी है। उसका आदेश है कि परायम की पुत्री, कुमारी पॉलिक्सेना मेरी समाधि पर समर्पित की जाए। यूनानीवीरों, अपने नायक का आदेश स्वीकार करो !

किन्तु सम्राट अगामेमनन ने आपत्ति की–'ट्रोजन की कुमारियों की रक्षा करो। परायम का यशस्वी परिवार बहुत दु:ख भोग चुका है।'

उसकी आपत्ति का कारण यह था कि वह उलाइसेस के अनुरोध से सहमत है। निश्चय हो गया कि पॉलिक्सेना एशिलीस को बलि दी जाए। मृत आत्मा इस भांति शान्त होकर यमलोक को चली गयी। चरित्रों के वार्तालाप के बाद कभी उत्तेजक और कभी करुण स्वरों में गाना होता था। अभिनय का एक भाग समाप्त होते ही दर्शकों ने तालियां बजायीं।

पापनाशी जो प्रत्येक विषय में धर्मसिद्धान्तों का व्यवहार किया करता था, बोला–'अभिनय से सिद्ध होता है कि सत्ताहीन देवताओं के उपासक कितने निर्दयी होते हैं।

डोरियन ने उत्तर दिया–'यह दोष प्राय: सभी मतवादों में पाया जाता है। सौभाग्य से महात्मा एपिक्युरस ने, जिन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त था, मुझे अदृश्य की मिथ्या शंकाओं से मुक्त कर दिया।'

इतने में अभिनय फिर शुरू हुआ। हेक्युबा, जो पॉलिक्सेना की माता थी, उस छोलदारी से बाहर निकली जिसमें वह कैद थी। उसके श्वेत केश बिखरे हुए थे, कपड़े फटकर तारतार हो गये थे। उसकी शोकमूर्ति देखते ही दर्शकों ने वेदनापूर्ण आह भरी। हेक्युबा को अपनी कन्या के विषादमय अन्त का एक स्वप्न द्वारा ज्ञान हो गया था। अपने और अपनी पुत्री के दुर्भाग्य पर वह सिर पीटने लगी। उलाइसेस ने उसके समीप जाकर कहा–'पॉलिक्सेना पर से अपना मातृस्नेह अब उठा लो। वृद्धा स्त्री ने अपने बाल नोच लिये, मुँह का नखों से खसोटा और

निर्दयी योद्धा उलाइसेस के हाथों को चूमा, जो अब भी दयाशून्य शान्ति से कहता जान पड़ता था–'हेक्युबा, धैर्य से काम लो। जिस विपत्ति का निवारण नहीं हो सकता, उसके सामने सिर झुकाओ। हमारे देश में भी कितनी ही माताएं अपने पुत्रों के लिए रोती रही हैं, जो आज यहां वृक्षों के नीचे मोहनिद्रा में मग्न हैं। और हेक्युबा ने, जो पहले एशिया के सबसे समृद्धिशाली राज्य की स्वामिनी थी और इस समय गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी हुई थी, नैराश्य से धरती पर सिर पटक दिया।'

तब छोलदारियों में से एक के सामने का परदा उठा और कुमारी पॉलिक्सेना प्रकट हुई। दर्शकों में एक सनसनी सी दौड़ गयी। उन्होंने थायस को पहचान लिया। पापनाशी ने उस वेश्या को फिर देखा जिसकी खोज में वह आया था। वह अपने गोरे हाथ से भारी परदे को ऊपर उठाये हुए थी। वह एक विशाल प्रतिमा की भांति स्थिर खड़ी थी। उसके अपूर्व लोचनों से गर्व और आत्मोत्सर्ग झलक रहा था और उसके प्रदीप्त सौन्दर्य से समस्त दर्शकवृन्द एक निरुपाय लालसा के आवेग से थर्रा उठे !

पापनाशी का चित्त व्यग्र हो उठा। छाती को दोनों हाथों से दबाकर उसने एक ठण्डी सांस ली और बोला–'ईश्वर ! तूने एक प्राणी को क्योंकर इतनी शक्ति परादान की है?'

किन्तु डोरियन जरा भी अशान्ति न हुआ। बोला–'वास्तव में जिन परमाणुओं के एकत्र हो जाने से इस स्त्री की रचना हुई है उसका संयोग बहुत ही नयनाभिराम है। लेकिन यह केवल प्रकृति की एक क्रीड़ा है, और परमाणु जड़वस्तु है। किसी दिन वह स्वाभाविक रीति से विच्छिन्न हो जाएंगे। जिन परमाणुओं से लैला और क्लियोपेट्रा की रचना हुई थी वह अब कहां हैं ? मैं मानता हूं कि स्त्रियां कभी-कभी बहुत रूपवती होती हैं, लेकिन वह भी तो विपत्ति और घृणोत्पादक अवस्थाओं के वशीभूत हो जाती हैं। बुद्धिमानों को यह बात मालूम है, यद्यपि मूर्ख लोग इस पर ध्यान नहीं देते।'

योगी ने भी थायस को देखा। दार्शनिक ने भी। दोनों के मन में भिन्न-भिन्न विचार उत्पन्न हुए। एक ने ईश्वर से फरियाद की, दूसरे ने उदासीनता से तत्त्व का निरूपण किया।

इतने में रानी हेक्युबा ने अपनी कन्या को इशारों से समझाया, मानो कह रही है–इस हृदयहीन उलाइसेस पर अपना जादू डाल ! अपने रूपलावण्य, अपने यौवन और अपने अश्रुप्रवाह का आश्रय ले।

थायस, या कुमारी पॉलिक्सेना ने छोलदारी का परदा गिरा दिया। तब उसने एक कदम आगे बढ़ाया, लोगों के दिल हाथ से निकल गये। और जब वह गर्व से तालों पर कदम उठाती हुई उलाइसेस की ओर चली तो दर्शकों को ऐसा मालूम हुआ मानो वह सौन्दर्य का केन्द्र है। कोई आपे में न रहा। सबकी आंखें उसी ओर लगी हुई थीं। अन्य सभी का रंग उसके सामने फीका पड़ गया। कोई उन्हें देखता भी न था।

उलाइसेस ने मुँह फेर लिया और मुँह चादर में छिपा लिया कि इस दया भिखारिनी के नेत्रकटाक्ष और प्रेमालिंगन का जादू उस पर न चले। पॉलिक्सेना ने उससे इशारों से कहा–'मुझसे क्यों डरते हो ? मैं तुम्हें प्रेमपाश में फंसाने नहीं आयी हूं। जो अनिवार्य है, वह होगा। उसके सामने सिर झुकाती हूं। मृत्यु का मुझे भय नहीं है। परायम की लड़की और वीर हेक्टर की बहन, इतनी गयी गुजरी नहीं है कि उसकी शय्या, जिसके लिए बड़े-बड़े सम्राट लालायित रहते थे, किसी विदेशी पुरुष का स्वागत करे। मैं किसी की शरणागत नहीं होना चाहती।'

हेक्युबा जो अभी तक भूमि पर अचेत सी पड़ी थी, सहसा उठी और अपनी प्रिय पुत्री को छाती से लगा लिया। यह उसका अन्तिम नैराश्यपूर्ण आलिंगन था। पति वंचित मातृहृदय के लिए संसार में कोई अवलम्ब न था। पॉलिक्सेना ने धीरे से माता के हाथों से अपने को छुड़ा लिया, मानो उससे कह रही थी– 'माता, धैर्य से काम लो ! अपने स्वामी की आत्मा को दुःखी मत करो। ऐसा क्यों करती हो कि यह लोग निदर्यता से जमीन पर गिरकर मुझे अलग कर लें'?

थायस का मुखचन्द्र इस शोकावस्था में और भी मधुर हो गया था, जैसे मेघ के हलके आवरण से चन्द्रमा। दर्शकवृन्द को उसने जीवन के आवेशों और भावों का कितना अपूर्व चित्र दिखाया ! इससे सभी मुग्ध थे ! आत्मसम्मान, धैर्य, साहस आदि भावों का ऐसा अलौकिक, ऐसा मुग्धकर दिग्दर्शन कराना थायस का ही काम था। यहां तक कि पापनाशी को भी उस पर दया आ गयी। उसने सोचा, यह चमक-दमक अब थोड़े ही दिनों के और मेहमान हैं, फिर तो यह किसी धमार्श्रम में तपस्या करके अपने पापों का प्रायश्चित करेगी।

अभिनय का अन्त निकट आ गया। हेक्युबा मूर्छित होकर गिर पड़ी, और पॉलिक्सेना उलाइसेस के साथ समाधि पर आयी। योद्धागण उसे चारों ओर से घेरे हुए थे। जब वह बलिवेदी पर चढ़ी तो एशिलीज के पुत्र ने एक सोने के प्याले में शराब लेकर समाधि पर गिरा दी। मातमी गीत गाये जा रहे थे। जब बलि देने

वाले पुजारियों ने उसे पकड़ने को हाथ फैलाया तो उसने संकेत द्वारा बतलाया कि मैं स्वच्छन्द रहकर मरना चाहती हूं, जैसाकि राजकन्याओं का धर्म है। तब अपने वस्त्रों को उतारकर वह वज्र को हृदयस्थल में रखने को तैयार हो गयी। पिर्रस ने सिर फेरकर अपनी तलवार उसके वक्षस्थल में भोंक दी। रुधिर की धारा बह निकली। कोई लाग रखी गयी थी। थायस का सिर पीछे को लटक गया, उसकी आंखें तिलमिलाने लगीं और एक क्षण में वह गिर पड़ी।

योद्धागण तो बलि को कफन पहना रहे थे। पुष्पवर्षा की जा रही थी। दर्शकों की आर्तध्वनि से हवा गूंज रही थी। पापनाशी उठ खड़ा हुआ और उच्चस्वर से उसने यह भविष्यवाणी की–'मिथ्यावादियों, और प्रेतों के पूजने वालों ! यह क्या भ्रम हो गया है ! तुमने अभी जो दृश्य देखा है वह केवल एक रूपक है। उस कथा का आध्यात्मिक अर्थ कुछ और है, और यह स्त्री थोड़े ही दिनों में अपनी इच्छा और अनुराग से, ईश्वर के चरणों में समर्पित हो जाएगी।

इसके एक घण्टे बाद पापनाशी ने थायस के द्वार पर जंजीर खटखटायी।

थायस उस समय रईसों के मुहल्ले में, सिकन्दर की समाधि के निकट रहती थी। उसके विशाल भवन के चारों ओर सायेदार वृक्ष थे, जिनमें से एक जलधारा कृत्रिम चट्टानों के बीच से होकर बहती थी। एक बूढ़ी हब्शिन दासी ने जो मुंदरियों से लदी हुई थी, आकर द्वार खोल दिया और पूछा–'क्या आज्ञा है'?

पापनाशी ने कहा–'मैं थामस से भेंट करना चाहता हूं। ईश्वर साक्षी है कि मैं यहां इसी काम के लिए आया हूं।'

वह अमीरों जैसे वस्त्र पहने हुए था और उसकी बातों से रोब पटकता था। अतएव दासी उसे अन्दर ले गयी और बोली–'थायस परियों के कुंज में विराजमान है।'

जैनेन्द्र कुमार

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में जैनेंद्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। वह हिंदी उपन्यास के इतिहास में मनोविश्लेषणात्मक परंपरा के प्रवर्तक के रूप में मान्य हैं। जैनेंद्र अपने पात्रों की सामान्यगति में सूक्ष्म संकेतों की निहिति की खोज करके उन्हें बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं। उनके पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ इसी कारण से संयुक्त होकर उभरती हैं। जैनेंद्र के उपन्यासों में घटनाओं की संघटनात्मकता पर बहुत कम बल दिया गया मिलता है। चरित्रों की प्रतिक्रियात्मक

संभावनाओं के निर्देशक सूत्र ही मनोविज्ञान और दर्शन का आश्रय लेकर विकास को प्राप्त होते हैं।

जीवन परिचय

जैनेंद्र कुमार का जन्म 2 जनवरी सन 1905, में अलीगढ़ के कौड़ियागंज गांव में हुआ। उनके बचपन का नाम आनंदीलाल था। इनकी मुख्य देन उपन्यास तथा कहानी है। एक साहित्य विचारक के रूप में भी इनका स्थान मान्य है। इनके जन्म के दो वर्ष पश्चात इनके पिता की मृत्यु हो गई। इनकी माता एवं मामा ने ही इनका पालन-पोषण किया। इनके मामा ने हस्तिनापुर में एक गुरुकुल की स्थापना की थी। वहीं जैनेंद्र की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा हुई। उनका नामकरण भी इसी संस्था में हुआ। उनका घर का नाम आनंदी लाल था। सन 1912 में उन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया। प्राइवेट रूप से मैट्रिक परीक्षा में बैठने की तैयारी के लिए वह बिजनौर आ गए। 1919 में उन्होंने यह परीक्षा बिजनौर से न देकर पंजाब से उत्तीर्ण की। जैनेंद्र की उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई। 1921 में उन्होंने विश्वविद्यालय की पढ़ाई छोड़ दी और कांग्रेस के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के उद्देश्य से दिल्ली आ गए। कुछ समय के लिए ये लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में भी रहे, परंतु अंत में उसे भी छोड़ दिया।

सन 1921 से 23 के बीच जैनेंद्र ने अपनी माता की सहायता से व्यापार किया, जिसमें इन्हें सफलता भी मिली। परंतु सन 23 में वे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रों में संवाददाता के रूप में कार्य करने लगे। उसी वर्ष इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और तीन माह के बाद छूट गए। दिल्ली लौटने पर इन्होंने व्यापार से अपने को अलग कर लिया। जीविका की खोज में ये कलकत्ते भी गए, परंतु वहाँ से भी इन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। इसके बाद इन्होंने लेखन कार्य आरंभ किया। 24 दिसम्बर 1988 को उनका निधन हो गया।

प्रकाशित कृतियाँ

उपन्यास: 'परख' (1929), 'सुनीता' (1935), 'त्यागपत्र' (1937), 'कल्याणी' (1939), 'विवर्त' (1953), 'सुखदा' (1953), 'व्यतीत' (1953) तथा 'जयवर्धन' (1956)।

कहानी संग्रह: 'फाँसी' (1929), 'वातायन' (1930), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'एक रात' (1934), 'दो चिड़ियाँ' (1935), 'पाजेब' (1942), 'जयसंधि' (1949) तथा 'जैनेंद्र की कहानियाँ' (सात भाग)।

निबंध संग्रह: 'प्रस्तुत प्रश्न' (1936), 'जड़ की बात' (1945), 'पूर्वोदय' (1951), 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (1953), 'मंथन' (1953), 'सोच विचार' (1953), 'काम, प्रेम और परिवार' (1953), तथा 'ये और वे' (1954)।

अनूदित ग्रंथ: 'मंदालिनी' (नाटक-1935), 'प्रेम में भगवान' (कहानी संग्रह-1937), तथा 'पाप और प्रकाश' (नाटक-1953)।

सह लेखन: 'तपोभूमि' (उपन्यास, ऋषभचरण जैन के साथ-1932)।

संपादित ग्रंथ: 'साहित्य चयन' (निबंध संग्रह-1951) तथा 'विचारवल्लरी' (निबंध संग्रह-1952)। (सहायक ग्रंथ- जैनेंद्र- साहित्य और समीक्षा: रामरतन भटनागर।)

समालोचना

जैनेन्द्र अपने पथ के अनूठे अन्वेषक थे। उन्होंने प्रेमचन्द के सामाजिक यथार्थ के मार्ग को नहीं अपनाया, जो अपने समय का राजमार्ग था। लेकिन वे प्रेमचन्द के विलोम नहीं थे, जैसा कि बहुत से समीक्षक सिद्ध करते रहे हैं, वे प्रेमचन्द के पूरक थे। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र को साथ-साथ रखकर ही जीवन और इतिहास को उसकी समग्रता के साथ समझा जा सकता है। जैनेन्द्र का सबसे बड़ा योगदान हिन्दी गद्य के निर्माण में था। भाषा के स्तर पर जैनेन्द्र द्वारा की गई तोड़-फोड़ ने हिन्दी को तराशने का अभूतपूर्व काम किया। जैनेन्द्र का गद्य न होता तो अज्ञेय का गद्य संभव न होता। हिन्दी कहानी ने प्रयोगशीलता का पहला पाठ जैनेन्द्र से ही सीखा। जैनेन्द्र ने हिन्दी को एक पारदर्शी भाषा और भंगिमा दी, एक नया तेवर दिया, एक नया 'सिंटेक्स' दिया। आज के हिन्दी गद्य पर जैनेन्द्र की अमिट छाप है।--रवींद्र कालिया जैनेंद्र के प्राय: सभी उपन्यासों में दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्त्वों के समावेश से दूरूहता आई है परंतु ये सारे तत्त्व जहाँ-जहाँ भी उपन्यासों में समाविष्ट हुए हैं, वहाँ वे पात्रों के अंतर का सृजन प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि जैनेंद्र के पात्र बाह्य वातावरण और परिस्थितियों से अप्रभावित लगते हैं और अपनी अंतर्मुखी गतियों से संचालित। उनकी प्रतिक्रियाएँ और व्यवहार भी प्राय: इन्हीं गतियों के अनुरूप होते हैं। इसी का एक परिणाम

यह भी हुआ है कि जैनेंद्र के उपन्यासों में चरित्रों की भरमार नहीं दिखाई देती। पात्रों की अल्पसंख्या के कारण भी जैनेंद्र के उपन्यासों में वैयक्तिक तत्त्वों की प्रधानता रही है।

क्रांतिकारिता तथा आतंकवादिता के तत्त्व भी जैनेंद्र के उपन्यासों के महत्वपूर्ण आधार है। उनके सभी उपन्यासों में प्रमुख पुरुष पात्र सशक्त क्रांति में आस्था रखते हैं। बाह्य स्वभाव, रुचि और व्यवहार में एक प्रकार की कोमलता और भीरुता की भावना लिए होकर भी ये अपने अंतर में महान विध्वंसक होते हैं। उनका यह विध्वंसकारी व्यक्तित्त्व नारी की प्रेमविषयक अस्वीकृतियों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप निर्मित होता है। इसी कारण जब वे किसी नारी का थोड़ा भी आश्रय, सहानुभूति या प्रेम पाते हैं, तब टूटकर गिर पड़ते हैं और तभी उनका बाह्य स्वभाव कोमल बन जाता है। जैनेंद्र के नारी पात्र प्रायः उपन्यास में प्रधानता लिए हुए होते हैं। उपन्यासकार ने अपने नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण में सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है। स्त्री के विविध रूपों, उसकी क्षमताओं और प्रतिक्रियाओं का विश्वसनीय अंकन जैनेंद्र कर सके हैं। 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'सुखदा' आदि उपन्यासों में ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब उनके नारी चरित्र भीषण मानसिक संघर्ष की स्थिति से गुजरे हैं। नारी और पुरुष की अपूर्णता तथा अंतर्निर्भरता की भावना इस संघर्ष का मूल आधार है। वह अपने प्रति पुरुष के आकर्षण को समझती है, समर्पण के लिए प्रस्तुत रहती है और पूरक भावना की इस क्षमता से आल्हादित होती है, परंतु कभी-कभी जब वह पुरुष में इस आकर्षण मोह का अभाव देखती है, तब क्षुब्ध होती है, व्यथित होती है। इसी प्रकार से जब पुरुष से कठोरता की अपेक्षा के समय विनम्रता पाती है, तब यह भी उसे असह्य हो जाता है।

जैनेन्द्र कुमार के उपन्यास

जैनेन्द्र,प्रेमचंद के बाद हिंदी के सर्वश्रेष्ठ सफल उपन्यासकार हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों का विषय गांवों को न बनाकर नगरों को बनाया है। इन उपन्यासों में नागरिक जीवन को मनोवैज्ञानिक समस्याओं का चित्रण उपलब्ध है। इनके उपन्यासों पर फ्रायड की प्रमुख छाप स्पष्ट है। आत्मपीड़ा की अधिकता के कारण कुछ लोगों का कहना है कि जैनेन्द्र हिंदी में शरत की भूमिका का निर्वाह करते हैं। इनके प्रमुख उपन्यास परख, त्यागपत्र, सुनीता, कल्याणी, जयवर्धन आदि हैं।

परख

परख में मानवीय प्रवृत्ति तथा सामाजिक विषमता से उत्पन्न विधवा समस्या है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1910 में हुआ है। कट्टों का मास्टर के प्रति अंधविश्वास है। सत्यधन आदर्श वादिता में विधवा कट्टों से प्रेम करता है, परन्तु सामाजिक भय, अर्थ, लोभ आदि से वह कट्टों को पत्नी नहीं बना पाता। वह बिहारी की बहिन गरिमा से विवाह कर लेता है। दूसरी ओर बिहारी वैधव्य यज्ञ में खरा उतरता है। इस प्रकार सत्यधन के प्रेम की परख होती है और वह खोटा सिद्ध होता है।

सुनीता

जैनेन्द्र के उपन्यासों में सुनीता का एक विशेष स्थान है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1936 में हुआ है। उपन्यास का नायक हरि प्रसन्न एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता है। वह अपने मित्र श्रीकांत के यहाँ रहता है। धीरे-धीरे सुनीता और हरि प्रसन्न में आकर्षण उत्पन्न होता है। हरि प्रसन्न सुनीता को क्रांतिकारी दल का मंत्री बनता है। इसी बीच उसकी भावुकता भी जागती है। कालांतर में हरि प्रसन्न का मोह टूटता है और वह सुनीता को घर लौटा कर हमेशा के लिए चला जाता है।

कल्याणी

शादी और डाक्टरी, पत्नीत्व और निजत्व का परस्पर संघर्ष ही कल्याणी की कहानी है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1940 में हुआ है कल्याणी की नायिका श्रीमती असरानी डॉक्टर है और उसके पति भी डॉक्टर है। श्रीमति असरानी बुद्धिमती और उदार हैं। उन्होंने स्वतंत्र जीवन का स्वाद लिया है। अब वैवाहिक बंधन में बंधकर उसकी मर्यादा के बीच चल रही हैं। पत्नी और पति के मनोभावों में बड़ा अंतर हैं। वह अपनी पत्नी पर संदेह करके उसे पीटते भी हैं। वह चाहते हैं कि उनकी पत्नी गृहणी बने। उसे भी गृहणी बनने में आपत्ति नहीं हैं। समस्या है – आज की गृहणी बनने में .वह अपनी पत्नी की इच्छा को पति की इच्छा पर निछावर करती हुई अंत में अचानक मूक हो जाती है।

त्यागपत्र

त्यागपत्र उपन्यास के प्रधान पात्र हैं विनोद और उसकी बुआ मृणाल। इस उपन्यास का प्रकाशन 1957 में हुआ है। इनमें विनोद कलाकार हैं और जो कुछ

कहानी है। बुआ की, मृणाल विनोद के माता - पिता द्वारा पाली गयी है। पढाई के समय अपनी सहेली के भाई से प्रेम करने लगती है। इसके लिए विनोद की माँ भी मृणाल को बुरी तरह पीटती है। शीघ्र ही किसी व्यस्क के साथ मृणाल की शादी कर दी जाती है। पति उसके प्रति अत्याचार करता है उसे घर से निकाल देता है। इसके बाद भी उसके जीवन के कष्टों का अंत नहीं होता। सांसारिक कष्टों को लगभग 20 वर्षों तक झेलती हुई इस संसार से विदा ले लेती हैं। उसकी मृत्यु का विनोद पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह नौकरी से त्यागपत्र देकर दुनिया से विरक्त हो गया है।

सुखदा

सुखदा आत्म चरित्रात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1952 में हुआ है। कहानी की नायिका सुखदा अपने वैवाहिक जीवन और पति की आर्थिक दशा के सम्बन्ध में ऊँची ऊँची कल्पनाएँ करती है। परन्तु इसके विपरीत स्थिति में उसका विवाह होता है। पति का वेतन कुल डेढ़ सौ है जिसका एक अंश गाँव भेजना पड़ता है। उसका मन अभाव से भर उठता है। कालांतर में सुखदा क्रांति संघ की उपाध्यक्ष हो जाती है। इसी बीच क्रांति दल के एक अन्य सदस्य लाल साहब से उसका परिचय होता है सुखदा और लाल को लेकर दल में बड़ा असंतोष उभरता है और अंतत: हरीदा संघ को भंग कर देता है। इसके बाद हरीदा को छुडाते समय लाल गोली का शिकार होता है। अब कान्त और सुखदा का साथ-साथ रहना असमंजस पूर्ण हो जाता है और सुखदा अपनी माँ के घर चली जाती है।

व्यतीत

व्यतीत भी सुखदा के समान आत्म चरित्रात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रकाशन 1953 में हुआ है। इसमें नायक जयंत प्रेम में असफल होने पर जीवन से विरक्त होकर इधर-उधर भटकता रहता है।

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात हम कह सकते हैं कि इनके उपन्यासों में नारी पुरुष के प्रेम की समस्या का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। दार्शनिकता के कारण कहीं-कहीं आपकी शैली अत्यंत जटिल प्रतीत होती है। इन्होने अपने उपन्यासों में मौखिक प्रश्न उठाये हैं,वे मानव जीवन में विचारणीय है। कथावस्तु के चयन पात्र,कल्पना,जीवन दृष्टि सभी दृष्टियों से इनमें नवीनता है।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आरम्भकर्ता माने जाते हैं। जोशी जी ने अधिकांश साहित्यकारों की तरह अपनी साहित्यिक यात्रा काव्य-रचना से ही आरम्भ की। पर्वतीय-जीवन विशेषकर वनस्पतियों से आच्छादित अल्मोड़ा और उसके आस-पास के पर्वत-शिखरों ने और हिमालय के जल-प्रपातों एवं घाटियों ने, झीलों और नदियों ने इनकी काव्यात्मक संवेदना को सदा जागृत रखा।

प्रतिभा सम्पन्न

जोशी जी बाल्यकाल से ही प्रतिभा के धनी थे। उत्तरांचल में जन्मे होने के कारण, वहाँ के प्राकृतिक वातावरण का इनके चिन्तन पर बहुत प्रभाव पड़ा। अध्ययन में रुचि रखने वाले इलाचन्द्र जोशी ने छोटी उम्र में ही भारतीय महाकाव्यों के साथ-साथ विदेश के प्रमुख कवियों और उपन्यासकारों की रचनाओं का अध्ययन कर लिया था। औपचारिक शिक्षा में रुचि न होने के कारण इनकी स्कूली शिक्षा मैट्रिक के आगे नहीं हो सकी, परन्तु स्वाध्याय से ही इन्होंने अनेक भाषाएँ सीखीं। घर का वातावरण छोड़कर इलाचन्द्र जोशी कोलकाता पहुँचे। वहाँ उनका सम्पर्क शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय से हुआ।

उपन्यासकार के रूप में

जोशी जी एक उपन्यासकार के रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित हैं। उनके कवि, आलोचक या कहानीकार का रूप बहुत खुलकर सामने नहीं आया। इनके उपन्यासों का आधार मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की संज्ञा पाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों पर 'फ्रायड' के चिन्तन का अधिक प्रभाव पड़ा, किन्तु इलाचन्द्र जोशी के साथ यह बात पूरी तरह से लागू नहीं होती। जोशी जी ने पाश्चात्य लेखकों को भी बहुत पढ़ा था, पर रूसी उपन्यासकारों-टॉल्स्टॉय और दॉस्त्योवस्की का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। यही कारण है कि उनके औपन्यासिक चरित्रों में आपत्तिजनक प्रवृत्तियाँ होती हैं, किन्तु उनके चरित्र नायकों में सदगुणों की भी कमी नहीं होती। उदारता, दया, सहानुभूति आदि उनके अन्दर यथेष्ट रूप में पाए जाते हैं। ये नायक इन्हीं कारणों से असामाजिक कार्य भले कर बैठते हैं, किन्तु बाद में वे पश्चाताप भी करते हैं।

'जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय ने हिन्दी साहित्य को एक नया मोड दिया था। ये मूलत: मानव मनोविज्ञान के लेखक थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य को बाहरी घटनाओं की अपेक्षा मन के भीतर के संसार की ओर मोडा था।.. इलाचन्द्र जोशी के अधिकतम उपन्यास उनके पात्रों के मनोलोक की गाथाएँ हैं जिनका अपने बाहरी संसार से टकराव होता है।'

रचनाएँ

उपन्यास के अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं में भी योगदान दिया है। इन्होंने कहानियाँ भी लिखीं। इनके चर्चित कहानी संग्रह निम्नलिखित हैं-

कहानी
धूपरेखा
आहुति
खण्डहर की आत्माएँ

जीवनी

रवीन्द्रनाथ
शरद: व्यक्ति और साहित्यकार
जीवन का महान् विश्लेषक विराटवादी कवि गेटे

आलोचनात्मक ग्रन्थ

साहित्य सर्जन
साहित्य चिन्तन
विश्लेषण

उपन्यास

जोशीजी 'कोलकाता समाचार', 'चाँद', 'विश्ववाणी', 'सुधा', 'सम्मेलन पत्रिका', 'संगम', 'धर्मयुद्ध', और 'साहित्यकार' जैसी पत्रिकाओं के सम्पादन से भी जुड़े रहे। इन्होंने बाल-साहित्य में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। कुछ अनुवाद कार्य भी किए। इलाचन्द्र जोशी के प्रमुख उपन्यास इस प्रकार हैं-

घृणामयी - बाद में यही उपन्यास 'लज्जा' नाम से प्रकाशित हुआ। घृणामयी 1929 में प्रकाशित हुई।

लज्जा 21 वर्षों के बाद 1950 में।
संन्यासी
परदे की रानी
प्रेत और छाया
मुक्तिपथ
जिप्सी
जहाज का पंछी
भूत का भविष्य
सुबह
निर्वासित
ऋतुचक्र

अन्य कार्य

'साहित्य सर्जना', 'विवेचना', 'साहित्य चिन्तन', 'रवीन्द्रनाथ', 'उपनिषद की कथाएँ', 'सूदखोर की पत्नी' आदि समालोचना और निबन्ध के ग्रन्थ हैं। इन्होंने कुछ समय तक आकाशवाणी में भी काम किया और रवीन्द्र की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद किया। जोशीजी ने बंगला और अंग्रेजी में भी कुछ रचनाएँ की हैं।

लेखन के विषय

जोशी जी मात्र मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी उपन्यासकार नहीं कहे जाएँगे। उन्होंने आदर्श को भी अपनी कृतियों में स्थान दिया। उन्होंने अपनी औपन्यासिक कृतियों से समाज में उच्चतर मूल्यों की स्थापना का सफल प्रयास किया है। सही है कि उन्होंने काम वासना को भी अपने उपन्यासों का उपजीव्य बनाया है और वेश्याओं तक को अपनी कृतियों की नायिका बना दिया है। पर नारी-समस्याओं को उभारने में भी वे आगे रहे हैं और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। एक बात यह भी है कि जोशी जी ने अन्य उपन्यासकारों अथवा नाटककारों की तरह अपनी कृतियों के लिए धीरोदत्त नायकों की सृष्टि नहीं की। उनके नायक मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलताओं से युक्त होते हैं, भले ही कालक्रम से वे अपने अधिकांश दोषों से मुक्त हो जाते हैं और एक आदर्श व्यक्ति के रूप में हमारे समक्ष प्रकट होते हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार 'फ्रायड' के सिद्धान्तों से प्रभावित होते हैं, भले ही जोशी जी 'फ्रायड' से बहुत प्रभावित नहीं हों। एक बात फिर भी रह ही जाती है कि जोशी जी ने उन मनोग्रन्थियों और कुंठाओं को पकड़ने का प्रयास किया है, जो दमित मनोभावों से उत्पन्न होती हैं। यही कारण है कि उनकी औपन्यासिक कृतियों में कुंठा-ग्रस्त पात्रों की अधिकता है। साहित्यकार नगेन्द्र ने इन्हें सीधे-सीधे 'फ्रायड' से प्रभावित माना है, जैनेन्द्र और अज्ञेय 'फ्रायड' के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं, तो इलाचन्द्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से.....वे कहीं भी मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति और छायावादी संस्कारों से उबर नहीं पाते....इनके मुख्य पात्र किसी-न-किसी मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि के शिकार हैं। जब तक उन्हें ग्रन्थि का रहस्य नहीं मालूम होता, तब तक वे अनेक प्रकार के असामाजिक कार्यों में संलग्न रहते हैं, किन्तु जिस क्षण उनकी ग्रन्थियों का मूलोदघाटन हो जाता है, उसी क्षण से वे सामान्य स्थिति में पहुँच जाते हैं।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रारम्भ श्री जोशी से ही हुआ, लेकिन श्री जोशी ने मात्र मनोवैज्ञानिक यथार्थ का निरूपण न कर अपनी रचनाओं को आदर्शपरक भी बनाया। जिस तरह प्रेमचन्द सामाजिक उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के लिए विख्यात हैं, उसी तरह श्री इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अपनी आदर्शवादी मनोवैज्ञानिकता के लिए प्रशंसनीय हैं। उन्होंने वेश्याओं की तरह तथाकथित पतित नारियों में भी सुधार एवं विकास की सम्भावनाएँ ढूँढीं। इन्हें भी महिमामण्डित कर इनमें आत्मविश्वास भरने और समाज की दृष्टि में इन्हें ऊँचा उठाने का प्रयास किया।

आलोचना

हिन्दी कथालोचना के इस दौर में जिन लेखकों ने कथा साहित्य के अध्ययन विश्लेषण की गंभीर शुरुआत की, वे पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और इलाचन्द्र जोशी हैं। इन दोनों ने ही विश्व साहित्य की खिड़की हिन्दी उपन्यास के नये निकले आँगन में खोली। दोनों ने ही विश्व और भारत में मुख्यत: बंगला साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी कथा साहित्य के मूल्यांकन की पहल की। इनमें इलाचन्द्र जोशी अपनी व्यक्तिवादी अहंवृत्ति के कारण कथा साहित्य आस्वादक कम उसके एकांगी आलोचक और दोष-दर्शक ही अधिक बने रहे। शरतचन्द्र पर लिखे गये अपने संस्मरणों में अपने अध्ययन का बखान करते हुए वे शरतचन्द्र पर जिस तरह टिप्पणी करते हैं उससे उनकी इस अहंवृत्ति को समझा जा सकता है।

नागार्जुन

नागार्जुन हिन्दी और मैथिली के अप्रतिम लेखक और कवि थे। अनेक भाषाओं के ज्ञाता तथा प्रगतिशील विचारधारा के साहित्यकार नागार्जुन ने हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली संस्कृत एवं बंगला में मौलिक रचनाएँ भी कीं तथा संस्कृत, मैथिली एवं बंगला से अनुवाद कार्य भी किया। साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित नागार्जुन ने मैथिली में यात्री उपनाम से लिखा तथा यह उपनाम उनके मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र के साथ मिल कर एकमेव हो गया।

जीवन-परिचय

नागार्जुन का जन्म 1911 ई. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को वर्तमान मधुबनी जिले मे स्थित सतलखा में हुआ था। यह उनकी ननिहाल थी। उनका पैतृक गाँव वर्तमान दरभंगा जिले का तरौनी था। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र और माता का नाम उमा देवी था। नागार्जुन के बचपन का नाम 'ठक्कन मिसर' था। गोकुल मिश्र और उमा देवी को लगातार चार संताने हुई और असमय ही वे सब चल बसीं। संतान न जीने के कारण गोकुल मिश्र अति निराशापूर्ण जीवन में रह रहे थे। अशिक्षित ब्राह्मण गोकुल मिश्र ईश्वर के प्रति आस्थावान तो स्वाभाविक रूप से थे ही पर उन दिनों अपने आराध्य देव शंकर भगवान की पूजा ज्यादा ही करने लगे थे। वैद्यनाथ धाम (देवघर) जाकर बाबा वैद्यनाथ की उन्होंने यथाशक्ति उपासना की और वहाँ से लौटने के बाद घर में पूजा-पाठ में भी समय लगाने लगे। फिर जो पाँचवीं संतान हुई तो मन में यह आशंका भी पनपी कि चार संतानों की तरह यह भी कुछ समय में ठगकर चल बसेगा। अत: इसे 'ठक्कन' कहा जाने लगा। काफी दिनों के बाद इस ठक्कन का नामकरण हुआ और बाबा वैद्यनाथ का कृपा-प्रसाद मानकर इस बालक का नाम वैद्यनाथ मिश्र रखा गया।

गोकुल मिश्र की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रह गयी थी। वे काम-धाम कुछ करते नहीं थे। सारी जमीन बटाई पर दे रखी थी और जब उपज कम हो जाने से कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई तो उन्हें जमीन बेचने का चस्का लग गया। जमीन बेचकर कई प्रकार की गलत आदतें पाल रखी थीं। जीवन के अंतिम समय में गोकुल मिश्र अपने उत्तराधिकारी (वैद्यनाथ मिश्र) के लिए मात्र तीन कट्ठा उपजाऊ भूमि और प्राय: उतनी ही वास-भूमि छोड़ गये, वह भी सूद-भरना लगाकर। बहुत बाद में नागार्जुन दंपति ने उसे छुड़ाया।

ऐसी पारिवारिक स्थिति में बालक वैद्यनाथ मिश्र पलने-बढ़ने लगे। छह वर्ष की आयु में ही उनकी माता का देहांत हो गया। इनके पिता (गोकुल मिश्र) अपने एक मात्र मातृहीन पुत्र को कंधे पर बैठाकर अपने संबंधियों के यहाँ, इस गाँव–उस गाँव आया-जाया करते थे। इस प्रकार बचपन में ही इन्हें पिता की लाचारी के कारण घूमने की आदत पड़ गयी और बड़े होकर यह घूमना उनके जीवन का स्वाभाविक अंग बन गया। 'घुमक्कड़ी का अणु जो बाल्यकाल में ही शरीर के अंदर प्रवेश पा गया, वह रचना-धर्म की तरह ही विकसित और पुष्ट होता गया।'

वैद्यनाथ मिश्र की आरंभिक शिक्षा उक्त पारिवारिक स्थिति में लघु सिद्धांत कौमुदी और अमरकोश के सहारे आरंभ हुई। उस जमाने में मिथिलांचल के धनी अपने यहां निर्धन मेधावी छात्रों को प्रश्रय दिया करते थे। इस उम्र में बालक वैद्यनाथ ने मिथिलांचल के कई गांवों को देख लिया। बाद में विधिवत संस्कृत की पढ़ाई बनारस जाकर शुरू की। वहीं उन पर आर्य समाज का प्रभाव पड़ा और फिर बौद्ध दर्शन की ओर झुकाव हुआ। उन दिनों राजनीति में सुभाष चंद्र बोस उनके प्रिय थे। बौद्ध के रूप में उन्होंने राहुल सांकृत्यायन को अग्रज माना। बनारस से निकलकर कोलकाता और फिर दक्षिण भारत घूमते हुए लंका के विख्यात 'विद्यालंकार परिवेण' में जाकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। राहुल और नागार्जुन 'गुरु भाई' हैं। लंका की उस विख्यात बौद्धिक शिक्षण संस्था में रहते हुए मात्र बौद्ध दर्शन का अध्ययन ही नहीं हुआ बल्कि विश्व राजनीति की ओर रुचि जगी और भारत में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन की ओर सजग नजर भी बनी रही। 1938 ई. के मध्य में वे लंका से वापस लौट आये। फिर आरंभ हुआ उनका घुमक्कड़ जीवन। साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ नागार्जुन राजनीतिक आंदोलनों में भी प्रत्यक्षतः भाग लेते रहे। स्वामी सहजानंद से प्रभावित होकर उन्होंने बिहार के किसान आंदोलन में भाग लिया और मार खाने के अतिरिक्त जेल की सजा भी भुगती। चंपारण के किसान आंदोलन में भी उन्होंने भाग लिया। वस्तुतः वे रचनात्मक के साथ-साथ सक्रिय प्रतिरोध में विश्वास रखते थे। 1974 के अप्रैल में जेपी आंदोलन में भाग लेते हुए उन्होंने कहा था 'सत्ता प्रतिष्ठान की दुर्नीतियों के विरोध में एक जनयुद्ध चल रहा है, जिसमें मेरी हिस्सेदारी सिर्फ वाणी की ही नहीं, कर्म की हो, इसीलिए मैं आज अनशन पर हूँ, कल जेल भी जा सकता हूँ।' और सचमुच इस आंदोलन के सिलसिले में आपात् स्थिति से पूर्व ही इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और फिर काफी समय जेल में रहना पड़ा।

1948 ई. में पहली बार नागार्जुन पर दमा का हमला हुआ और फिर कभी ठीक से इलाज न कराने के कारण आजीवन वे समय-समय पर इससे पीड़ित होते रहे। दो पुत्रियों एवं चार पुत्रों से भरे-पूरे परिवार वाले नागार्जुन कभी गार्हस्थ्य धर्म ठीक से नहीं निभा पाये और इस भरे-पूरे परिवार के पास अचल संपत्ति के रूप में विरासत में मिली वही तीन कट्ठा उपजाऊ तथा प्रायः उतनी ही वास-भूमि रह गयी।

लेखन-कार्य एवं प्रकाशन

नागार्जुन का असली नाम वैद्यनाथ मिश्र था परंतु हिन्दी साहित्य में उन्होंने नागार्जुन तथा मैथिली में यात्री उपनाम से रचनाएँ कीं। काशी में रहते हुए उन्होंने 'वैदेह' उपनाम से भी कविताएँ लिखी थीं। सन् 1936 में सिंहल में 'विद्यालंकार परिवेण' में ही 'नागार्जुन' नाम ग्रहण किया। आरंभ में उनकी हिन्दी कविताएँ भी 'यात्री' के नाम से ही छपी थीं। वस्तुतः कुछ मित्रों के आग्रह पर 1941 ईस्वी के बाद उन्होंने हिन्दी में नागार्जुन के अलावा किसी नाम से न लिखने का निर्णय लिया था।

नागार्जुन की पहली प्रकाशित रचना एक मैथिली कविता थी जो 1929 ई. में लहेरियासराय, दरभंगा से प्रकाशित 'मिथिला' नामक पत्रिका में छपी थी। उनकी पहली हिन्दी रचना 'राम के प्रति' नामक कविता थी जो 1934 ई. में लाहौर से निकलने वाले साप्ताहिक 'विश्वबन्धु' में छपी थी।

नागार्जुन लगभग अड़सठ वर्ष (सन् 1929 से 1997) तक रचनाकर्म से जुड़े रहे। कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत, निबन्ध, बाल-साहित्य – सभी विधाओं में उन्होंने कलम चलायी। मैथिली एवं संस्कृत के अतिरिक्त बंगला से भी वे जुड़े रहे। बंगला भाषा और साहित्य से नागार्जुन का लगाव शुरू से ही रहा। काशी में रहते हुए उन्होंने अपने छात्र जीवन में बंगला साहित्य को मूल बंगला में पढ़ना शुरू किया। मौलिक रुप से बंगला लिखना फरवरी 1978 ई. में शुरू किया और सितंबर 1979 ई. तक लगभग 50 कविताएँ लिखी जा चुकी थीं। कुछ रचनाएँ बँगला की पत्र-पत्रिकाओं में भी छपीं। कुछ हिंदी की लघु पत्रिकाओं में लिप्यांतरण और अनुवाद सहित प्रकाशित हुईं। मौलिक रचना के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत, मैथिली और बंगला से अनुवाद कार्य भी किया। कालिदास उनके सर्वाधिक प्रिय कवि थे और 'मेघदूत' प्रिय पुस्तक। मेघदूत का मुक्तछंद में अनुवाद उन्होंने 1953 ई. में किया था। जयदेव के 'गीत गोविंद' का

भावानुवाद वे 1948 ई. में ही कर चुके थे। वस्तुत: 1944 और 1954 ई. के बीच नागार्जुन ने अनुवाद का काफी काम किया। बंगला उपन्यासकार शरतचंद्र के कई उपन्यासों और कथाओं का हिंदी अनुवाद छपा भी। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के उपन्यास 'पृथ्वीवल्लभ' का गुजराती से हिंदी में अनुवाद 1945 ई. में किया था। 1965 ई. में उन्होंने विद्यापति के सौ गीतों का भावानुवाद किया था। बाद में विद्यापति के और गीतों का भी उन्होंने अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने विद्यापति की 'पुरुष-परीक्षा' (संस्कृत) की तेरह कहानियों का भी भावानुवाद किया था जो 'विद्यापति की कहानियाँ' नाम से 1964 ई. में प्रकाशित हुई थी।

प्रकाशित कृतियाँ

कविता-संग्रह

युगधारा
सतरंगे पंखों वाली -1959
प्यासी पथराई आँखें -1962
तालाब की मछलियाँ -1974
तुमने कहा था -1980
खिचड़ी विप्लव देखा हमने -1980
हजार-हजार बाँहों वाली -1981
पुरानी जूतियों का कोरस -1983
रत्नगर्भ -1984
ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!! -1985
आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने -1986
इस गुब्बारे की छाया में -1990
भूल जाओ पुराने सपने -1994
अपने खेत में -1997
प्रबंध काव्य-
भस्मांकुर -1970
भूमिजा

उपन्यास

रतिनाथ की चाची –1948
बलचनमा –1952
नयी पौध –1953
बाबा बटेसरनाथ –1954
वरुण के बेटे –1956–57
दु:खमोचन –1956–57
कुंभीपाक –1960 (1972 में 'चम्पा' नाम से भी प्रकाशित)
हीरक जयन्ती –1962 (1979 में 'अभिनन्दन' नाम से भी प्रकाशित)
उग्रतारा –1963
जमनिया का बाबा –1968 (इसी वर्ष 'इमरतिया' नाम से भी प्रकाशित)
गरीबदास –1990 (1979 में लिखित)

संस्मरण

एक व्यक्ति: एक युग –1963

कहानी संग्रह

आसमान में चन्दा तैरे –1982

आलेख संग्रह

अन्नहीनम् क्रियाहीनम् –1983
बम्भोलेनाथ –1987

बाल साहित्य

कथा मंजरी भाग–1 –1958
कथा मंजरी भाग–2 –
मर्यादा पुरुषोत्तम राम –1955 (बाद में 'भगवान राम' के नाम से तथा अब 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के नाम से प्रकाशित)
विद्यापति की कहानियाँ –1964

मैथिली रचनाएँ

चित्र (कविता-संग्रह) -1949

पत्रहीन नग्न गाछ (") -1967

पका है यह कटहल (") -1995 ('चित्र' एवं 'पत्रहीन नग्न गाछ' की सभी कविताओं के साथ 52 असंकलित मैथिली कविताएँ हिंदी पद्यानुवाद सहित)

पारो (उपन्यास) -1946

नवतुरिया (") -1954

बंगला रचनाएँ-

मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा -1997 (देवनागरी लिप्यांतर के साथ हिंदी पद्यानुवाद)

संचयन एवं समग्र

नागार्जुन रचना संचयन - सं.-राजेश जोशी (साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन-चुनी हुई रचनाएँ -तीन खण्ड (वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन रचनावली -2003, सात खण्डों में, सं. शोभाकांत (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य

नागार्जुन का रचना-संसार - विजय बहादुर सिंह (प्रथम संस्करण-1982, संभावना प्रकाशन, हापुड़ से, पुनर्प्रकाशन-2009, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन की कविता - अजय तिवारी, (संशोधित संस्करण-2005) वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन का कवि-कर्म - खगेंद्र ठाकुर (प्रथम संस्करण-2013, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नयी दिल्ली से)

जनकवि हूँ मैं - संपादक- रामकुमार कृषक (प्रथम संस्करण-2012 'अलाव' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूप?', इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, नयी दिल्ली से)

नागार्जुन–अंतरंग और सृजन–कर्म – संपादक– मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, चंचल चौहान ऽश्नया पथ' के नागार्जुन जन्मशती विशेषांक का संशोधित पुस्तकीय रूपश, (लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद से)

आलोचना सहस्राब्दी अंक 43 (अक्टूबर–दिसंबर 2011), संपादक– अरुण कमल

तुमि चिर सारथि यात्री नागार्जुन आख्यान तारानंद वियोगी (मैथिली से अनुवाद–केदार कानन, अविनाश) (पहले 'पहल' पुस्तिका के रूप में फिर अंतिका प्रकाशन, दिल्ली से)

पुरस्कार

साहित्य अकादमी पुरस्कार –1969 (मैथिली में, 'पत्र हीन नग्न गाछ' के लिए)

भारत भारती सम्मान (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा)

मैथिलीशरण गुप्त सम्मान (मध्य प्रदेश सरकार द्वारा)

राजेन्द्र शिखर सम्मान –1994 (बिहार सरकार द्वारा)

साहित्य अकादमी की सर्वोच्च फेलोशिप से सम्मानित

राहुल सांकृत्यायन सम्मान पश्चिम बंगाल सरकार से

समालोचना

नागार्जुन के काव्य में अब तक की पूरी भारतीय काव्य–परंपरा ही जीवंत रूप में उपस्थित देखी जा सकती है। उनका कवि–व्यक्तित्व कालिदास और विद्यापति जैसे कई कालजयी कवियों के रचना–संसार के गहन अवगाहन, बौद्ध एवं मार्क्सवाद जैसे बहुजनोन्मुख दर्शन के व्यावहारिक अनुगमन तथा सबसे बढ़कर अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से प्रत्यक्ष जुड़ाव तथा लोक संस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान से निर्मित है। उनका 'यात्रीपन' भारतीय मानस एवं विषय–वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। मैथिली, हिन्दी और संस्कृत के अलावा पालि, प्राकृत, बांग्ला, सिंहली, तिब्बती आदि अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान भी उनके लिए इसी उद्देश्य में सहायक रहा है। उनका गतिशील, सक्रिय और प्रतिबद्ध सुदीर्घ जीवन उनके काव्य में जीवंत रूप से प्रतिध्वनित–प्रतिबिंबित है। नागार्जुन सही अर्थों में भारतीय मिट्टी से बने आधुनिकतम कवि हैं। उन्होंने आजादी के पहले और बाद में भी

कई बड़े जनांदोलनों में भाग लिया था। 1939 से 1942 के बीच बिहार में किसानो के एक प्रदर्शन का नेतृत्व करने की वजह से जेल में रहे। आजादी के बाद लम्बे समय तक वो पत्रकारिता से भी जुड़े रहे। जन संघर्ष में अडिग आस्था, जनता से गहरा लगाव और एक न्यायपूर्ण समाज का सपना, ये तीन गुण नागार्जुन के व्यक्तित्त्व में ही नहीं, उनके साहित्य में भी घुले-मिले हैं। निराला के बाद नागार्जुन अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने इतने छंद, इतने ढंग, इतनी शैलियाँ और इतने काव्य रूपों का इस्तेमाल किया है। पारंपरिक काव्य रूपों को नए कथ्य के साथ इस्तेमाल करने और नए काव्य कौशलों को संभव करनेवाले वे अद्वितीय कवि हैं। उनके कुछ काव्य शिल्पों में ताक-झाँक करना हमारे लिए मूल्यवान हो सकता है। उनकी अभिव्यक्ति का ढंग तिर्यक भी है, बेहद ठेठ और सीधा भी। अपनी तिर्यकता में वे जितने बेजोड़ हैं, अपनी वाग्मिता में वे उतने ही विलक्षण हैं। काव्य रूपों को इस्तेमाल करने में उनमें किसी प्रकार की कोई अंतर्बाधा नहीं है। उनकी कविता में एक प्रमुख शैली स्वगत में मुक्त बातचीत की शैली है। नागार्जुन की ही कविता से पद उधार लें तो कह सकते हैं-स्वागत शोक में बीज निहित हैं विश्व व्यथा के। भाषा पर बाबा का गजब अधिकार है। देसी बोली के ठेठ शब्दों से लेकर संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय पदावली तक उनकी भाषा के अनेक स्तर हैं। उन्होंने तो हिन्दी के अलावा मैथिली, बँगला और संस्कृत में अलग से बहुत लिखा है। जैसा पहले भाव-बोध के संदर्भ में कहा गया, वैसे ही भाषा की दृष्टि से भी यह कहा जा सकता है कि बाबा की कविताओं में कबीर से लेकर धूमिल तक की पूरी हिन्दी काव्य-परंपरा एक साथ जीवंत है। बाबा ने छंद से भी परहेज नहीं किया, बल्कि उसका अपनी कविताओं में क्रांतिकारी ढंग से इस्तेमाल करके दिखा दिया। बाबा की कविताओं की लोकप्रियता का एक आधार उनके द्वारा किया गया छंदों का सधा हुआ चमत्कारिक प्रयोग भी है।

समकालीन प्रमुख हिंदी साहित्यकार उदय प्रकाश के अनुसार 'यह जोर देकर कहने की जरूरत है कि बाबा नागार्जुन बीसवीं सदी की हिंदी कविता के सिर्फ 'भदेस' और मात्र विद्रोही मिजाज के कवि ही नहीं, वे हिंदी जाति के सबसे अद्वितीय मौलिक बौद्धिक कवि थे। वे सिर्फ 'एजिट पोएट' नहीं, पारंपरिक भारतीय काव्य परंपरा के विरल 'अभिजात' और 'एलीट पोएट' भी थे।' उदय प्रकाश ने बाबा नागार्जुन के व्यक्तित्व-निर्माण एवं कृतित्त्व की व्यापक महत्ता को एक साथ संकेतित करते हुए एक ही महावाक्य में लिखा है कि 'खुद

ही विचार करिये, जिस कवि ने बौद्ध दर्शन और मार्क्सवाद का गहन अध्ययन किया हो, राहुल सांकृत्यायन और आनंद कौसल्यायन जैसी प्रचंड मेधाओं का साथी रहा हो, जिसने प्राचीन भारतीय चिंतन परंपरा का ज्ञान पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत जैसी भाषाओं में महारत हासिल करके प्राप्त किया हो, जिस कवि ने हिंदी, मैथिली, बंगला और संस्कृत में लगभग एक जैसा वाग्वैदग्ध्य अर्जित किया हो, अपनी मूल प्रज्ञा और संज्ञान में जो तुलसी और कबीर की महान संत परंपरा के निकटस्थ हो, जिस रचनाकार ने 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे' जैसे उपन्यासों के द्वारा हिंदी में आंचलिक उपन्यास लेखन की नींव रखी हो जिसके चलते हिंदी कथा साहित्य को रेणु जैसी ऐतिहासिक प्रतिभा प्राप्त हुई हो, जिस कवि ने अपने आक्रांत निजी जीवन ही नहीं बल्कि अपने समूचे दिक् और काल की, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमों और व्यक्तित्त्व पर अपनी निर्भ्रांत कलम चलाई हो, (संस्कृत में) बीसवीं सदी के किसी आधुनिक राजनीतिक व्यक्तित्व (लेनिन) पर समूचा खण्डकाव्य रच डाला हो, जिसके हैंडलूम के सस्ते झोले में मेघदूतम् और 'एकॉनमिक पॉलिटिकल वीकली' एक साथ रखे मिलते हों, जिसकी अंग्रेजी भी किसी समकालीन हिंदी कवि या आलोचक से बेहतर ही रही हो, जिसने रजनी पाम दत्त, नेहरू, बर्तोल्त ब्रेख्ट, निराला, लूशुन से लेकर विनोबा, मोरारजी, जेपी, लोहिया, केन्याता, एलिजाबेथ, आइजन हावर आदि पर स्मरणीय और अत्यंत लोकप्रिय कविताएं लिखी हों – ... बीसवीं सदी की हिंदी कविता का प्रतिनिधि बौद्धिक कवि वह है..।'

अमृतलाल नागर

अमृतलाल नागर हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे। आपको भारत सरकार द्वारा 1981 में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

जीवनी

अमृत लाल नागर का जन्म 17 अगस्त 1916 ई. को गोकुलपुरा, आगरा (उत्तर प्रदेश) में एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम राजाराम नागर था। आपके पितामह पं. शिवराम नागर 1895 में लखनऊ आकर बस गए थे। आपकी पढ़ाई हाईस्कूल तक ही हुई। फिर स्वाध्याय द्वारा साहित्य, इतिहास, पुराण, पुरातत्त्व व समाजशास्त्र का अध्ययन। बाद में हिन्दी, गुजराती,

मराठी, बंगला, अंग्रेजी पर अधिकार। पहले नौकरी, फिर स्वतंत्र लेखन, फिल्म लेखन का खासा काम किया। 'चकल्लस' का संपादन भी किया। आकाशवाणी, लखनऊ में ड्रामा प्रोड्यूसर भी रहे।

1932 में निरंतर लेखन किया। शुरूआत में मेघराज इंद्र के नाम से कविताएं लिखीं। 'तस्लीम लखनवी' नाम से व्यंग्यपूर्ण स्केच व निबंध लिखे तो कहानियों के लिए अमृतलाल नागर मूल नाम रखा। आपकी भाषा सहज, सरल दृश्य के अनुकूल है। मुहावरों, लोकोक्तियों, विदेशी तथा देशज शब्दों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। भावात्मक, वर्णनात्मक, शब्द चित्रात्मक शैली का प्रयोग इनकी रचनाओं में हुआ है।

रचनाएँ

उपन्यास–महाकाल (1947) (1970 में 'भूख' शीर्षक से प्रकाशित), बूँद और समुद्र (1956), शतरंज के मोहरे (1959), सुहाग के नुपूर (1960), अमृत और विष (1966), सात घूँघट वाला मुखड़ा (1968), एकदा नैमिषारण्ये (1972), मानस का हंस (1973), नाच्यौ बहुत गोपाल (1978), खंजन नयन (1981), बिखरे तिनके (1982), अग्निगर्भा (1983), करवट (1985), पीढ़ियाँ (1990)।

कहानी संग्रह–वाटिका (1935), अवशेष (1937), तुलाराम शास्त्री (1941), आदमी, नहीं! नहीं! (1947), पाँचवा दस्ता (1948), एक दिल हजार दास्ताँ (1955), एटम बम (1956), पीपल की परी (1963), कालदंड की चोरी (1963), मेरी प्रिय कहानियाँ (1970), पाँचवा दस्ता और सात कहानियाँ (1970), भारत पुत्र नौरंगीलाल (1972), सिकंदर हार गया (1982), एक दिल हजार अफसाने (1986 - लगभग सभी कहानियों का संकलन)।

साहित्यिक जीवन

नागर जी किस्सागोई में माहिर हैं। यद्यपि गम्भीर उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के कारण कहीं-कहीं उनके उपन्यासों में बहसों के दौरान तात्विक विवेचन के लम्बे-लम्बे प्रंसग भी आ जाते हैं। तथापि वे अपनी कृतियों को उपदेशात्मक या उबाऊ नहीं बनने देते। रोचक कथाओं और ठोस चरित्रों की भूमिका से ही विचारों के आकाश की ओर भरी गयी इन उड़ानों को साधारण पाठक भी झेल

लेते हैं। उनके साहित्य का लक्ष्य भी साधारण नागरिक है, अपने को असाधारण मानने वाला साहित्यकार या बुद्धिजीवी समीक्षक नहीं। समाज में खूब घुल-मिलकर अपने देखे-सुने और अनुभव किये चरित्रों, प्रसंगों को तनिक कल्पना के पुट से वे अपने कथा साहित्य में ढालते रहे हैं। अपनी आरम्भिक कहानियों में उन्होंने कहीं-कहीं स्वछन्दतावादी भावुकता की झलक दी है। किन्तु उनका जीवन बोध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया, त्यों-त्यों वे अपने भावातिरेक को संयत और कल्पना को यथार्थाश्रित करते चले गये। अपने पहले अप्रौढ़ उपन्यास महाकाल में सामाजिक यथार्थ के जिस स्वच्छ बोध का परिचय उन्होंने दिया था, निहित स्वार्थ के विविध रूपों को साम्राज्यवादी उत्पीड़न, जमींदारों, व्यापारियों द्वारा साधारण जनता के शोषण, साम्प्रदायिकतावादियों के हथकंडों आदि को बेनकाब करने का जो साहस दिखाया था, वह परवर्ती उपन्यासों में कलात्मक संयम के साथ-साथ उत्तरोत्तर निखरता चला गया।

'बूँद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसे वर्तमान जीवन पर लिखित उपन्यासों में ही नहीं, 'एकदा नैमिषारण्ये' तथा 'मानस का हंस' जैसे पौराणिक-ऐतिहासिक पीठिका पर रचित सांस्कृतिक उपन्यासों में भी उत्पीड़कों का पर्दाफाश करने और उत्पीड़ितों का साथ देने का अपना व्रत उन्होंने बखूबी निभाया है। अतीत को वर्तमान से जोड़ने और प्रेरणा के स्रोत के रूप में प्रस्तुत करने के संकल्प के कारण ही 'एकदा नैमिषारण्ये' में पुराणकारों के कथा-सूत्र को भारत की एकात्मकता के लिए किये गये महान् सांस्कृतिक प्रयास के रूप में, तथा 'मानस का हंस' में तुलसी की जीवन कथा को आसक्तियों और प्रलोभनों के संघातों के कारण डगमगा कर अडिग हो जाने वाली 'आस्था के संघर्ष की कथा' एवं उत्पीड़ित लोकजीवन को संजीवनी प्रदान करने वाली 'भक्तिधारा के प्रवाह की कथा' के रूप में प्रभावशाली ढंग से अंकित किया है।

अपराध बोध का अनुभव

सामाजिक परिस्थितियों से जूझते हुए व्यक्ति के अंतर्मन में कामवृत्ति के घात प्रतिघात का चित्रण भी उन्होंने विश्वसनीय रूप से किया है। काम को इच्छाशक्ति गीत और सृजन के प्रेरक के रूप में ग्रहण करने के कारण वे उसे बहुत अधिक महत्व देते हैं। काम अपने आधारों (व्यक्तियों) के सत, रज, तम के अंशों की न्यूनाधिकता के कारण सहस्रों रूप धारण कर सकता है। अपने

निकृष्ट रूप में वह बलात्कार या इन्द्रिय भोग मात्र बनकर रह जाता है तो अपने उत्कृष्ट रूप में प्रेम की संज्ञा पाता है। नागर जी ने कुंठारहित होकर किन्तु उत्तरदायित्व के बोध के साथ काम के विकृत (विरहेश और बड़ी, लच्छू और उमा माथुर, लवसूल और जुआना आदि), स्वरूप (सज्जन और वनकन्या, रमेश और रानीवाला आदि) और दिव्य (सोमाहुति और हज्या, तुलसी और रत्नावली) एवं इनके अनेकानेक मिश्रित रूपों की छवियाँ अपनी कृतियों में आँकी हैं। पीड़िता नारी के प्रति उनकी सदा सहानुभूति रही है, चाहे वह कन्नगी के सदृश एकनिष्ठ हो, चाहे माधवी के सदृश वेश्या। स्वार्थी पुरुष की भोग-वासना ही नारी को वेश्या बनाती है। अतः पुरुष होने के कारण उनके प्रति नागर जी अपने मन में अपराध बोध का अनुभव करते हैं। जिसका आंशिक परिमार्जन उन्होंने सद्भावना पूर्ण भेंटवार्ताओं पर आधारित ये कोठेवालियाँ जैसी तथ्यपूर्ण कृति के द्वारा किया है।

जिन्दादिली और विनोदी वृत्ति

नागर जी की जिन्दादिली और विनोदी वृत्ति उनकी कृतियों को कभी विषादपूर्ण नहीं बनने देती। 'नवाबी मसनद' और 'सेठ बाँकेमल' में हास्य व्यंग्य की जो धारा प्रवाहित हुई है, वह अनन्त धारा के रूप में उनके गम्भीर उपन्यासों में भी विद्यमान है और विभिन्न चरित्रों एवं स्थितियों में बीच-बीच में प्रकट होकर पाठक को उल्लसित करती रहती है। नागर जी के चरित्र समाज के विभिन्न वर्गों से गृहीत हैं। उनमें अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोग हैं, किन्तु उनके चरित्र-चित्रण में मनोविश्लेषणात्मकता को कम और घटनाओं के मध्य उनके व्यवहार को अधिक महत्व दिया गया है। अनेकानेक एकायामी सफल विश्वसनीय चरित्रों के साथ-साथ उन्होंने बूँद और समुद्र की 'ताई' जैसे जटिल चरित्रों की सृष्टि की है, जो घृणा और करुणा, विद्वेष और वात्सल्य, प्रतिहिंसा और उत्सर्ग की विलक्षण समष्टि है।

सामाजिक परिदृश्य को उभारने की चेष्टा

कई समीक्षकों की शिकायत रही है कि नागर जी अपने उपन्यासों में 'संग्रहवृत्ति' से काम लेते हैं, 'चयनवृत्ति' से नहीं। इसीलिए उनमें अनपेक्षित विस्तार हो जाता है। वस्तुतः नागर जी के बड़े उपन्यासों में समग्र सामाजिक जीवन को झलकाने की दृष्टि अद्यतन है। अतः थोड़े से चरित्रों पर आधारित

सुबद्ध कथानक पद्धति के स्थान पर वे शिथिल सम्बन्धों से जुड़ी और एक-दूसरे की पूरक लगने वाली कथाओं के माध्यम से यथासम्भव पूरे सामाजिक परिदृश्य को उभारने की चेष्टा करते हैं। महाभारत एवं पुराणों के अनुशीलन ने उन्हें इस पद्धति की ओर प्रेरित किया है। शिल्प पर अनावश्यक बल देने को वे उचित नहीं मानते। उनका कहना है कि फॉर्म के लिए मैं परेशान नहीं होता, बात जब भीतर-भीतर पकने लगती है तो वह अपना फॉर्म खुद अपने साथ लाती है। मैं सरलता को लेखक के लिए अनिवार्य गुण मानता हूँ। जटिलता, कुत्रिमता, दाँव-पेंच से लेखक महान् नहीं बन सकता। इसीलिए केवल 'फॉर्म' के पीछे दौड़ने वाले लेखक को मैं टुटपूँजिया समझता हूँ।

प्रमुख कृतियाँ

अमृतलाल नागर ने 1928 में छिटपुट एवं 1932 से 1933 तक जमकर लिखना शुरू किया। इनकी प्रारम्भिक कविताएँ मेघराज इन्द्र के नाम से, कहानियाँ अपने नाम से तथा व्यंग्यपूर्ण रेखाचित्र-निबन्ध आदि तस्लीम लखनवी के नाम से लिखित हैं। यह कथाकार के रूप में सुप्रतिष्ठित थे। यह 'बूँद और समुद्र' (1956) के प्रकाशन के साथ हिन्दी के प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों के रूप में मान्य हैं।

नाटक—युगावतार (1956), बात की बात (1974), चंदन वन (1974), चक्करदार सीढ़ियाँ और अँधेरा (1977), उतार चढ़ाव (1977), नुक्कड़ पर (1981), चढ़त न दूजो रंग (1982)।

व्यंग्य—नवाबी मसनद (1939), सेठ बाँकेमल (1944), कृपया दाएँ चलिए (1973), हम फिदाये लखनऊ (1973), मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (1985), चकल्लस (1986)—उपलब्ध स्फुट हास्य-व्यंग्य रचनाओं का संकलन।

अन्य कृतियाँ—गदर के फूल (1957 - 1857 की इतिहास-प्रसिद्ध क्रांति के संबंध में महत्त्वपूर्ण सर्वेक्षण), ये कोठेवालियाँ (1960 - वेश्याओं की समस्या पर एक मौलिक एवं अनूठा सामाजिक सर्वेक्षण), जिनके साथ जिया (1973 - साहित्यकारों के संस्मरण), चैतन्य महाप्रभु (1978 - आत्म परक लेखों का संकलन), टुकड़े-टुकड़े दास्तान (1986 - आत्मोपरक लेखों का संकलन), साहित्य और संस्कृति (1986 - साहित्यिक एवं ललित निबंधों का

संकलन), अमृत मंथन (1991 - अमृतलाल नागर के साक्षात्कार (संपादक–डॉ. शरद नागर एवं डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी), अमृतलाल नागर रचनावली (संपादक–डॉ. शरद नागर, 12 खंडों में, 1992), फिल्मर क्षेत्रे रंगक्षेत्रे (2003 - नागरजी के फिल्मी, रंगमंच तथा रेडियो नाटक संबंधी लेखों का संकलन), अत्र कुशलं तत्रस्तु (2004 - नागरजी एवं रामविलास शर्मा के व्यक्तिगत पत्राचार का संग्रह)।

बाल साहित्य– नटखट चाची (1941), निंदिया आजा (1950), बजरंगी नौरंगी (1969), बजरंगी पहलवान (1969), बाल महाभारत (1971), इतिहास झरोखे (1970), बजरंग स्महगलरों के फंदे में (1972), हमारे युग निर्माता (1982), छः युग निर्माता (1982), अक्ल बड़ी या भैंस (1982), आओ बच्चों नाटक लिखें (1988), सतखंडी हवेली का मालिक (1990), फूलों की घाटी (1997), बाल दिवस की रेल (1997), सात भाई चंपा (1998), इकलौता लाल (2001), साझा (2001), सोमू का जन्म-दिन (2001), शांति निकेतन के संत का बचपन (2001), त्रिलोक विजय (2001)।

अनुवाद–बिसाती (1935 - मोपासाँ की कहानियाँ), प्रेम की प्यास (1937 - गुस्तामव फ्लाबेर के उपन्यास 'मादाम बोवरी' का संक्षिप्त भावानुवाद), काला पुरोहित (1939 - एंटन चेखव की कहानियाँ), आँखों देखा गदर (1948), विष्णु भट्ट गोडसे की मराठी पुस्तक 'माझा प्रवास' का अनुवाद), 5. दो फक्कड़ (1955 - कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के तीन गुजराती नाटक), सारस्वत (1956 - मामा वरेरकर के मराठी नाटक का अनुवाद)।

संपादन–सुनीति (1934), सिनेमा समाचार (1935-36), अल्ला कह दे (20 दिसंबर, 1937 से 3 जनवरी 1938, साप्ताहिक), चकल्लस (फरवरी, 1938 से 3 अक्टूबर, 1938, साप्ताहिक), नया साहित्य (1945), सनीचर (1949), प्रसाद (1953-54) मासिक पत्रों का संपादन किया।।

संस्मरण–'गदर के फूल', 'ये कोठेवालियां', 'जिनके साथ जिया।'

अन्य–मोपासां, चेखव, लाबेयर, के. एम. मुंशी, मामा वरेरकर की रचनाओं के अनुवाद व विपुल बाल-साहित्य। नाटक, रेडियो नाटक व फीचर भी अनेक। 1940 से 1947 तक फिल्म सेनेरियो का लेखन कार्य किया। 1953 से 1956 तक आकाशवाणी लखनऊ में ड्रामा प्रोड्यूसर रहे।

पुरस्कार

'बूँद और समुद्र' पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा का विक्रम संवत 2015 से 2018 तक का बटुक प्रसाद पुरस्कार एवं सुधाकर पदक,

'सुहाग के नूपुर' पर उत्तर प्रदेश शासन का वर्ष 1962-63 का प्रेमचंद पुरस्कार,

'अमृत और विष' पर वर्ष 1970 का सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार।

'अमृत और विष' पर वर्ष 1967 का साहित्य अकादेमी पुरस्कार।

'मानस का हंस' पर मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद का वर्ष 1972 का अखिल भारतीय वीरसिंह देव पुरस्कार।

'मानस का हंस' पर उत्तर प्रदेश शासन का वर्ष 1973-74 का राज्य साहित्यिक पुरस्कार।

हिंदी रंगमंच की विशिष्ट सेवा हेतु सन 1970-71 का उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी पुरस्काार,

'खंजन नयन' पर भारतीय भाषा, कलकत्ता (कोलकाता) का वर्ष 1984 का नथमल भुवालका पुरस्कार,

वर्ष 1985 का उ.प्र. हिंदी संस्थान का सर्वोच्च भारत भारती सम्मान (22 दिसंबर, 1989 को प्रदत्त),

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि से विभूषित।

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव हिन्दी के सुपरिचित लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार व आलोचक होने के साथ-साथ हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय संपादक भी थे। नयी कहानी के नाम से हिन्दी साहित्य में उन्होंने एक नयी विधा का सूत्रपात किया। उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द द्वारा सन् 1930 में स्थापित साहित्यिक पत्रिका हंस का पुनर्प्रकाशन उन्होंने प्रेमचन्द की जयन्ती के दिन 31 जुलाई 1986 को प्रारम्भ किया था। यह पत्रिका सन् 1953 में बन्द हो गयी थी। इसके प्रकाशन का दायित्व उन्होंने स्वयं लिया और अपने मरते दम तक पूरे 27 वर्ष निभाया।

28 अगस्त 1929 ई. को उत्तर प्रदेश के शहर आगरा में जन्मे राजेन्द्र यादव ने 1951 ई. में आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा हिन्दी साहित्य में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। उनका विवाह सुपरिचित हिन्दी

लेखिका मन्नू भण्डारी के साथ हुआ था। वे हिन्दी साहित्य की सुप्रसिद्ध हंस पत्रिका के सम्पादक थे।

हिन्दी अकादमी, दिल्ली द्वारा राजेन्द्र यादव को उनके समग्र लेखन के लिये वर्ष 2003-04 का सर्वोच्च सम्मान (शलाका सम्मान) प्रदान किया गया था।

28 अक्टूबर 2013 की रात्रि को नई दिल्ली में 84 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ।

प्रकाशित पुस्तकें

कहानी-संग्रह

देवताओं की मूर्तियाँ: 1951
खेल-खिलौने: 1953
जहाँ लक्ष्मी कैद है: 1957
अभिमन्यु की आत्महत्या: 1959
छोटे-छोटे ताजमहल: 1961
किनारे से किनारे तक: 1962
टूटना: 1966
चौखटे तोड़ते त्रिकोण: 1987
ये जो आतिश गालिब (प्रेम कहानियाँ): 2008
यहाँ तक: पड़ाव-1, पड़ाव-2(1989)
वहाँ तक पहुँचने की दौड़, हासिल

उपन्यास

सारा आकाश: 1955 ('प्रेत बोलते हैं' के नाम से 1951 में)
उखड़े हुए लोग: 1956
कुलटा: 1958
शह और मात: 1959
अनदेखे अनजान पुल: 1963
एक इंच मुस्कान (मन्नू भंडारी के साथ) 1963,
मन्त्रविधा: 1967
एक था शैलेन्द्र: 2007

कविता-संग्रह

आवाज तेरी है: 1960

नाटक

चैखव के तीन नाटक (सीगल, तीन बहनें, चेरी का बगीचा)।

अनुवाद

उपन्यास–टक्कर (चेखव), हमारे युग का एक नायक (लर्मन्तोव) प्रथम-प्रेम (तुर्गनेव), वसन्त-प्लावन (तुर्गनेव), एक मछुआ–एक मोती (स्टाइनबैक), अजनबी (कामू)- ये सारे उपन्यास 'कथा शिखर' के नाम से दो खण्डों में- 1994, नरक ले जाने वाली लिफ्ट– 2002, स्वस्थ आदमी के बीमार विचार– 2012।

समीक्षा-निबन्ध

कहानी: स्वरूप और संवेदना: 1968, प्रेमचन्द की विरासत: 1978, अठारह उपन्यास: 1981, औरों के बहाने: 1981, काँटे की बात (बारह खण्ड)1994, कहानी अनुभव और अभिव्यक्ति: 1996, उपन्यास: स्वरूप और संवेदना: 1998, आदमी की निगाह में औरत: 2001, वे देवता नहीं हैं– 2001, मुड़-मुड़के देखता हूँरू 2002, अब वे वहाँ नहीं रहते: 2007, मेरे साक्षात्कार: 1994, काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता–2008, जवाब दो विक्रमादित्य (साक्षात्कार): 2007।

सम्पादन

एक दुनिया समानान्तर: 1967,

प्रेमचन्द द्वारा स्थापित कथा-मासिक 'हंस' का अगस्त,1986 से

कथा-दशक: हिन्दी कहानियाँ (1981 -90),

आत्मतर्पण: 1994, अभी दिल्ली दूर है: 1995, काली सुर्खियाँ (अश्वेत कहानी-संग्रह): 1995, कथा यात्र: 1967, अतीत होती सदी और त्रासदी का भविष्य: 2000 औरत–उत्तरकथा 2001, देहरी भई बिदेस, कथा जगत की बागी मुस्लिम औरतें, हंस के शुरुआती चार साल 2008 (कहानियाँ), वह सुबह कभी तो आयेगी (साम्प्रदायिकता पर लेख): 2008

मुख्य रचनाएँ

उपन्यास

प्रेत बोलते हैं प्रगति प्रकाशन दिल्ली 1951 (बाद में यही उपन्यास राजकमल प्रकाशन द्वारा 1959 में सारा आकाश के नाम से प्रकाशित हुआ)।

उखड़े हुए लोग–राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1956,

कुलटा–मसिजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958,

शह और मात–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1959,

अनदेखा अनजान पल–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1963,

एक इंच मुस्कान (मन्नू भंडारी के साथ) राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1963।

कथा संग्रह

देवताओं की मृत्यु–आलोक प्रकाशन, बीकानेर, 1951,

खेल खिलौने–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1953,

जहाँ लक्ष्मी कैद है–राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1957,

छोटे-छोटे ताजमहल–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1961,

किनारे से किनारे तक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1962,

वहाँ तक पहुँचने की दौड़–राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

कविता

आवाज तेरी है–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1960।

सम्पादन कार्य

हंस पत्रिका - जनचेतना का प्रगतिशील कथा मासिक। बीते तीन दशकों की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका।

हिन्दी गद्यकार

शिवप्रसाद सिंह

डॉ. शिवप्रसाद सिंह हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। शिवप्रसाद सिंह एक विद्वान साहित्यकार थे, जिनकी बौद्धिकता, तार्किकता और विलक्षण प्रतिभा

सम्पन्नता ने प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य को आन्दोलित किया। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने हिन्दी की उपन्यास, कहानी, निबंध और आलोचना जैसी लगभग सभी गद्य विधाओं में रचनाएँ कीं।

जीवन परिचय

डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1928 को बनारस के जलालपुर गांव में एक जमींदार परिवार में हुआ था। वे प्राय: अपने बाबा के जमींदारी वैभव की चर्चा किया करते, लेकिन उस वातावरण से असंपृक्त बिलकुल पृथक् संस्कारों में उनका विकास हुआ। उनके विकास में उनकी दादी माँ, पिता और माँ का विशेष योगदान रहा, इस बात की चर्चा वे प्राय: करते थे। दादी माँ की अक्षुण्ण स्मृति अंत तक उन्हें रही और यह उसी का प्रभाव था कि उनकी पहली कहानी भी 'दादी माँ' थी, जिससे हिन्दी कहानी को नया आयाम मिला। 'दादी माँ' से नई कहानी का प्रवर्तन स्वीकार किया गया और यही नहीं, यही वह कहानी थी जिसे पहली आंचलिक कहानी होने का गौरव भी प्राप्त हुआ। तब तक रेणु का आंचलिकता के क्षेत्र में आविर्भाव नहीं हुआ था। बाद में डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने अपनी कहानियों में आंचलिकता के जो प्रयोग किए वह प्रेमचंद और रेणु से पृथक् थे। एक प्रकार से दोनों के मध्य का मार्ग था और यही कारण था कि उनकी कहानियां पाठकों को अधिक आकर्षित कर सकी थीं। इसे विडंबना कहा जा सकता है कि जिसकी रचनाओं को साहित्य की नई धारा के प्रवर्तन का श्रेय मिला हो, उसने किसी भी आंदोलन से अपने को नहीं जोड़ा। वे स्वतंत्र एवं अपने ढंग के लेखन में व्यस्त रहे और शायद इसीलिए वे कालजयी कहानियां और उपन्यास लिख सके।

शिक्षा

1949 में उदय प्रताप कॉलेज से इंटरमीडिएट कर शिवप्रसाद जी ने 1951 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से बी.ए. और 1953 में हिन्दी में प्रथम श्रेणी में प्रथम एम.ए. किया था। स्वर्ण पदक विजेता डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने एम.ए. में 'कीर्तिलता और अवहट्ठ भाषा' पर जो लघु शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। उसकी प्रशंसा राहुल सांकृत्यायन और डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने की थी। हालांकि वे द्विवेदी जी के प्रारंभ से ही प्रिय शिष्यों में थे, किन्तु उसके पश्चात् द्विवेदी जी का विशेष प्यार उन्हें मिलने लगा। द्विवेदी जी के निर्देशन में उन्होंने 'सूर पूर्व

ब्रजभाषा और उसका साहित्य' विषय पर शोध संपन्न किया, जो अपने प्रकार का उत्कृष्ट और मौलिक कार्य था।

कार्यक्षेत्र

डॉ. शिवप्रसाद सिंह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 1953 में प्रवक्ता नियुक्त हुए, जहां से 31 अगस्त 1988 में प्रोफेसर पद से उन्होंने अवकाश ग्रहण किया था। भारत सरकार की नई शिक्षा नीति के अंतर्गत यू.जी.सी. ने 1986 में उन्हें 'हिन्दी पाठ्यक्रम विकास केन्द्र' का समन्वयक नियुक्त किया था। इस योजना के अंतर्गत उनके द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाठ्यक्रम को यू.जी.सी. ने 1989 में स्वीकृति प्रदान की थी और उसे देश के समस्त विश्वविद्यालयों के लिए जारी किया था। वे 'रेलवे बोर्ड के राजभाषा विभाग' के मानद सदस्य भी रहे और साहित्य अकादमी, बिरला फाउंडेशन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान जैसी अनेक संस्थाओं से किसी-न-किसी रूप में संबद्ध रहे थे।

साहित्यिक परिचय

शिवप्रसाद सिंह का विकास हालांकि पारिवारिक वातावरण से अलग सुसंस्कारों की छाया में हुआ, लेकिन उनके व्यक्तित्त्व में सदैव एक ठकुरैती अक्खड़पन विद्यमान रहा। किन्तु यह अक्खड़पन प्रायः सुषुप्त ही रहता, जाग्रत तभी होता जहां लेखक का स्वाभिमान आहत होता। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'दादी माँ', 'कर्मनाशा की हार', 'धतूरे का फूल', 'नन्हों', 'एक यात्रा सतह के नीचे', 'राग गूजरी', 'मुरदा सराय' आदि कहानियों तथा 'अलग-अलग वैतरिणी' और 'गली आगे मुड़ती है' थीं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह उन बिरले लेखकों में थे, जो किसी विषय विशेष पर कलम उठाने से पूर्व विषय से संबंधित तमाम तैयारी पूरी करके ही लिखना प्रारंभ करते थे। 'नीला चाँद', 'कोहरे में युद्ध', 'दिल्ली दूर है' या 'शैलूष' इसके जीवंत उदाहरण हैं। 'वैश्वानर' पर कार्य करने से पूर्व उन्होंने संपूर्ण वैदिक साहित्य खंगाल डाला था और कार्य के दौरान भी जब किसी नवीन कृति की सूचना मिली, उन्होंने कार्य को वहीं स्थगित कर जब तक उस कृति को उपलब्ध कर उससे गुजरे नहीं, 'वैश्वानर' लिखना स्थगित रखा। किसी भी जिज्ञासु की भांति वे विद्वानों से उस काल पर चर्चा कर उनके मत को जानते थे। 1993 के दिसंबर में वे इसी उद्देश्य से डॉ. रामविलास शर्मा के यहां पहुंचे थे और लगभग डेढ़ घण्टे विविध वैदिक विषयों पर चर्चा करते रहे

थे। यद्यपि वे अपने साहित्यिक गुरु डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी से प्रभावित थे, लेकिन डॉ. नामवर सिंह के इस विचार से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि 'डॉ. शिवप्रसाद सिंह को ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रेरणा द्विवेदी जी के 'चारुचंद्र लेख' से मिली थी। 'द्विवेदी जी का 'चारुचंद्र लेख' भी ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के राजा गहाड़वाल से संबंधित है।

मुख्य कृतियाँ

उपन्यास

अलग-अलग वैतरणी
गली आगे मुड़ती है
नीला चाँद
शैलूष
हनोज दिल्ली दूर अस्त
औरत
वैश्वानर
कहानी संग्रह
आर-पार की माला
कर्मनाशा की हार
शाखा मृग
इन्हें भी इंतजार है
मुर्दा सराय
राग गूजरी
भेदिए

निबंध संग्रह

शिखरों के सेतु
कस्तूरी मृग
चतुर्दिक
रिपोतार्ज
अंतरिक्ष के मेहमान

नाटक

घाटियाँ गूंजती हैं

आलोचना

विद्यापति
आधुनिक परिवेश और नवलेखन
आधुनिक परिवेश और अस्तित्त्ववाद

जीवनी

उत्तरयोगी श्री अरविंद

संपादन

शांतिनिकेतन से शिवालिक तक

सम्मान और पुरस्कार

वर्ष 1990 में 'नीला चाँद' उपन्यास के लिए डॉ. शिवप्रसाद सिंह को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

अंतिम समय

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे, लेकिन उनके जीवन का बेहद दु:खद प्रसंग था उनकी पुत्री मंजुश्री की मृत्यु। उससे पहले वे दो पुत्रों को खो चुके थे, लेकिन उससे वे इतना न टूटे थे जितना मंजुश्री की मृत्यु ने उन्हें तोड़ा था। वे उसे सर्वस्व लुटाकर बचाना चाहते थे। बेटी की दोनों किडनी खराब हो चुकी थीं। वे उसे लिए दिल्ली से दक्षिण भारत तक भटके थे। अपनी किडनी देकर उसे बचाना चाहते थे, लेकिन नहीं बचा सके थे। उससे पहले चार वर्षों से वे स्वयं साइटिका के शिकार रहे थे, जिससे लिखना कठिन बना रहा था। मंजुश्री की मृत्यु ने उन्हें तोड़ दिया था। आहत लेखक लगभग विक्षिप्त-सा हो गया था। उनकी स्थिति से चिंतित थे डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी और द्विवेदी जी ने अज्ञेय जी को कहा था कि वे उन्हें बुलाकर कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर ले जाएं, स्थान परिवर्तन से शिवप्रसाद सिंह शायद ठीक हो

जाएंगे। साहित्य के महाबली डॉ. शिवप्रसाद सिंह अस्पताल की शय्या पर ऊब गए थे। उन्हें अपनी मृत्यु का आभास भी हो गया था शायद। वे अपने बेटे नरेंद्र से काशी ले जाने की जिद करते, जिसके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को वे अपने तीन उपन्यासों- 'नीला चाँद', 'गली आगे मुड़ती है' और 'वैश्वानर' में जी चुके थे। जिसे विद्वानों ने इतालवी लेखक लारेंस दरेल के 'एलेक्जेंड्रीया क्वाट्रेट' की तर्ज पर ट्रिलाजी कहा था। वे कहते- 'जो होना है वहीं हो' और वे 7 सितंबर, 2008 को 'सहारा' की 9 बजकर 20 मिनट की फ्लाइट से बनारस गए थे। उनके पुत्र नरेंद्र जानते थे कि वे अधिक दिनों साथ नहीं रहेंगे। उन्हें फेफड़ों का कैंसर था, लेकिन इतनी जल्दी साथ छोड़ देंगे, यह कल्पना से बाहर था। 28 सितंबर, 2008 को सुबह चार बजे डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने अपनी आँखें मूंद लीं।

काशीनाथ सिंह

काशीनाथ सिंह (जन्म- 1 जनवरी, 1937 ई.) हिन्दी साहित्य की साठोत्तरी पीढ़ी के प्रमुख कहानीकार, उपन्यासकार एवं संस्मरण-लेखक हैं। काशीनाथ सिंह ने लंबे समय तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर के रूप में अध्यापन कार्य किया। सन् 2011 में उन्हें रेहन पर रग्घू (उपन्यास) के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा राज्य में साहित्य के सर्वोच्च सम्मान भारत भारती से भी सम्मानित किया जा चुका है।

जीवन परिचय

काशीनाथ सिंह का जन्म वाराणसी (अब चंदौली) के जीयनपुर गाँव में 1 जनवरी, सन् 1937 को हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके पैतृक गाँव जीयनपुर के पास के विद्यालयों में ही हुई। सन् 1953 में हाईस्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। हालाँकि गणित विषय में वे कमजोर थे। उच्च शिक्षा के लिए काशीनाथ सिंह बनारस चले आये जहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातक, परास्नातक (1959) और पी-एच.डी. (1963) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही पहले वे हिंदी भाषा का ऐतिहासिक व्याकरण कार्यालय में सन् '62 से '64 तक शोध सहायक रहे। फिर सन् 1965

में वहीं उन्होंने अध्यापन कार्य शुरू किया और हिन्दी साहित्य के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए 1997 में सेवानिवृत्त हुए। हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह काशीनाथ सिंह के बड़े भाई हैं।

साहित्य सृजन

काशीनाथ सिंह की सृजन-यात्र साठोत्तरी पीढ़ी के एक कहानीकार के रूप में आरंभ हुई। उनकी पहली कहानी 'संकट' कृति पत्रिका (सितंबर 1960) में प्रकाशित हुई थी। काशीनाथ सिंह साठोत्तरी पीढ़ी के सुप्रसिद्ध 'चार यार' रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह और ज्ञानरंजन के साथ चौथे 'यार' हैं। उनका पहला उपन्यास अपना मोर्चा 1967 ईस्वी के छात्र आंदोलन को केंद्र में रखकर लिखा गया था। लंबे समय तक वे कहानीकार के रूप में ही विख्यात रहे। बाद में संस्मरण के क्षेत्र में उतरने पर उन्हें काफी ख्याति प्राप्त हुई। 'अपना मोर्चा' के लंबे समय बाद उनका दूसरा उपन्यास 'काशी का अस्सी' प्रकाशित हुआ जो वस्तुतः कहानियों एवं संस्मरणों का सम्मिलित रूप है। सन् 2002 में प्रकाशित 'काशी का अस्सी' को उनका सबसे महत्त्वपूर्ण काम माना जाता है। यह घाटों, अजीब पात्रों और 1970 के दशक के छात्र राजनेताओं के जीवन के अंदरूनी चित्र की तरह लिखा गया है। उपन्यास वाराणसी के रंगीन जीवन के विस्तृत चित्रण में अद्वितीय माना जाता है।

काशीनाथ सिंह साहित्यिक व्यक्तित्वों के जीवन से सम्बद्ध संस्मरण-लेखन की अपनी अनूठी शैली के लिए भी जाने जाते हैं। उनके संस्मरणों को शरद जोशी पुरस्कार-प्राप्त 'याद हो कि न याद हो' तथा 'आछे दिन पाछे गये' में संकलित किया गया है। नामवर सिंह के जीवन पर केंद्रित संस्मरण-पुस्तक है 'घर का जोगी जोगड़ा'। 'काशी का अस्सी' के अंशों को प्रसिद्ध निर्देशक उषा गांगुली द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया है और इसी उपन्यास पर चंद्रप्रकाश द्विवेदी द्वारा फीचर फिल्म मोहल्ला अस्सी का भी निर्माण किया जा चुका है।

काशीनाथ सिंह को 2011 में उनके उपन्यास 'रेहन पर रग्घु' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। हाल के दिनों में 'काशी का अस्सी' पर आधारित एक नाटक 'काशीनामा' भारत और विदेशों में 125 बार आयोजित किया गया है।

प्रकाशित कृतियाँ

कहानी-संग्रह

लोग बिस्तरों पर (1968)
सुबह का डर (1975)
आदमीनामा (1978)
नयी तारीख (1979)
कल की फटेहाल कहानियाँ (1980)
प्रतिनिधि कहानियाँ (1984)
सदी का सबसे बड़ा आदमी (1986)
10 प्रतिनिधि कहानियाँ (1994)
कहानी उपख्यान (सम्पूर्ण कहानियाँ) - 2003 (राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से)
संकलित कहानियाँ (2008)
कविता की नयी तारीख (2010)
खरोंच (2014) (साहित्य भंडार, चाहचंद रोड, इलाहाबाद से)

उपन्यास

अपना मोर्चा - (1972)
काशी का अस्सी - (2002)
रेहन पर रग्घू - (2008)
महुआ चरित - (2012)
उपसंहार - (2014)

संस्मरण

याद हो कि न याद हो -1992
आछे दिन पाछे गए - 2004
घर का जोगी जोगड़ा -2006

शोध-आलोचना

हिंदी में संयुक्त क्रियाएं 1976

आलोचना भी रचना है 1996
लेखक की छेड़छाड़ 2013

नाटक

घोआस (प्रथम प्रकाशन–युयुत्सा पत्रिका, कोलकाता-1969, द्वितीय प्रकाशन–रचना प्रकाशन, इलाहाबाद-1975, तृतीय प्रकाशन–प्रारूप प्रकाशन, इलाहाबाद-1982, 2015 ई. में साहित्य भंडार, चाहचंद रोड, इलाहाबाद से पुनर्प्रकाशित)

साक्षात्कार

गपोड़ी से गपशप 2013 (संपादक- पल्लव)

संपादन

परिवेश (अनियतकालीन पत्रिका 1971-76)
काशी के नाम 2007 (नामवर सिंह के पत्रों का संचयन)
काशीनाथ सिंह पर केंद्रित विशिष्ट साहित्य
कहन पत्रिका का विशेषांक 'साठ के काशी और काशी का साठ', संपादक- मनीष दुबे, 2000 (पुस्तक रूप में कासी पर कहन मीरा पब्लिकेशंस, न्याय मार्ग, इलाहाबाद से)
'बनास जन' का विशेषांक 'गल्पेतर गल्प का ठाठ' 'काशी का अस्सी' पर केंद्रित - 2010 (संपादक- पल्लव, पुस्तक रूप में 'अस्सी का काशी–गल्पेतर गल्प का ठाठ', साहित्य भंडार, चाहचंद रोड, इलाहाबाद से)
संबोधन का विशेषांक (अक्टूबर 2012 - जनवरी 2013) संपादक- कमर मेवाड़ी

सम्मान

कथा सम्मान
समुच्चय सम्मान
शरद जोशी सम्मान
साहित्य भूषण सम्मान
भारत भारती पुरस्कार
साहित्य अकादमी पुरस्कार

मोहन राकेश

मोहन राकेश 'नई कहानी आन्दोलन' के साहित्यकार थे। हिन्दी नाटक के क्षितिज पर मोहन राकेश का उदय उस समय हुआ, जब स्वाधीनता के बाद पचास के दशक में सांस्कृतिक पुनर्जागरण का ज्वार देश में जीवन के हर क्षेत्र को स्पन्दित कर रहा था। उनके नाटकों ने न सिर्फ नाटक का आस्वाद, तेवर और स्तर ही बदल दिया, बल्कि हिन्दी रंगमंच की दिशा को भी प्रभावित किया। आधुनिक हिन्दी साहित्य काल में मोहन राकेश ने अपने लेखन से दूर होते हिन्दी साहित्य को रंगमंच के करीब ला दिया और स्वयं को भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के समकक्ष खड़ा कर दिया।

जीवन परिचय

मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन चुनिंदा साहित्यकारों में हैं जिन्हें 'नयी कहानी आंदोलन' का नायक माना जाता है और साहित्य जगत् में अधिकांश लोग उन्हें उस दौर का 'महानायक' कहते हैं। उन्होंने 'आषाढ़ का एक दिन' के रूप में हिंदी का पहला आधुनिक नाटक भी लिखा। कहानीकार-उपन्यासकार प्रकाश मनु भी ऐसे ही लोगों में शामिल हैं, जो नयी कहानी के दौर में मोहन राकेश को सर्वोपरि मानते हैं। प्रकाश मनु ने कहा 'नयी कहानी आंदोलन' ने हिंदी कहानी की पूरी तस्वीर बदली है। उस दौर में तीन नायक मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव रहे। खुद कमलेश्वर और राजेंद्र यादव भी राकेश को हमेशा सर्वश्रेष्ठ मानते रहे।

जन्म तथा शिक्षा

मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी, 1925 को अमृतसर, पंजाब में हुआ था। उनके पिता पेशे से वकील थे और साथ ही साहित्य और संगीत के प्रेमी भी थे। पिता की साहित्यिक रुचि का प्रभाव मोहन राकेश पर भी पड़ा। मोहन राकेश ने पहले लाहौर के 'ओरियंटल कॉलेज' से 'शास्त्री' की परीक्षा पास की। किशोरावस्था में सिर से पिता का साया उठने के बावजूद उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और पढ़ाई जारी रखी। इसके बाद उन्होंने 'पंजाब विश्वविद्यालय' से हिन्दी और अंग्रेजी में एम.ए. किया। एक शिक्षक के रूप में पेशेवर जिंदगी की शुरुआत करने के साथ ही उनका रुझान लघु कहानियों की ओर हुआ। बाद में उन्होंने

कई नाटक और उपन्यास लिखे। बाद में अनेक वर्षों तक दिल्ली, जालंधर, शिमला और मुम्बई में अध्यापन कार्य करते रहे।

स्वतंत्र लेखन

अपनी साहित्यिक अभिरुचि के कारण मोहन राकेश का अध्यापन कार्य में मन नहीं लगा और एक वर्ष तक उन्होंने 'सारिका' पत्रिका का सम्पादन किया। इस कार्य को भी अपने लेखन में बाधा समझकर इससे किनारा कर लिया और जीवन के अन्त तक स्वतंत्र लेखन ही इनके जीविकोपार्जन का साधन रहा। मोहन राकेश हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार थे। समाज की संवेदनशील अनुभूतियों को चुनकर उनका सार्थक सम्बन्ध खोज निकालना उनकी कहानियों की विषय-वस्तु थी।

साहित्यिक परिचय

हिन्दी नाटकों में भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के बाद का दौर मोहन राकेश का दौर है, जिसमें हिन्दी नाटक दुबारा रंगमंच से जुड़े। हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद के बाद यदि कोई लीक से हटकर नाम उभरता है तो वह मोहन राकेश का है। बीच में और भी कई नाम आते हैं, जिन्होंने आधुनिक हिन्दी नाटक की विकास-यात्रा में महत्त्वपूर्ण पड़ाव तय किए, किन्तु मोहन राकेश का लेखन एक अलग ही स्थान पर नजर आता है। इसलिए ही नहीं कि उन्होंने अच्छे नाटक लिखे, बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने हिन्दी नाटक को अँधेरे बन्द कमरों से बाहर निकाला और एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया।

रचनाएँ

मोहन राकेश की रचनाएँ पाठकों और लेखकों के दिलों को छूती हैं। एक बार जो उनकी रचना को पढ़ता है तो वह पूरी तरह से राकेश के शब्दों में डूब जाता है। राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल', 'अंतराल' और 'बाकलमा खुदा' है। इसके अलावा 'आधे अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' उनके कुछ मशहूर नाटक हैं। 'लहरों के राजहंस' उनका सबसे विख्यात नाटक रहा। मोहन राकेश ने नाटक, उपन्यास, कहानी, यात्रा वृत्तान्त, निबन्ध आदि विधाओं में विपुल साहित्य की रचना की।

कथा साहित्य

मोहन राकेश पहले कहानी विधा के जरिये हिन्दी में आए। उनकी 'मिसपाल', 'आद्रा', 'ग्लासटैंक', 'जानवर' और 'मलबे का मालिक' आदि कहानियों ने हिन्दी कहानी का परिदृश्य ही बदल दिया। वे 'नयी कहानी आन्दोलन' के शीर्ष कथाकार के रूप में चर्चित हुए। मोहन राकेश हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न नाट्य लेखक और उपन्यासकार हैं। उनकी कहानियों में एक निरंतर विकास मिलता है, जिससे वे आधुनिक मनुष्य की नियति के निकट से निकटतर आते गए हैं। उनकी खूबी यह थी कि वे कथा-शिल्प के उस्ताद थे और उनकी भाषा में गजब का सधाव ही नहीं, एक शास्त्रीय अनुशासन भी है। कहानी से लेकर उपन्यास तक में उनकी कथा-भूमि शहरी मध्य वर्ग है। कुछ कहानियों में भारत-विभाजन की पीड़ा बहुत सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है। कहानी के बाद राकेश को सफलता नाट्य-लेखन के क्षेत्र में मिली है।

नाट्य-लेखन

मोहन राकेश को कहानी के बाद नाट्य-लेखन के क्षेत्र में सफलता मिली। मोहन राकेश को हिन्दी नाटकों का अग्रदूत भी कह सकते हैं। हिन्दी नाट्य साहित्य में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद कोई नाम उभरता है तो वह मोहन राकेश का है। उन्होंने अच्छे नाटक लिखे और हिन्दी नाटक को अँधेरे बन्द कमरों से बाहर निकाला और उसे युगों के रोमानी ऐन्द्रजालिक सम्मोहन से उबारकर एक नए दौर के साथ जोड़कर दिखाया। वस्तुतः मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक नहीं हैं। वे हिन्दी में लिखे अवश्य गए हैं, किन्तु वे समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। उन्होंने हिन्दी नाटक को पहली बार अखिल भारतीय स्तर प्रदान किया और सदियों के अलग-थलग प्रवाह को विश्व नाटक की एक सामान्य धारा की ओर भी अग्रसर किया। प्रमुख भारतीय निर्देशकों इब्राहीम अलकाजी, ओम शिवपुरी, अरविन्द गौड़, श्यामानन्द जालान, रामगोपाल बजाज और दिनेश ठाकुर ने मोहन राकेश के नाटकों का निर्देशन किया।

आषाढ़ का एक दिन

राकेश जी की सबसे बड़ी उपलब्धि उनका नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' था, जिसने नाटकों को एक नया आयाम दिया। 'आषाढ़ का एक दिन' सन 1958 में प्रकाशित और नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित एक हिन्दी नाटक है।

कभी-कभी इसे हिन्दी नाटक के आधुनिक युग का प्रथम नाटक कहा जाता है। सन 1959 में इसे वर्ष का सर्वश्रेष्ठ नाटक होने के लिए 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया था। कई प्रसिद्ध निर्देशक इस नाटक को मंच पर ला चुके हैं। 1979 में निर्देशक मणि कौल ने इस पर आधारित एक फिल्म बनाई, जिसने आगे जाकर साल की सर्वश्रेष्ठ फिल्म का 'फिल्म फेयर पुरस्कार' भी जीत लिया। 'आषाढ़ का एक दिन' महाकवि कालिदास के निजी जीवन पर केन्द्रित है, जो 100 ई. पू. से 500 ईसवी के अनुमानित काल में व्यतीत हुआ। इस नाटक का शीर्षक कालिदास की कृति 'मेघदूतम' की शुरुआती पंक्तियों से लिया गया है, क्योंकि आषाढ़ का महीना उत्तर भारत में वर्षा ऋतु का शुरुआती महीना होता है, इसका सीधा अर्थ 'वर्षा ऋतु का एक दिन' है। मोहन राकेश द्वारा रचित 'आषाढ़ का एक दिन' एक त्रिखंडीय नाटक है। इसमें सफलता और प्रेम में से एक को चुनने के संशय से जूझते कालिदास, एक रचनाकार और एक आधुनिक मनुष्य के मन की पहेलियों को रखा गया है। वहीं प्रेम में टूटकर भी प्रेम को नहीं टूटने देने वाली इस नाटक की नायिका मल्लिका के रूप में हिन्दी साहित्य को एक न भूलने वाला योग्य पात्र मिला है।

कथन

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक के प्रकाशन के बाद हिन्दी नाटक और रंगमंच में राकेश जी ने और भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए। वे अपने नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' की भूमिका में कहते है कि 'हिन्दी रंगमंच की हिन्दी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के विवेक को व्यक्त करना होगा हमारे दैनदिन जीवन के रागरंग को प्रस्तुत करने के लिए हमारे संवेदों और स्पदंनों को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा।' राकेश जी को हिन्दी में नये रंग नाटकों का पुरोधा कहा जा सकता है। उनको नाटक की भाषा विषय पर कार्य करने के लिए 'नेहरू फैलोशिप' प्राप्त हुई थी, किन्तु असमय मृत्यु हो जाने के कारण यह काम पूरा नहीं हो सका।

समकालीन लेखक

मोहन राकेश ने हिन्दी नाटक को नई जमीन पर खड़ा कर दिया जो उन्होंने स्वयं ने जमीन तलाशी थी। उनके पूर्ववर्ती प्रयोगधर्मी नाट्यकारों- लक्ष्मीनारायण,

जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती आदि ने जिस विश्वजनीन चेतना को अग्रसर किया था, उसका विकास क्रम मोहन राकेश में देखा जा सकता है और जिन्हें हम आधुनिक भाव बोध का नाम भी दे सकते हैं। इसमें हमने यथार्थवाद, प्रकृतिवाद, प्रतीकवाद, अभिव्यक्तिवाद, एपिक थियेटर या अतियथार्थवाद या असंगतवाद आदि अनेक मत-मतान्तरों में देखा है।

प्रमुख कृतियाँ

मोहन राकेश ने मुख्यत: नाटक और उपन्यास लिखे। नाटक और उपन्यास के अतिरिक्त उन्होंने कुछ संस्कृत नाटकों और विदेशी उपन्यासों का अनुवाद भी किया। इनकी मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं-

अँधेरे बंद कमरे

अँधेरे बंद कमरे प्रसिद्ध साहित्यकार, उपन्यासकार और नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1 जनवरी, 2003 को राजकमल प्रकाशन द्वारा हुआ था।

वर्तमान भारतीय समाज का अभिजातवर्गीय नागर मन दो हिस्सों में विभाजित है- एक में है पश्चिमी आधुनिकतावाद और दूसरे में वंशानुगत संस्कारवाद। इससे इस वर्ग के भीतर जो द्वंद्व पैदा होता है, उससे पूर्वता के बीच रिक्तता, स्वच्छंदता के बीच अवरोध और प्रकाश के बीच अंधकार आ खड़ा होता है। परिणामत: व्यक्ति ऊबने लगता है, भीतर-ही-भीतर क्रोध, ईर्ष्या और संदेह उसे जकड़ लेते हैं, जैसे वह अपने ही लिए अजनबी हो। वह उठता है, और तब इसे हम हरबंस की शक्ल में पहचानते हैं। हरबंस इस उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है, जो दाम्पत्य संबंधों की तलाश में भटक रहा है। हरबंस और नीलिमा के माध्यम से पारस्परिक ईमानदारी, भावनात्मक लगाव और मानसिक समदृष्टि से रिक्त दांपत्य जीवन का इस उपन्यास में प्रभावशाली चित्रण हुआ है। अपनी पहचान के लिए पहचानहीन होते जा रहे भारतीय अभिजातवर्ग की भौतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक महत्त्वाकांक्षाओं के अँधेरे बंद कमरों को खोलने वाला यह उपन्यास हिन्दी की गिनी-चुनी कथाकृतियों में से एक है।

कथासार

मधुसूदन एक पत्रकार है, जो दिल्ली आकर कस्साबपुरा में एक ठकुराइन के यहाँ बसता है। कस्साबपुरा में निम्न सामाजिक स्थिति के लोग रहते हैं। मधुसूदन और ठकुराइन के बीच रस रंग की बातें भी होती रहती हैं। मधुसूदन उस गंदे और घुटन भरे वातावरण से निकलकर कनाट प्लेस की चहल पहल में रहना चाहता है। एक दिन अचानक उसकी भेंट हरबंस से हो जाती है, जिससे उनका परिचय बम्बई में हुआ था। मधुसूदन का परिचय, हरबंस की पत्नी नीलिमा और उसकी सालियाँ शुक्ला और सरोज से हो जाता है। हरबंस उखड़ा-उखड़ा सा रहता है। वह एक कॉलेज में अस्थायी रुप से पढ़ाता है, साहित्यकार बनने की धुन भी लगी रहती है। भारतीय इतिहास पर काम भी करता है। नीलिमा को चित्रकला में शौक था, किन्तु धीरे-धीरे नृत्य कला की ओर उसका झुकाव हो जाता है। दिल्ली से भागकर हरबंस लन्दन चला जाता है और वहाँ पहुँचकर नीलिमा को आमंत्रित करता है। लन्दन पहुँचकर नीलिमा बेबी सिटिंग से तंग आकर उमादत्त-ट्रप के साथ पेरिस चली जाती है। ट्रप लौट आता है और नीलिमा ऊ बानू नामक एक बर्मी कलाकार के साथ दो दिन पेरिस में रुककर पुनः लन्दन लौट आती है। हरबंस दिल्ली लौटकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, कला और सभ्यता के झूठे नकाब में अपने विजन को विस्थापित करता है। नीलिमा के असफल नृत्य प्रदर्शन पर प्रशंसापूर्ण टिप्पणियाँ छपती हैं। हरबंस उसके साथ सहयोग नहीं करता है। नीलिमा हरबंस को छोड़कर चली जाती है। हरबंस रात भर छटपटाता है और मधुसूदन रात भर उसके साथ रहता है। सवेरा होने पर दरवाजा खोलते ही वह नीलिमा को चाय बनाते देखता है। मधुसूदन ने आत्मकथा के रुप में ठकुराइन, हरबंस और नीलिमा, अपनी और सुषमा श्रीवास्तव की कहानी कही है।

चरित्र-विधान

हरबंस इस उपन्यास का नायक है और नीलिमा नायिका। अन्य महत्वपूर्ण पात्रों में लेखक स्वयं मधुसूदन के रूप में उपस्थित है। मधुसूदन के अतिरिक्त मधुसूदन के सम्पर्क में आने वाले अन्य पात्रों में कस्साबपुरा की ठकुराईन और सुषमा श्रीवास्तव हैं। नीलिमा और हरबंस के चरित्र को उजागर करने वाले पात्रों में मुक्ता, सुरजीत और ऊ बानू आदि हैं। हरबंस और नीलिमा के बारे में यह

आरोप लगाया है कि मधुसूदन दोनों के निकट सम्पर्क में रहता है, तथापि वह अपनी तथाकथित तटस्थ दृष्टि से उनमें से किसी भी यथार्थ को प्रस्फुटन करना पसन्द नहीं करता। यह केवल अलग-अलग शीशों में झलकते हुए उनके विभिन्न प्रतिबिम्बों की प्रक्षिप्त करता हुआ चलता है। फल यह देखने में आता है कि दोनों में से एक का भी व्यक्तित्व सुस्पष्ट, सजीव और मूर्त रूप में पाठकों के आगे प्रस्फुटित नहीं हो पाता। दोनों जैसे पुआल के बने स्प्रिंगदार पुतले हों, जिन्हें ऊपर से अनमने ढंग से सजाकर लेखक इच्छानुसार नचाता चलता है। यह आक्षेप हरबंस के बारे में सही है, किन्तु नीलिमा के बारे में सत्य नहीं है। हरबंस दुहरे व्यक्तित्व का प्राणी है, जिसके व्यक्तित्व का गठन एकात्मक रूप से नहीं हुआ है। कभी यह नीलिमा के समक्ष झुकता है और कभी उपेक्षा करता है। नीलिमा से भागता है और कभी अपने पास बुलाता है। नीलिमा में संवेदनशीलता है, कलाकार बनने की कामना होते हुए भी नारीत्व है। पत्नीत्व का उसमें अभाव है, किन्तु संवेदना का नहीं। नीलिमा निश्चित रूप से प्राणवान नारी पात्र है। नीलिमा से भी अधिक प्राणवान पात्र कस्साबपुरा की ठकुराइन है। उसकी सजीवता और प्राणता पाठक के मन को गुदगुदाती है। कस्साबपुरा की ठकुराइन की कथा के विकास में महत्वपूर्ण हाथ नहीं है, इसलिए उसका विकास भी नहीं हो सका है। शुक्ला और सुरजीत सफल दाम्पत्य के प्रतीक हैं। मधुसूदन के जीवन में दो विरोधी पात्र आते हैं, जो विरोधी जीवन पद्धतियों के प्रतीक हैं, कस्साबपुरा की ठकुराइन निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और सुषमा श्रीवास्तव अभिजात्य वर्ग का। ऊ बानू में तो व्यक्तित्व है ही नहीं। वह तो नीलिमा का पालतू कुत्ता प्रतीत होता है। दार्शनिक जटिलताओं के पात्रों के प्राणों का स्पन्दन दब जाता है, किन्तु उपन्यास में दार्शनिक जटिलताओं के होते हुए भी अनुभूतिशीलता होने के कारण हरबंस आदि को छोड़कर सभी पात्र सप्राण हैं।

अन्तराल

अन्तराल प्रसिद्ध साहित्यकार, उपन्यासकार और नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1 जनवरी, 2005 को 'राजपाल एंड सन्स' द्वारा हुआ था।

पुस्तक का कुछ भाग

नदी का पुल पार करने के लिए सड़क ऊँची होनी शुरू हो गई थी। सड़क के दोनों ओर बीहड़ नजर आने लगे थे। उसकी निगाहें उस टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी

को ढूँढ़ रही थीं जो उन दिनों बीहड़ के बीच से ऊपर-नीचे होती हुई घाट तक जाती थी।

तब घाट के ठीक पहले तेज ढलान हुआ करती थी जिस पर नदी के किनारे-किनारे दूर तक बालू की चादर बिछी रहती थी। बालू की पर्त इतनी मोटी होती थी कि उस पर चलते हुए पैर धँस-धँस जाते थे। पर नीचे, धारा से लगे हुए किनारे की बालू पसीजकर सख्त हो गई रहती थी। वहीं बैठकर वे नाव का इंतजार करते थे जो दूसरे किनारे पर सवारियों को चढ़ाते-उतारते या धारा के बीच आते-जाते दिखाई पड़ती थी। अगर नाव को इधर का किनारा छोड़े देर हो गई होती तो बालू पर कुछ राहगीर गठरी-मोटरी लेकर बैठे नजर आते। नहीं तो एक-एक कर वे आते रहते और नाव के वापस लौटने तक वहाँ कुछ चहल-पहल-सी हो जाती थी। राहगीरों में कभी कोई नई दुल्हन होती जो चटक पियरी के ऊपर चमकीली चादर डालकर घूँघट काढ़े रहती। पूरी ढकी देह के नीचे से झाँकते काले, मटमैले पैर जिनमें गिलट के झाँझ और लच्छे पड़े होते, अजीब अटपटे-से लगते थे। दुल्हन के साथ गठरी लिए हुए कोई अधेड़ या बूढ़ा आदमी होता जो पुरानी मटमैली धोती के ऊपर नया सिला और गैरधुला, सफेद, चमकदार कुरता पहने होता जिसमें बटन नदारद होते। कभी गोद में बच्चा लिए कोई औरत भी होती। घाट पर बैठते ही बच्चा रोने लगता और वह भीड़ से जरा दूसरी ओर मुँह फेरकर कुरती से स्तन निकालती और उसके मुँह में दे देती और बेपरवाही से उसके ऊपर आँचल डाल लेती। वहाँ औरतों में पहला ही बच्चा होने के बाद छाती को लेकर कोई खास शरम न रह जाती और वे उसके प्रति लापरवाह-सी हो जाती थीं।...वह कभी इस छोटी-सी भीड़ को देखता, कभी दूर सरकती नाव को तो कभी कगार के ऊपर फैले बीहड़ के विस्तार को। दोनों ओर लंबाई में दूर तक चमकती नदी की धारा और चारों ओर फैले बीहड़ों के बीच-बीच खड़े बबूल के पेड़ और सरपत के गुच्छे जो हवा में बहुत धीरे-धीरे हिलते, बहुत एकाकी लगते थे। इस सुनसान फैलाव के बीच घाट पर सिमटी छोटी-सी भीड़ निचाट ऊसर के बीच छोटे-से खेत में खड़ी लहराती फसल-सी लगती। दुनिया में ऊँच-नीच, दुःख और जलालत से बेखबर उसे वह सारा मंजर बड़ा सुहावना लगता था।

न आने वाला कल

न आने वाला कल प्रसिद्ध साहित्यकार, उपन्यासकार और नाटककार मोहन राकेश द्वारा रचित उपन्यास है। इसका प्रकाशन भी 1 जनवरी, 2005 को 'राजपाल एंड सन्स' द्वारा हुआ था।

कथावस्तु

'न आने वाला कल' आधुनिक तेजी से बदलते जीवन तथा व्यक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है, जो आर्थिक संघर्ष, स्त्री-पुरुष संबंध तथा साहित्य और कला की दुनिया को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। मोहन राकेश की रचनाओं का आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान है क्योंकि उन्होंने नई परम्पराओं का सूत्रपात किया है। 'न आने वाला कल' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें एक विशेष परिस्थिति में व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं को बहुत सूक्ष्म रूप में वर्णित किया गया है। यह न केवल समाज में फैली अनैतिकता को अभिव्यक्ति देता है बल्कि उसको झेलते व्यक्ति की त्रासदी का भी मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। घटना और अनुभूति का इतना उत्तम संगम अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

लोकप्रियता

प्रख्यात लेखक मोहन राकेश ने उपन्यास बहुत कम लिखे हैं परंतु वे बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं। 'न आने वाला' कल आधुनिक तेजी से बदलते जीवन तथा व्यक्ति और उनकी प्रतिक्रियाओं पर बहुत प्रसिद्ध उपन्यास है, जो आर्थिक संघर्ष स्त्री-पुरुष संबंध तथा साहित्य और कला की दुनिया को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित करता है। यह उपन्यास प्रकाशित होते ही चर्चा का विषय बन गया था और अनेक युवक युवती इसके चरित्रों में अपनी जीवन की झांकी पाते थे। आज भी यह उपन्यास, उतना ही पठनीय तथा रोचक है, और लेखन के क्षेत्र में एक मानक का स्थान ग्रहण कर चुका है।

कमलेश्वर

हिन्दी लेखक कमलेश्वर बीसवीं शती के सबसे सशक्त लेखकों में से एक समझे जाते हैं। कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तंभ लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया। कमलेश्वर का लेखन केवल गंभीर साहित्य से ही जुड़ा नहीं रहा बल्कि उनके लेखन के कई तरह के रंग देखने को मिलते हैं। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हो या फिर भारतीय राजनीति का एक चेहरा दिखाती फिल्म 'आंधी' हो, कमलेश्वर का काम एक मानक के तौर पर देखा जाता रहा है। उन्होंने मुंबई में जो टीवी पत्रकारिता की, वो बेहद मायने रखती है। 'कामगार विश्व' नाम के

कार्यक्रम में उन्होंने गरीबों, मजदूरों की पीड़ा-उनकी दुनिया को अपनी आवाज दी। कमलेश्वर की अनेक कहानियों का उर्दू में भी अनुवाद हुआ है।

कमलेश्वर का जन्म 6 जनवरी 1932 को उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ। उन्होंने 1954 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। उन्होंने फिल्मों के लिए पटकथाएँ तो लिखी ही, उनके उपन्यासों पर फिल्में भी बनी। 'आंधी', 'मौसम (फिल्म)', 'सारा आकाश', 'रजनीगंधा', 'मिस्टर नटवरलाल', 'सौतन', 'लैला', 'रामबलराम' की पटकथाएँ उनकी कलम से ही लिखी गई थीं। लोकप्रिय टीवी सीरियल 'चन्द्रकांता' के अलावा 'दर्पण' और 'एक कहानी' जैसे धारावाहिकों की पटकथा लिखने वाले भी कमलेश्वर ही थे। उन्होंने कई वृत्तचित्रों और कार्यक्रमों का निर्देशन भी किया।

1995 में कमलेश्वर को 'पद्मभूषण' से नवाजा गया और 2003 में उन्हें 'कितने पाकिस्तान' (उपन्यास) के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे 'सारिका' 'धर्मयुग', 'जागरण' और 'दैनिक भास्कर' जैसे प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं के संपादक भी रहे। उन्होंने दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक जैसा महत्वपूर्ण दायित्व भी निभाया। कमलेश्वर ने अपने 75 साल के जीवन में 12 उपन्यास, 17 कहानी संग्रह और करीब 100 फिल्मों की पटकथाएँ लिखीं।

कमलेश्वर की अंतिम अधूरी रचना अंतिम सफर उपन्यास है, जिसे कमलेश्वर की पत्नी गायत्री कमलेश्वर के अनुरोध पर तेजपाल सिंह धामा ने पूरा किया और हिन्द पाकेट बुक्स ने उसे प्रकाशित किया और बेस्ट सेलर रहा। 27 जनवरी 2007 को उनका निधन हो गया।

कृतियाँ

उपन्यास

1. एक सड़क सत्तावन गलियाँ
2. तीसरा आदमी
3. डाक बंगला
4. समुद्र में खोया हुआ आदमी
5. काली आँधी
6. आगामी अतीत

7. सुबह...दोपहर...शाम
8. रेगिस्तान
9. लौटे हुए मुसाफिर
10. वही बात
11. एक और चंद्रकांता
12. कितने पाकिस्तान
13. अंतिम सफर

पटकथा एवं संवाद

कमलेश्वर ने 99 फिल्मों के संवाद, कहानी या पटकथा लेखन का काम किया। कुछ प्रसिद्ध फिल्मों के नाम हैं-

1. सौतन की बेटी(1989)-संवाद
2. लैला(1984)- संवाद, पटकथा
3. यह देश (1984) -संवाद
4. रंग बिरंगी(1983) -कहानी
5. सौतन(1983)- संवाद
6. साजन की सहेली(1981)- संवाद, पटकथा
7. राम बलराम (1980)- संवाद, पटकथा
8. मौसम(1975)- कहानी
9. आंधी (1975)- उपन्यास

संपादन

अपने जीवनकाल में अलग-अलग समय पर उन्होंने सात पत्रिकाओं का संपादन किया -

1. विहान-पत्रिका (1954)
2. नई कहानियाँ-पत्रिका (1958-66)
3. सारिका-पत्रिका (1967-78)
4. कथायात्रा-पत्रिका (1978-79)
5. गंगा-पत्रिका(1984-88)
6. इंगित-पत्रिका (1961-68)
7. श्रीवर्षा-पत्रिका (1979-80)
8. अखबारों में भूमिका

वे हिन्दी दैनिक 'दैनिक जागरण' में 1990 से 1992 तक तथा 'दैनिक भास्कर' में 1997 से लगातार स्तंभलेखन का काम करते रहे।'

कहानियाँ

कमलेश्वर ने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखीं। उनकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं –

1. राजा निरबंसिया
2. मांस का दरिया
3. नीली झील
4. तलाश
5. बयान
6. नागमणि
7. अपना एकांत
8. आसक्ति
9. जिंदा मुर्दे
10. जॉर्ज पंचम की नाक
11. मुर्दों की दुनिया
12. कस्बे का आदमी
13. स्मारक

नाटक

1. उन्होंने तीन नाटक लिखे –
2. अधूरी आवाज
3. रेत पर लिखे नाम
4. हिंदोस्तां हमारा

अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम पंजाबी के सबसे लोकप्रिय लेखकों में से एक थी। पंजाब (भारत) के गुजराँवाला जिले में पैदा हुई अमृता प्रीतम को पंजाबी भाषा की

पहली कवयित्री माना जाता है। उन्होंने कुल मिलाकर लगभग 100 पुस्तकें लिखी हैं जिनमें उनकी चर्चित आत्मकथा 'रसीदी टिकट' भी शामिल है। अमृता प्रीतम उन साहित्यकारों में थीं जिनकी कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ। अपने अंतिम दिनों में अमृता प्रीतम को भारत का दूसरा सबसे बड़ा सम्मान पद्मविभूषण भी प्राप्त हुआ। उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से पहले ही अलंकृत किया जा चुका था।

अमृता प्रीतम का जन्म 1919 में गुजरांवाला पंजाब (भारत) में हुआ। बचपन बीता लाहौर में, शिक्षा भी वहीं हुई। किशोरावस्था से लिखना शुरू किया। कविता, कहानी और निबंध। प्रकाशित पुस्तकें पचास से अधिक। महत्त्वपूर्ण रचनाएं अनेक देशी विदेशी भाषाओं में अनूदित।

1957 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1958 में पंजाब सरकार के भाषा विभाग द्वारा पुरस्कृत, 1988 में बल्गारिया वैरोव पुरस्कार (अन्तर्राष्ट्रीय) और 1982 में भारत के सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। उन्हें अपनी पंजाबी कविता अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ के लिए बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इस कविता में भारत विभाजन के समय पंजाब में हुई भयानक घटनाओं का अत्यंत दु:खद वर्णन है और यह भारत और पाकिस्तान दोनों देशों में सराही गयी।

प्रमुख कृतियाँ

चर्चित कृतियाँ

उपन्यास- पांच बरस लंबी सड़क, पिंजर, अदालत, कोरे कागज, उन्चास दिन, सागर और सीपियां

आत्मकथा–रसीदी टिकट

कहानी संग्रह–कहानियाँ जो कहानियाँ नहीं हैं, कहानियों के आँगन में

संस्मरण–कच्चा आंगन, एक थी सारा

उपन्यास

डॉक्टर देव (1949)–(हिन्दी, गुजराती, मलयालम और अंग्रेजी में अनूदित)।

पिंजर (1950)–(हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मलयालम, मराठी, अंग्रेजी और सर्बोकरोट में अनूदित)।

आह्लणा (1952) – हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में अनूदित।

आशू (1958) – हिन्दी और उर्दू में अनूदित।

इक सिनोही (1959) – हिन्दी और उर्दू में अनूदित।

बुलावा (1960) – हिन्दी और उर्दू में अनूदित।

बंद दरवाजा (1961) – हिन्दी, कन्नड़, सिंधी, मराठी और उर्दू में अनूदित।

रंग दा पत्ता (1963) – हिन्दी और उर्दू में अनूदित।

इक सी अनीता (1964) – हिन्दी, अंग्रेजी और उर्दू में अनूदित।

चक्क नम्बर छत्ती (1964) – हिन्दी, अंग्रेजी, सिंधी और उर्दू में अनूदित।

धरती सागर ते सीपियाँ (1965) – हिन्दी और उर्दू में अनूदित।

दिल्ली दियाँ गलियाँ (1968) – हिन्दी में अनूदित।

एकते एरियल (1969) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

जलावतन (1970) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

यात्री (1971) – हिन्दी, कन्नड़, अंग्रेजी बांग्ला और सर्बोकरोट में अनूदित।

जेबकतरे (1971) – हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, मलयालम और कन्नड़ में अनूदित।

अग दा बूटा (1972) – हिन्दी, कन्नड़ और अंग्रेजी में अनूदित।

पक्की हवेली (1972) – हिन्दी में अनूदित।

अग दी लकीर (1974) – हिन्दी में अनूदित।

कच्ची सड़क (1975) – हिन्दी में अनूदित।

कोई नहीं जानदाँ (1975) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

उनहाँ दी कहानी (1976) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

इह सच है (1977) – हिन्दी, बुल्गारियन और अंग्रेजी में अनूदित।

दूसरी मंजिल (1977) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

तेहरवाँ सूरज (1978) – हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी में अनूदित।

उनींजा दिन (1979) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

कोरे कागज (1982) – हिन्दी में अनूदित।

हरदत्त दा जिंदगीनामा (1982) – हिन्दी और अंग्रेजी में अनूदित।

आत्मकथा

रसीदी टिकट, (1976)

कहानी संग्रह

हीरे दी कनी, लातियाँ दी छोकरी, पंज वरा लंबी सड़क, इक शहर दी मौत, तीसरी औरत सभी हिन्दी में अनूदित।

कविता संग्रह

लोक पीड़ (1944), मैं जमा तू (1977), लामियाँ वतन, कस्तूरी, सुनहुड़े (साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त कविता संग्रह तथा कागज ते कैनवस ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त कविता संग्रह सहित 18 कविता संग्रह।

गद्य कृतियाँ

किरमिची लकीरें, काला गुलाब।
अग दियाँ लकीराँ (1969)।
इकी पत्तियाँ दा गुलाब, सफरनामा (1973)।
औरत: इक दृष्टिकोण (1975), इक उदास किताब (1976)।
अपने-अपने चार वरे (1978), केड़ी जिंदगी केड़ा साहित्य (1979)।
कच्चे अखर (1979), इक हथ मेहन्दी इक हथ छल्ला (1980)।
मुहब्बतनामा (1980), मेरे काल मुकट समकाली (1980)।
शौक सुरेही (1981), कड़ी धुप्प दा सफर (1982)।
अज्ज दे काफिर (1982) सभी हिन्दी में अनूदित।
अज्ज आखाँ वारिस शाह नूँ

पिंजर (उपन्यास)

पिंजर उल्लेखनीय कवयित्री और उपन्यासकार अमृता प्रीतम द्वारा 1950 में लिखित पंजाबी उपन्यास है। यह एक हिंदू लड़की, पूरो की कहानी है, जिसका एक मुस्लिम आदमी रशीद ने अपहरण कर लिया। जब वो रशीद के घर से अपने माता-पिता के घर भागती है तो उसके माता-पिता उस लड़की को

अशुद्ध/अपवित्र मानते हुए वापस लेने से इनकार करते हैं। पिंजर को भारत के विभाजन की पृष्ठभूमि के साथ लिखे गए सर्वश्रेष्ठ साहित्यों में से एक माना जाता है।

कहानी

दो खानदान पूरो और रशीद हैं। पूरो शाह और रशीद शेख क्रमशः हिंदू और मुसलमान है। शाहों और शेखों के बीच पुश्तैनी झगड़ा है। दो पीढ़ी पहले शाहों के आदमियों ने शेखों की एक लड़की अगावा कर ली थी। अब वो बदला लेने की सोचते रहते हैं। पूरो को रशीद अगवा कर लेता है और कब्जे में रखता है। वह घर छोड़ आने की जिद करती है, लेकिन रशीद बताता है कि पूरो के लिए अब उसके अपने घर वाले ही अनजान हो गए हैं। लेकिन पूरो को अपने माँ-बाप पर भरोसा था। मौका पा कर वह रशीद की गिरफ्त से भागती है। रात को अपने घर पहुंचती है। माँ और पिता साथ में होते हैं। उसके पिता पूरो को घर में घुसने से रोक देते हैं और कहते हैं कि अब वो परायी हो गई है। वो अपवित्र हो गई और उसका धर्म भ्रष्ट हो गया है।

पात्र

पूरो (हमीदा)
रशीद
रामचंद
लाजो

रूपांतरण

इसे इसी नाम (पिंजर) से 2003 में एक हिन्दी फिल्म में निर्मित किया गया था, जिसमें प्रमुख भूमिकाओं में उर्मिला मातोंडकर, मनोज बाजपेई और संजय सूरी थे। आलोचनात्मक प्रशंसा के अलावा, फिल्म ने राष्ट्रीय एकता पर सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार भी जीता था।

कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती मुख्यतः हिन्दी की आख्यायिका (फिक्शन) लेखिका थीं। उन्हें 1980 में साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 1996 में साहित्य अकादमी

अध्येतावृत्ति से सम्मानित किया गया था। अपनी बेलाग कथात्मक अभिव्यक्ति और सौष्ठवपूर्ण रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। उन्होंने हिंदी की कथा भाषा को विलक्षण ताजगी दी है। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, जीवन्त प्रांजलता और संप्रेषण ने हमारे समय के कई पेचीदा सत्य उजागर किये हैं।

जीवन परिचय

कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात में 18 फरवरी 1925 को हुआ था। भारत के विभाजन के बाद गुजरात का वह हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। विभाजन के बाद वे दिल्ली में आकर बस गयीं और तब से यहीं रहकर साहित्य-सेवा की उन्हें 1980 में 'जिन्दगीनामा' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 1996 में उन्हें साहित्य अकादमी का फेलो बनाया गया जो अकादमी का सर्वोच्च सम्मान है। 2017 में इन्हें भारतीय साहित्य के सर्वोच्च सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है। ये मुख्यत: कहानी लेखिका हैं। इनकी कहानियाँ 'बादलों के घेरे' नामक संग्रह में संकलित हैं। इन कहानियों के अतिरिक्त इन्होंने आख्यायिका (फिक्शन) की एक विशिष्ट शैली के रूप में विशेष प्रकार की लंबी कहानियों का सृजन किया है, जो औपन्यासिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं। ऐ लड़की, डार से बिछुड़ी, यारों के यार, तिन पहाड़ जैसी कथाकृतियाँ अपने इस विशिष्ट आकार प्रकार के कारण उपन्यास के रूप में प्रकाशित भी हैं। इनका निधन 25 जनवरी 2019 को एक लम्बी बीमारी के बाद सुबह साढ़े आठ बजे एक निजी अस्पपताल में हो गया।

प्रकाशित कृतियाँ

कहानी संग्रह

बादलों के घेरे - 1980
लम्बी कहानी (आख्यायिका/उपन्यासिका)।
डार से बिछुड़ी -1958
मित्रो मरजानी -1967
यारों के यार -1968
तिन पहाड़ -1968
ऐ लड़की -1991

जैनी मेहरबान सिंह –2007 (चल-चित्रीय पटकथा, 'मित्रो मरजानी' की रचना के बाद ही रचित, परन्तु चार दशक बाद 2007 में प्रकाशित)

उपन्यास

सूरजमुखी अँधेरे के – 1972
जिन्दगीनामा – 1979
दिलोदानिश – 1993
समय सरगम – 2000
गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिंदुस्तान –2017 (निजी जीवन को स्पर्श करती औपन्यासिक रचना)

विचार-संवाद-संस्मरण

हम हशमत (तीन भागों में)
सोबती एक सोहबत
शब्दों के आलोक में
सोबती वैद संवाद
मुक्तिबोध–एक व्यक्तित्त्व सही की तलाश में –2017
लेखक का जनतंत्र –2018
मार्फत दिल्ली –2018

यात्रा-आख्यान

बुद्ध का कमण्डल–लद्दाख

सम्मान एवं पुरस्कार

साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकरणों से शोभित कृष्णा सोबती ने पाठक को निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य किया है। आपको हिंदी अकादमी, दिल्ली की ओर से वर्ष 2000–2001 के शलाका सम्मान से सम्मानित किया गया था। उन्हें वर्ष 2017 का 53वाँ ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान करने की घोषणा हुई।

❐❐❐